कीट

भारत—देश और लोग

कीट

एम. एस. मणि

अनुवाद

नरेन्द्र सिंह चौहान

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2294-X

पहला संस्करण : 1998 (*शक 1919*)

INSECTS (*Hindi*)

रु. 50.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

प्रथम संस्करण की प्रस्तावना

इस पुस्तक द्वारा भारत में कीट जीवन की विचित्रताओं की एक झलक प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। हमारे देश में कीट जीवन अत्यधिक मनोरंजक और विविधतापूर्ण है। यहां के कीट जीवन का सौंदर्य और उसकी विशिष्टताएं शायद दुनिया के किसी भी कोने के कीट जीवन की तुलना में बेजोड़ हैं। यही कारण है कि इस पुस्तक को लिखते समय हमें निरंतर इस कठिनाई का सामना करना पड़ा कि क्या लिखें और क्या नहीं लिखें। हमने जानबूझकर इस पुस्तक में ऐसी बहुत-सी बातें नहीं कही हैं, जिनकी कमी विशेषज्ञ को अखरेगी। वस्तुतया यह पुस्तक कीटविज्ञानी के लिए नहीं लिखी गई है। इसमें हमने केवल आम पाठक को रुचिकर लगने वाली बातें ही सम्मिलित की हैं। हमने विशिष्ट शब्दावली के प्रयोग से बचने का भी भरसक प्रयत्न किया है। साथ ही भारतीय कीट जीवन के अति विशिष्ट तथ्यों को सरल ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। ऐसे तथ्य जो हमने अपने लगभग चार दशक के भ्रमण के दौरान देखे।

हमारा दृष्टिकोण भी काफी सीमा तक रूढ़ि से हटकर रहा है। पूरी पुस्तक का मुख्य भाव यह है कि भारत का कीट जीवन पारस्परिक हित के लिए मानव-जीवन से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। हमारा विश्वास है कि भारत में कम से कम पिछले सात हजार वर्षों में कीटों और मनुष्यों के बीच पारस्परिक निर्भरता, आपसी सामंजस्य और सहनशीलता पनप चुकी है और प्रकृति में एक सुखद संतुलन स्थापित हो गया है। हमने यह दिखाने का प्रयास किया है कि प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने कीट और मनुष्य की इस साझेदारी को बहुत ही मूल्यवान समझा, जिसे मनुष्य प्राचीन परंपराओं को तोड़ने की जल्दीबाजी में समाप्त कर रहा है। हमने भारत में कीट और मानवजीवन के बीच की मूलभूत समानताओं पर जोर दिया है तथा बताया है कि हमारे कीट सच्चे भारतीय हैं और वे हमारी राष्ट्रीय विशेषता, महानता और त्रुटियों के भागीदार हैं। इसमें संदेह नहीं कि ये विचार कीटविज्ञानियों को विधर्मी लगेंगे क्योंकि उनके लिए हर कीट 'पीड़क' है जिसका 'नियंत्रण' आवश्यक है। हमारा लक्ष्य यह है कि अपने देश में कीट जीवन के प्रति रुचि और प्रेम जागृत किया जाए।

हमने पुस्तक में जो छायाचित्र दिए हैं वे अनेक वर्षों में हमारे द्वारा एकत्रित किए गये संग्रह से छांटे गये हैं और अधिकांशतया जीवित कीटों को उनकी विशिष्ट सहज वृत्तियों में दिखाते हैं।

इस पुस्तक से यदि भारतीय कीट जीवन के प्रति एक समर्पित रुचि पैदा होती है तो हमें लगेगा कि हमें भरपूर प्रतिफल मिला है।

एम.एस. मणि

द्वितीय संस्करण की प्रस्तावना

प्रस्तावना हो सकता है कि एक व्यर्थ अनावश्यकता हो जैसा डिकेन्स हमें विश्वास करने पर मजबूर करता है कि "अगर पुस्तक लिखने में लेखक का जो उद्देश्य रहा हो उसका पुस्तक पढ़ने के बाद पता न लग पाए।" इससे ऐसा आभास मिलता है कि सभी पुस्तकें पढ़ी जाती हैं और हम सभी के पास पुस्तक पढ़ने का समय भी होता है। लेकिन पहली बार 1971 में प्रकाशित होने वाली और बाद में अनेक बार पुनर्मुद्रित होने वाली यह पुस्तक न केवल पढ़ी गई है अपितु इसके उद्देश्य की पूर्ति हुई है, यह उन हजारों पत्रों से भली भांति प्रमाणित हो जाता है जो लेखक को अज्ञात पाठकों ने लिखे हैं। इससे लगता है कि प्रस्तावना पूरी तरह से खानापूर्ति नहीं है फिर भी बिना प्रस्तावना के पुस्तक अधूरी-सी लगती है। महान लेखक चार्ल्स डिकेन्स तक भी प्रस्तावना लिखते थे।

इस प्रस्तावना के माध्यम से मैं उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने इस पुस्तक को पढ़ा है और उनके प्रति विशेष रूप से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं जिन्होंने मुझे पत्र लिखने की जरूरत समझी।

इस संशोधित संस्करण में अनेक नए छायाचित्र और रेखाचित्र सम्मिलित किए गए हैं तथा मूल पाठ्य-सामग्री के कुछ भागों को फिर से लिखा है। प्रिय पाठकगण—

"आप लंबे समय से देख रहे होंगे
किसी वस्तु की खोज में लगे एक वृद्धपुरुष को घूमते हुए।
वस्तु जिसे वह ढूंढ़ न पाया—उसे पता भी नहीं कि वह वस्तु क्या थी।"

लेकिन ऐसा नहीं है। मैंने कीटों में सर्वव्यापी मातृ-वृत्ति को प्रेरक बल के रूप में देखा है। चींटियों के बीच मुझे लगा मानों मैं एक चींटी हूं, मधुमक्खियों में एक मधुमक्खी और तितलियों के बीच उनकी डैनभरी स्वतंत्रता और उनके निश्चिंत जीवन का साझीदार रहा हूं। मैंने कीटों से ऐसा तादात्म्य स्थापित किया है जिसे अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। मनुष्य और कीट उस **एक** में ही एकाकार हो जाते हैं जो अज्ञात और अज्ञेय है। तब क्या यह कहा जाए कि खोज समाप्त हो गई? कौन जाने?

21 जुलाई 1992 **एम.एस. मणि**

1

कीटों की भरमार

कीट क्या हैं?

हमारे ऋषि और कवि भारत के प्राकृतिक दृश्य में जादू भर देने वाली वनस्पति के वैभव और सौंदर्य को अनादि काल से सराहते रहे हैं। हालांकि इस बात को व्यापक रूप से नहीं समझा गया है कि वनस्पति का अस्तित्व कीटों के परिश्रम पर टिका हुआ है। सुनने में यह विचित्र लग सकता है लेकिन है सच कि अगर जगत के परिदृश्य में कीट नहीं होते तो फूल, बीज, फल और वन भी नहीं होते। हम न तो कोई फसल उगा सकेंगे और न ही अपने कपड़े तैयार कर सकेंगे। सामान्यतया हम यह मान बैठे हैं कि हमारी पृथ्वी के प्यारे प्यारे फूल इसलिए खिलते हैं कि हम उनकी सुंदरता और सुगंध का आनंद उठा सकें, अपने इष्ट-देवताओं की पूजा कर सकें और अपने वीरों के गले में पुष्प-माला डाल सकें। लेकिन सच यह है कि पौधे में फूल हमारे लिए नहीं बल्कि कीटों के लिए खिलते हैं जिसका निश्चित उद्देश्य कीटों को आकर्षित करना है ताकि वे पर-परागण[1] कर सकें। फूलों के प्रति मनुष्य का लगाव तो एकदम आकस्मिक है।

अपने विशिष्ट मानवकेंद्रित अहंकार में डूबा मनुष्य समझता है कि अनगिनत जीवधारियों में केवल वही पृथ्वी पर राज्य करने योग्य है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मनुष्य ने आश्चर्यजनक रूप से थोड़े से समय में ही पृथ्वी की सतह को जबरदस्त तरीके से बदल दिया है और चंद्रमा तथा मंगल पर भी बस्तियां बसाने की सोचने लगा है। लेकिन चकित कर देने वाला तथ्य यह है कि अंतिम विश्लेषण में हम यह पाते हैं कि अपनी तमाम गर्वीली उपलब्धियों के लिए मनुष्य निश्चित रूप से कीटों का ऋणी है। वृक्षीय प्राक्-मानव से मानव के अनेक उद्गम के चिह्न एक प्राचीन कीटाहारी तक जाते हैं। एक ऐसा पूर्वज जो कीटों को खाता था। न केवल उसके विकास की नींव कीट के आहार पर थी बल्कि पृथ्वी पर उसका निरंतर जीवित बना रहना तथा भविष्य में 'अतिमानव' (सुपरमैन) के रूप में उसके विकास की आशा भी अटलरूप से कीटों से जुड़ी हुई है।

1. पर-परागण : Cross pollination

यह कल्पनातीत रूप से विविध और भरापूरा कीट जीवन ही है जो पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों की लगातार पुनःपूर्ति करता रहता है। मनुष्य जिस तेजी से इन संसाधनों को खत्म कर रहा है कीट उससे ज्यादा तेजी से उन्हें भरने में जुटे हुए हैं। कीट निरंतर प्रकृति का पुनःचक्रण कर रहे हैं, भूमि को समृद्ध और वायु तथा जल को शुद्ध बना रहे हैं। वे फूलों का परागण कर रहे हैं, हानिकारक खर-पतवारों और जीवों को नष्ट कर रहे हैं और मानव जीवन तथा उसकी सभ्यता के लिए जरूरी परिस्थितियों का निर्माण कर रहे हैं। अगर मनुष्य फसलें, सब्जियों और फलों को उगाने में तथा कपास और हजारों दूसरे कच्चे पदार्थों के उत्पादन में समर्थ है तो ऐसा केवल इसलिए है कि कीट रात-दिन एक करके अनथक रूप से उसकी सहायता कर रहे हैं। वस्तुतया कीट हमारे भूदृश्य के प्रमुख शिल्पी हैं और हमारी कृषि, संस्कृति और हमारे उद्योग में भागीदार हैं। क्या कीट हमारी फसलों को नष्ट नहीं करते, हमारे गोदामों में रखे माल को खराब नहीं करते, और मनुष्य तथा घरेलू पशुओं को घातक बीमारियां नहीं फैलाते? निस्संदेह वे यह सब करते हैं लेकिन उसके लिए मुख्य रूप से स्वयं मनुष्य ही उत्तरदायी है। प्राकृतिक पारितंत्रों[1] से छेड़छाड़ करके मनुष्य ने अनजाने में ही कुछ कीटों को हानिकारक बन जाने के लिए मजबूर कर दिया है। परागणकर्ता कीटों द्वारा मनुष्य के उपयोग में आने वाले अनाजों, फलों, सब्जियों, पशु चारे और दूसरे पदार्थों के उत्पादन की तुलना में सारे कीटों द्वारा फसलों, फलों, पशुधन, कच्चे माल, तैयार माल और मानव स्वास्थ्य को पहुंचने वाले नुकसान से जो आर्थिक क्षति होती है वह बहुत कम है। कीटों से जो वस्तुएं मिलती हैं उनकी सूची बहुत लंबी है। उनमें से कुछ हैं—रेशम, शहद, मधु-मोम, लाख आदि। मनुष्य को मिलने वाले इन लाभों के अतिरिक्त यदि कीटों द्वारा गंदगी और कूड़ा-करकट हटाना, मृदा में सुधार तथा खरपतवार और फसलों के पीड़कों[2] का नाश सम्मिलित कर लिया जाए तो मानव पर कीटों का ऋणभार विराट रूप धारण कर लेता है। कीटों द्वारा मनुष्य के प्रति किए गए उपकार के सामने उनके द्वारा पहुंचाई जाने वाली क्षति तो टिकती ही नहीं।

मनुष्य इस भूतल पर एक दिन सीधा खड़ा हो सकेगा इस बात के संकेत मिलने से बहुत पहले ही कीट हमारे ग्रह पर प्रकट हो चुके थे। वायु में श्वास लेने वाले स्थल प्राणियों में कीट पहले थे। वे जल्दी ही पृथ्वी पर छा गए और उन्होंने मनुष्य के आविर्भाव के लिए अनिवार्य पूर्व-आपेक्षित परिस्थितियों का निर्माण किया। मनुष्य ने धीरे धीरे शक्ति ग्रहण कर पशुओं पर प्रभुता प्राप्त की और उनमें से बहुतों को अपना दास बनाया तथा पृथ्वी के स्वरूप को बिगाड़ना प्रारंभ किया फिर भी कीटों ने अपने प्राकृतिक प्रभुत्व को कभी भी नहीं छोड़ा। सदा विकसित हो रही अपनी प्राद्यौगिकी से अगर भविष्य में मनुष्य अपरिहार्य रूप से दूसरे वन्य प्राणियों का विलोपन कर देता है तब भी कीट पृथ्वी पर प्रभुत्व बनाए

1. प्राकृतिक पारितंत्र : Ecosystem 2. फसल पीड़क : Pests

रखेंगे। मनुष्य के विलुप्त हो जाने से कीट समाप्त नहीं होंगे क्योंकि वे मनुष्य पर आश्रित नहीं हैं बल्कि मनुष्य ही कीटों पर निर्भर है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अभी हाल ही में कुछ कीटों ने मनुष्य की मूर्खता से लाभ उठाना सीख लिया है और इस प्रकार वे मनुष्य द्वारा सृजित नए अवसरों की छानबीन कर रहे हैं। मनुष्य के न रहने पर ये कीट या तो अपना पुराना स्वभाव अपना लेंगे या मानवरहित पृथ्वी पर शांतिपूर्ण परिस्थितियों से ताल-मेल बनाकर नया स्वभाव ग्रहण कर लेंगे। अधिकांश कीट जिन्होंने इस समय मनुष्य से गहरे संबंध बना लिए हैं वे शीघ्र ही वनों में या दूसरे प्राकृतिक आवासों में जा बसेंगे। जो मच्छर अब मानव रक्त को अधिक पसंद करते हैं वे विभिन्न चौपायों का रक्त चूसने के अपने पुराने स्वभाव को अपना लेंगे। घरेलू मक्खियां बाहरी मक्खियां बन जाएंगी। दूसरे अधिकांश कीटों का जीवन भी पहले की तरह ही सुचारु रूप से चलता रहेगा। इसका सीधा-सा कारण यह है कि सौर मंडल में पृथ्वी की व्यापक वर्तमान ग्रह-पारिस्थितिकी[1] के संदर्भ में कीट पृथ्वी जैसे जीवन के सार तत्व हैं ना कि मनुष्य। मान लीजिए किसी ब्रह्मांडीय प्रलय के फलस्वरूप आज पृथ्वी से सभी कीट पूरी तरह से गायब हो जाएं तो हमारा ग्रह बड़ी तेजी से एक अक्रिय निर्जीव चट्टानी पिंड बन जाएगा। वायु के संगठन में बड़ा भारी परिवर्तन आ जाएगा और जिसके फलस्वरूप होने वाली शृंखलाबद्ध अभिक्रिया[2] से अंततः पृथ्वी पर जीवन की लौ बुझ जाएगी। मानव जाति का विलोपन भले ही पृथ्वी के लिए प्रलयकारी न हो लेकिन कीट का विलोपन निश्चित रूप से ऐसा है।

पृथ्वी की पारिस्थितिकी में हम कीटों द्वारा निभाई जाने वाली मुख्य भूमिका की सामान्यतया सराहना भले ही न करें लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि कीटों से हम परिचित हैं—जैसे कि टिड्डा, झींगुर, तिलचट्टा (कॉकरोच), व्याध पतंग (ड्रेगन फ्लाई), दीमक, मत्कुण (बग), मक्खियां, मच्छर, मधुमक्खियां, बर्र, शलभ (पतंगे) और तितलियां। ये कीट सब जगह रेंगते, दौड़ते और झुंडों में मिलते हैं। वे चींचीं करते, भिनकते, गुंजारते, भिनभिनाते, सीटी जैसी आवाज निकालते हैं और वायुमंडल को बहरा बना देने वाले शोरगुल से भर देते हैं। यह भी होता है कि वे शानदार ढंग से तेजी से चुपचाप उड़ जाएं और बिजली जैसी चपल गति से दौड़ जाएं तथा जब संसार अंधेरे में डूब जाए तब भी पेड़ों पर असंख्य तारों की तरह टिमटिमाएं या जमीन पर रत्नों की तरह चमकें। हम इन सबको इसलिए जानते हैं क्योंकि इनमें से बहुत से हमारे साथ अत्यंत घनिष्ठतापूर्वक रहते हैं।

कीट अपनी छह टांगों के कारण बिच्छुओं, मकड़ियों, सेंटीपीडों (शतपादों) और मिलीपीडों (सहस्रपादों) से एकदम अलग हैं (चित्र 1-7)। इस लक्षण के कारण संस्कृत में इन्हें षटपदा (छह टांगों वाला) कहा गया है। इस नाम के शताब्दियों बाद यूरोप में इन्हें लेटिन (लातीनी) भाषा में हेक्सापोडा (छह टांगों वाला) नाम दिया गया। बिच्छू, मकड़ी आदि

---

1. ग्रह-पारिस्थितिकी : Planetary ecology 2. शृंखलाबद्ध अभिक्रिया : Chain reaction
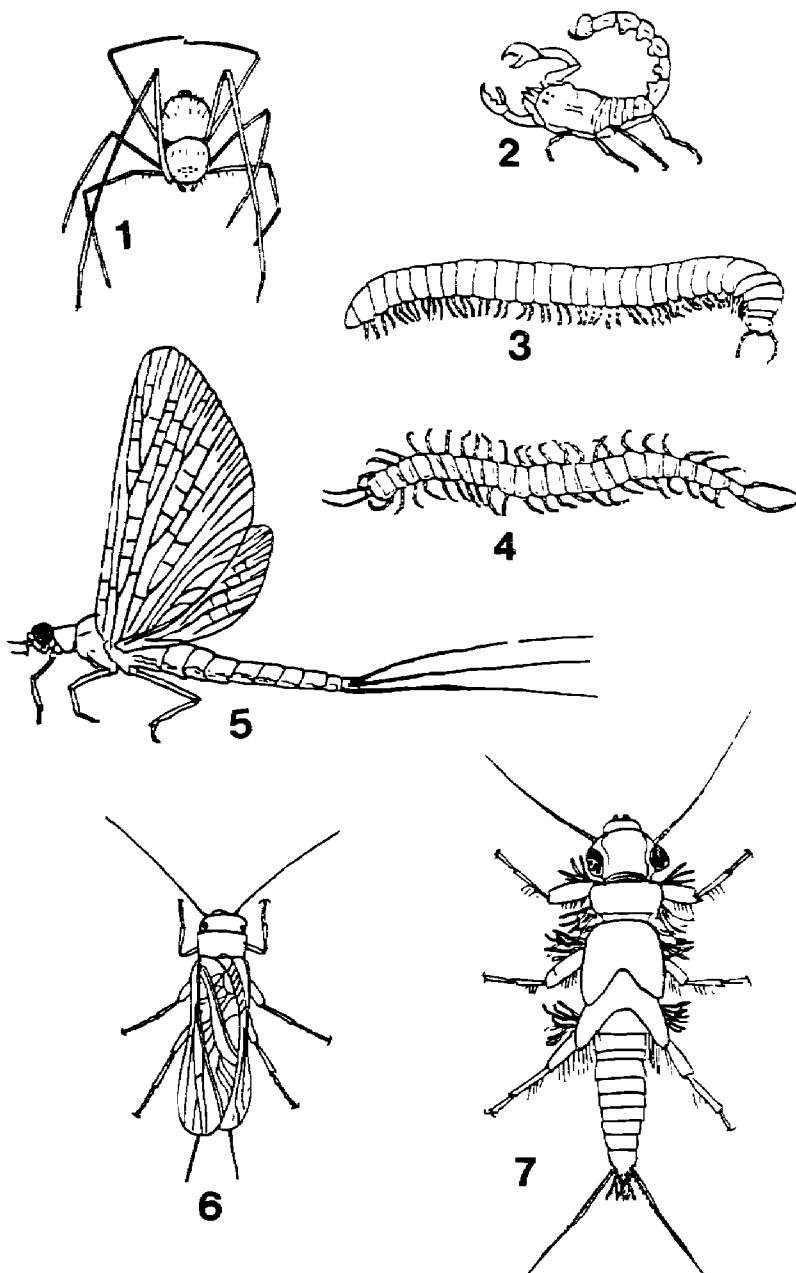
चित्र—कीट तथा अन्य सामान्य स्थलीय संधिपाद (ऑर्थ्रोपॉड)

1. मकड़ी, जिसकी 8 टांगें होती हैं और शरीर दो भागों में बंटा रहता है। 2. बिच्छू, इसकी भी 8 टांगें होती हैं। २ एक सामान्य मिलीपीड (सहस्रपाद)। प्रत्येक देह खंड पर केवल एक जोड़ी टांगें होती हैं। 5. मई मक्खी (मे-फ्लाई)। 6. वयस्क अश्म मक्खी (स्टोन फ्लाई)। 7. अश्म मक्खी लार्वा, जिसमें पानी में सांस लेने के लिए क्लोम (गिल) के गुच्छे होते हैं।

से कीट इस रूप में भी भिन्न हैं कि इनमें सुस्पष्ट सिर, वक्ष और उदर होता है। कीट के सिर पर एक जोड़ी अत्यधिक संवेदनशील स्पर्शक,[1] शृंगिकाएं [2] होती हैं जिनके द्वारा यह न केवल अपने रास्ते की अनुभूति करता है बल्कि सूंघता, बेतार के संदेश ग्रहण करता और भेजता भी है। इसके अतिरिक्त ये बहुत से कल्पना से परे आश्चर्यजनक क्रियाकलाप भी करते हैं। दृष्टि के लिए सिर पर एक जोड़ी अत्यंत जटिल अंग होते हैं जिन्हें संयुक्त नेत्र[3] कहते हैं जो कभी कभी लगभग 20,000 नेत्रों से मिलकर बनते हैं। छह टांगें वक्ष तक ही सीमित होती हैं। अधिकांश कीटों के वक्ष में एक या दो जोड़ी पंख होते हैं। वस्तुतया पक्षियों से भी लाखों वर्ष पहले कीट ही वे पहले प्राणी थे जो पृथ्वी पर उड़ते फिरते थे।

कीट की शरीर संरचना का एक चमत्कार यह है कि इसकी देह एक खोखली कवच-पट्टियों[4] से बने खोल में स्थित रहती है। इस खोल का हल्कापन, ठोसपन, दृढ़ता, लचीलापन, भौतिक सामर्थ्य और अनेक संक्षारक[5] और हानिकारक रसायनों के प्रति रोधक्षमता कीट के लिए कई तरह से सुविधाजनक है। कवच-पट्टियों से देह कंकाल बनता है जो शरीर का बाहरी भाग होता है और साथ ही हमारे कंकाल की तरह भारी और अस्थिमय नहीं होता। इस बहिःकंकाल (बाहरी कंकाल) के विशिष्ट गुण काइटिन नामक जटिल रासायनिक यौगिक के कारण होते हैं। कीट शारीरिकी का दूसरा आश्चर्य इसका श्वसन है। मनुष्य और दूसरे अन्य प्राणियों में, जिनसे हम परिचित हैं, सांस के साथ हवा फेफड़ों के अंदर जाती है। हृदय रक्त को फेफड़ों में पंप करता है ताकि रक्त अपनी कार्बन डाइआक्साइड के बदले में हवा से आक्सीजन ले सके। उसके बाद रक्त आक्सीजन की आवश्यक सप्लाई को ऊतकों [6] तक ले जाता है। यह सब रक्त में हीमोग्लोबिन नामक एक विशेष श्वसन-वर्णक[7] होने के कारण होता है। हीमोग्लोबिन की आक्सीजन से अत्यधिक बंधुता होती है। जिसके साथ यह एक अस्थायी यौगिक बनता है जो ऊतकों को शीघ्रता से आक्सीजन दे देता है। लेकिन कीट के रक्त में हीमोग्लोबिन नहीं होता। रक्त का कोई श्वसन कार्य नहीं होता और फेफड़े भी नहीं होते। प्रत्येक कोशिका[8] को आवश्यक वायु उसके भीतर सीधे ही पहुंचती है और यह काम नाजुक शाखायुक्त नलिकाओं[9] के तंत्र द्वारा किया जाता है। कीटों की आश्चर्यजनक सहनशक्ति और पेशीय सामर्थ्य का यही रहस्य है। स्टेगहॉर्न भृंग[10] अपने वजन से 90 गुना भारी वजन को खींचकर ले जा सकता है। इस भार को यह बिना थके लगभग आधे घंटे तक अपने शरीर की लंबाई से 30 गुना

---

1. स्पर्शक : Feelers
2. शृंगिकाएं : Antenna
3. संयुक्त नेत्र : Compound eyes
4. कवच पट्टियां : Armour plates
5. संक्षारक : Corrosive
6. ऊतक : Tissues
7. श्वसन-वर्णक : Respiratory Pigment
8. कोशिका : Cell
9. शाखायुक्त नलिका : Trachea
10. स्टेगहॉर्न भृंग : Staghorn beetle

दूरी तक ले जा सकता है। एक सामान्य पिस्सू जिसकी टांगें मुश्किल से एक मि.मी. लंबी होती हैं लगभग 32 से.मी. क्षैतिज[1] दूरी तक और 20 से.मी. ऊंचाई तक कूद सकता है। अगर मनुष्य (180 से.मी. लंबाई) को कूदने की खेल प्रतियोगिता में पिस्सू से मुकाबला करना पड़े तो उसे एक चौथाई कि.मी. लंबाई और 137 मीटर ऊंचाई की कूद करनी होगी। कीट विभिन्न आमाप के होते हैं। कुछ इतने छोटे होते हैं कि उन्हें खाली आंखों से नहीं देखा जा सकता बल्कि सूक्ष्मदर्शी आदि की सहायता से ही देखा जा सकता है। ऐसे कीट अमीबा से कुछ ही बड़े होते हैं। सबसे लंबा कीट एक जीवाश्म व्याध पतंग[2] था जिसकी लंबाई 75 से.मी. थी। लघुकाय कीट की तुलना में महाकाय कीट लगभग एक हजार गुना बड़ा होता है।

कीटों के आमाप की तरह उनके रंग भी विविध होते हैं। कुछ फीके और धुंधले रंग के होते हैं जबकि कुछ सफेद, पीले, नारंगी, लाल, भूरे, हरे, नीले या काले होते हैं। अनेक कीट रंगदीप्त होते हैं और उनके रंग धातु जैसे हरे, नीले या तांबे जैसे लाल होते हैं। अधिकांश कीटों में भेद दिखाने वाले रंगों के सुंदर पैटर्नों के साथ चमकीले धब्बे, बैंड या चिह्न होते हैं। कुछ तितलियां और शलभ दिखने में बहुत ही सुंदर होते हैं। रंगों की यह व्यापक विविधता या तो विशिष्ट वर्णकों के कारण या देह अध्यावरण[3] की सूक्ष्म संरचना में निहित विशेषताओं द्वारा प्रकाश तरंगों के बहु-परावर्तनों[4] के वरणात्मक अवशोषण[5] और प्रकीर्णन अथवा बाधा के कारण होती है।

प्राचीन समूह

कीट प्राणियों का एक बहुत प्राचीन समूह है। वे पैलियोजोइक महाकल्प (3000,00,000 वर्ष पूर्व) के कार्बनी युग[6] से जीवाश्मों के रूप में ज्ञात हैं। सबसे प्राचीन कीट पैलियोडिक्टिओटिरा नामक विलुप्त गण (आर्डर) से ज्ञात हैं। ये कीट पूर्णतया पंख वाले थे लेकिन उड़ने में कमजोर थे। इनमें अधिकांश आधुनिक कीटों की तरह दो जोड़ी पंखों के अलावा पंखों के आगे एक जोड़ी छोटी, अर्ध-वृत्ताकार या अंडाकार पंख जैसी पालियां होती थीं। वयस्क पैलियोडिक्टिओटेरा एक अल्पजीवी वायवी प्राणी था जो केवल चंद घंटों के लिए ही धूप और हवा का आनंद लेता है। अपरिपक्व अवस्थाएं बहुत दीर्घजीवी और जलीय होती थीं जिनका परिवर्धन[7] धीमा और लंबा होता था जो एक या दो या उससे भी अधिक सालों तक चलता था। पैलियोडिक्टिओटेरा कीटों के अलावा कार्बनी युग के दौरान

---

1. क्षैतिज : Horizontal
2. जीवाश्म व्याध पतंग : Fossil Dragon Fly
3. देह अध्यावरण : Integument
4. बहु-परावर्तन : Multiple reflections
5. वरणात्मक अवशोषण : Selective absorption
6. कार्बनी युग : Carboniferous Epoch
7. परिवर्धन : Development

विशालकाय तिलचट्टे भी थे। कीट की तुलना में मनुष्य, जो शायद 250,000 साल पूर्व पृथ्वी पर आया, बहुत नया है।

कीट कहां होते हैं?

कीट समुद्रतट से लेकर सबसे ऊंचे पहाड़ों की उजाड़ ढलानों तक शुष्क स्टेपों और रेगिस्तानों, घने और नम जंगलों, घासस्थलों, गृह-वाटिकाओं, फलोद्यानों, खेतों, झीलों, तालाबों, कच्छों, नदियों, नालों, झरनों और कुओं, गुफाओं, मिट्टी में, ऊंचे ऊंचे पर्वतों के बर्फीले मैदानों और हिमनदों (ग्लेशियर) पर, ठंडे उत्तरध्रुवीय और दक्षिणध्रुवीय प्रदेशों में, मानव के आवासों, रसोईघर, दफ्तर, स्कूल, कॉलेज, प्रयोगशाला, भंडारघर, फैक्ट्री, पुस्तकालय, संग्रहालय के भीतर, पौधों और मनुष्य तथा विभिन्न पशुओं के शरीरों के अंदर तथा ऊपर यानी पृथ्वी पर सब जगह पाए जाते हैं। यदि आप किसी पत्थर को उलट दें तो वहां भी आपको कीटों के दर्शन होंगे। ये आपको गिरी हुई पत्ती के नीचे, पेड़ों की छाल के ऊपर और अंदर, सड़ रही सब्जी और पशु पदार्थों में, खाद के गड्ढों, धान्यागारों, तैयार माल, किताबी अलमारी के खानों, कपड़ों आदि सब जगह मिलेंगे। वस्तुतया पृथ्वी की सतह पर एक वर्ग से.मी. जगह भी ऐसी नहीं है जहां कीट न मिलें।

कीट कितने हैं?

दूसरे सारे प्राणियों को मिलाकर जितनी संख्या बैठेगी व्यष्टि और जाति (स्पीशीज) के तौर पर कीटों की संख्या उससे भी कहीं ज्यादा है। वैज्ञानिकों द्वारा लगभग पंद्रह लाख कीटों को नाम दिया जा चुका है और उनका वर्णन किया जा चुका है। सक्षम अधिकारियों ने यह आकलन किया है कि यह विस्मयकारक संख्या मनुष्य द्वारा अभी भी खोजे जाने की प्रतीक्षा में पड़ी जातियों की कुल संख्या का केवल छोटा-सा अंश है। सारे पुस्तकालय कीटों के वर्णन से भरे पड़े हैं और अधिकांश प्रकृतिवैज्ञानिक प्राणियों और पौधों के अन्य समूहों की अपेक्षा कीटों के अध्ययन में जुटे हुए हैं।

जीवित जातियों की यह संख्या इस समय बहुत बड़ी लग सकती है लेकिन वास्तव में है छोटी-सी क्योंकि कीटों की असंख्य जातियां भूतकाल में जीवित रह चुकी हैं और महा-भूवैज्ञानिक[1] अतीत में विलुप्त हो चुकी हैं। हालांकि हमें विश्वभर से कीटों की लगभग 20,000 जीवाश्म (फॉसिल) जातियों का पता चल चुका है फिर भी यह स्पष्ट है कि और भी लाखों ऐसी जातियां मिट चुकी हैं जिन्हें जीवाश्म के रूप में परिरक्षित रहने का अवसर ही नहीं मिला।

---

1. महा-भूवैज्ञानिक : Great-geological

कीटों का नामकरण और वर्गीकरण कैसे होता है?

जातियों की ऐसी कल्पनातीत संख्या को संभालने के लिए वर्गीकरण[1] की कोई पद्धति नितांत आवश्यक है। जीवित कीटों को चौंतीस गणों[2] में वर्गीकृत किया गया है जिन्हें मुख्य रूप से पंखों की सरंचना में विशिष्ट भिन्नताओं, अशन[3] की विभिन्न विधियों, तरुण के परिवर्धन और अन्य विशेषताओं के आधार पर उपगणों [4] और अनेक कुलों [5] उपकुलों[6], संवर्गों [7], वंशों [8] और जातियों [9] में विभाजित और उपविभाजित किया गया है।

कीटों के बारे में अपने ज्ञान को दूसरों को देने, जानकारी जमा करने, आंकड़े भरने और जरूरत पड़ने पर जानकारी की पुनःप्राप्ति को सुगम बनाने की दृष्टि से यह भी सबसे महत्वपूर्ण है कि कीट जातियों के नाम एकसमान हों। इसमें कोई शक नहीं कि हमारे सामान्य कीटों में से अनेक के लोकप्रिय नाम हैं। यह भी सही है कि अधिकांश लोकप्रिय नाम काल्पनिक हैं और प्रायः अनुपयुक्त भी हैं तथा सबसे खराब बात तो यह है कि अनेक भिन्न भिन्न कीटों के लिए एक ही नाम प्रयुक्त किया जाता है और एकदम से असंबंधित कीटों को भी एक ही लोकप्रिय नाम से पुकारा जाता है। इसके अलावा लोकप्रिय नाम स्वाभाविक रूप से एक जगह कुछ होता है तो दूसरी जगह कुछ और जो भ्रम को बढ़ावा देता है। ऐसी परिस्थितियों में वैज्ञानिक प्रलेखन[10] और जानकारी की पुनःप्राप्ति असंभव हो जाती है। ऐसे नाम विभिन्न कीटों की वास्तविक बंधुता भी नहीं बताते जो कि वर्गीकरण और आंकड़े भरने के लिए बहुत आवश्यक है। कीटों के वैज्ञानिक नाम जातियों की बंधुता पर आधारित होते हैं और अंतर्राष्ट्रीय रूप से भी स्वीकार्य होते हैं। इस मामले में राजनैतिक और दूसरी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता। किसी भी प्राणी या पौधे के वैज्ञानिक नाम की ही तरह कीट का वैज्ञानिक नाम भी द्विपद-नाम-पद्धति[11] पर आधारित होता है जिसका प्रस्ताव स्वीडन के प्रकृति वैज्ञानिक कार्ल वॉन लिने (Carl von Linne) ने 1758 में रखा था। इस पद्धति के अनुसार कीट की प्रत्येक जाति के नाम में दो लातीनी शब्द होते हैं जिसमें पहला नाम वंश का होता है जिसका पहला अक्षर बड़ा होता है और दूसरा नाम जाति का होता है जिसे प्रारंभ के छोटे अक्षर से लिखा जाता है। उदाहरण के लिए तीन प्रकार की घरेलू मक्खी के नाम इस प्रकार हैं—मस्का डोमेस्टिका[12] जो सामान्यतया हमारे घरों में पाई जाने वाली मक्खी है, भारतीय घरों में मिलने वाली दूसरी जाति है

---

1. वर्गीकरण : Classification
2. गण : Order
3. अशन : Feeding
4. उपगण : Sub-order
5. कुल : Family
6. उपकुल : Sub-family
7. संवर्ग : Tribes
8. वंश : Genera
9. जाति : Species
10. प्रलेखन : Documentation
11. द्विपद-नाम-पद्धति : Binomial System of Classification
12. मस्का डोमेस्टिका : Musca domestica

मस्का नेबलो[1] और तीसरी मस्का विसिना[2] है। इन नामों में मस्का तो वंश का नाम है और जिसमें सभी घरेलू मक्खियां आती हैं और **डोमेस्टिका, नेबलो** तथा **विसिना** घरेलू मक्खियों के विभिन्न प्रकारों या जातियों के नाम हैं।

कीट गणों का वर्णन

जीवित कीटों के प्रमुख गणों की संक्षिप्त रूपरेखा नीचे दी जा रही है :

गण 1—एफीमेरिडा : (एफीमेरॉप्टेरा) मई मक्खी[3] (चित्र 5)। मई मक्खी अल्पतम-जीवी कीट हैं और नाजुक वयस्कों के रूप में मुश्किल से दो दिन जिंदा रहते हैं। इनकी शृंगिकाएं अस्पष्ट होती हैं, झिल्ली जैसे दो जोड़ी पंख होते हैं, आंखें बहुत विशाल होती हैं जो प्रायः सिर पर साफे की तरह होती हैं। वे कभी नहीं खाते और उनकी आहार नाल हवा से भरी रहती है ताकि ग्रीष्म की किसी शाम, आमतौर पर मई (इसी से मई मक्खी नाम पड़ा) की कामद उड़ान[4] के लिए उनके देह की उत्प्लावकता[5] बढ़ जाए। मई मक्खी के तरुण लार्वा पानी में रहते हैं, जलीय वनस्पति को भुक्खड़ अवस्था की तरह खाते हैं और प्रौढ़ बनने से पूर्व दो या अधिक सालों तक आराम से परिवर्धित होते हैं। मादा अपने अंडे पानी में देती हैं और उसके तुरंत बाद मर जाती हैं।

गण 2—प्लेकोप्टेरा : अश्म मक्खियां[6] साफ, ठंडे, बहते पहाड़ी नालों में प्रजनन[7] करती हैं। मई मक्खियों की तरह इनकी बाल्यावस्था भी लंबी होती है जो दो या तीन वर्षों तक चलती है। प्रौढ़ अश्म मक्खी अंशपूर्णकीट[8] के रूप में निकलती है, किसी ठंडी शाम को चट्टान पर रेंगती हुई चढ़ती है और उसके बाद पंखयुक्त प्रौढ़ के रूप में निकल आती है। समागम[9] के बाद मादा अश्म मक्खी पानी में 6000 तक अंडे देती है जो एक थैली में लिपटे रहते हैं। उसके बाद मादा मर जाती है। प्रौढ़ अश्म मक्खी कुछ नहीं खाती क्योंकि सारा खाना पीना लंबी बाल्यावस्था के दौरान हो चुकता है। इसका जनन-तंत्र[10] विचित्र होता है : जनन के आंतरिक अंग एक

1. मस्का नेबलो : Musca nebulo
2. मस्का विसिना : Musca vicina
3. मई मक्खी : May flies
4. कामद उड़ान : Nuptial flight
5. उत्प्लावकता : Byoyancy
6. अश्म मक्खियां : Stone flies
7. प्रजनन : Bread
8. अंशपूर्णकीट : Subimago
9. समागम : Mating
10. जनन-तंत्र : Reproductive system

अश्वनालाकार पुंज में जुड़े रहते हैं जिसमें अंडाशय[1] और वृषण[2] दोनों होते हैं। प्रौढ़ सचमुच उभयलिंगी[3] होता है। पानी में रहने वाले लार्वा क्लोम से सांस लेते हैं। प्रौढ़ में झिल्ली जैसे दो जोड़ी पंख होते हैं (चित्र 6, 7)।

गण 3—ओडोनेटा : व्याध पतंग[4] और डैमजेल मक्खी[5] : प्रौढ़ कीट में जाली जैसी शिराओं वाले दो जोड़ी पंख, छोटी अस्पष्ट शृंगिकाएं लेकिन सचमुच बड़ी बड़ी आंखें होती हैं जो उड़ते समय इन कीटों को छोटी छोटी मक्खियों, मच्छरों, डांसों[6] आदि को ढूंढ़ने में सहायता देने के लिए विशेषरूप से परिवर्धित होती हैं। जलीय लार्वा और हवा में उड़ने वाले प्रौढ़ दोनों ही रूप में ये कीट जबरदस्त शिकारी होते हैं। आराम करते समय व्याध पतंग के पंख बाहर की ओर फैले रहते हैं लेकिन डैमजेल मक्खी आराम के समय अपने पंख मोड़े रहती है। टांगें चलने, दौड़ने या रेंगने के काम नहीं आतीं बल्कि कंटीली होती हैं जिसमें शिकार को फंसाए रखने के लिए हर प्रकार की खुली जालीनुमा टोकरी-सी बन जाती है। शिकार उड़ते हुए झपट लिए जाते हैं और फुरसत से खाए जाते हैं। इस टोकरी में प्रायः कई दर्जन डांस फंसे होते हैं। लार्वो का जबड़ा विशेष प्रकार का होता है जिसका अधरोष्ठ (निचला जबड़ा) बहुत लंबा होता है। जरूरत न होने पर अधरोष्ठ को बड़ी सफाई से वापस मोड़ लिया जाता है। शिकार पकड़ने के लिए अधरोष्ठ को बिजली की चाल से आगे की ओर निकाला जा सकता है। शिकार इसकी नोंक पर बने तीखे हुकों की शिकंजे-जैसी जकड़ में फंस जाता है। लार्वा जल में रहने वाले सभी तरह के प्राणियों को खाते हैं जिसमें प्रायः मच्छर के लार्वा, बैगची[7] और छोटी छोटी मछलियां शामिल हैं। इनके मलाशय[8] के भीतर क्लोम[9] होते हैं जिनसे वे सांस लेते हैं। इन क्लोमों से प्रायः पानी की धार को इतनी ताकत से पीछे की ओर फेंका जाता है कि उनका शरीर आगे की ओर दौड़ पड़ता है। यह जेट-नोदन गमन[10] का जीता-जागता उदाहरण है।

गण 4—ऑर्थोप्टेरा : टिड्डे[11] टिड्डियां[12] और झींगुर[13] ये कूदने वाले कीट होते हैं जिनकी पिछली टांगें मजबूत, अगले पंख संकरे, सीधे और चर्मपत्र[14] जैसे और पिछले पंख

1. अंडाशय : Ovary
2. वृषण : Testes
3. उभयलिंगी : Hermaphrodite
4. व्याध पतंग : Dragon fly
5. डैमजेल मक्खी : Damsel fly
6. डांस : Gnat
7. बैगची : Tadpol
8. मलाशय : Rectum
9. क्लोम : Gills
10. जेट-नोदन गमन : Jet Propulsion movement
11. टिड्डा : Grasshopper
12. टिड्डियां : Locusts
13. झींगुर : Crickets
14. चर्मपत्र : Parchment

चौड़े मुड़े हुए होते हैं ; शृंगिकाएं लंबी या छोटी होती हैं। मुखांग[1] काटने और चबाने वाले होते हैं जो विभिन्न पौधों की पत्तियों और घास को खाने के लिए उपयुक्त होते हैं। इनमें से अधिकांश कीट, विशेषतया झींगुर, ध्वनि निकाल सकते हैं (चिरपरिचित चींचीं का शोर) और इनमें ध्वनि ग्रहण करने के लिए कर्णपटह[2] होता है। कुछ टिड्डे बहुरूपी[3] होते हैं, प्रायः यूथी[4] बन जाते हैं और उसके बाद टिड्डियों के बड़े झुंडों के रूप में उड़ते हुए फसल को भारी क्षति पहुंचाते हैं।

गण 5—फैस्मिडा : पर्णाभ कीट[5] और यष्टि कीट[6] : कल्पना कीजिए कि टूटी हुई पतली पतली लकड़ियों के टुकड़े, मरी हुई सूखी रंग उड़ी पत्तियां यहां तक कि हरी पत्तियां तक झाड़ियों में धीरे धीरे चहलकदमी कर रही हैं। यह दृश्य अनोखा और अविश्वसनीय लग सकता है लेकिन ये कीट ऐसे ही हैं। इन कीटों का शरीर अनोखे ढंग से क्षीण और लंबा होने के कारण इन्हें भ्रम से एक लकड़ी समझ लिया जाता है या चपटे और फैले हुए शरीर के कारण ये हरी पत्ती या फीकी पत्ती जैसे दिखाई देते हैं। अत्यधिक धीमी गति से चलने के कारण झाड़ियों में इनकी तरफ आसानी से ध्यान नहीं जाता। ये कभी भी भागते-दौड़ते नहीं और मामूली से मामूली बाधा होने पर भी ये मौत का स्वांग करते हैं। ये शाकाहारी और अहानिकारक होते हैं। इनमें से कुछ मादाएं क्वांरी रहकर जनन[7] करती हैं और वस्तुतः अनेक यष्टि कीटों में नर प्रायः कभी भी नहीं पाया गया है। (चित्र 12)। अनिषेकजनन[8] प्रायः भौगोलिक होता है, एक क्षेत्र में द्विलिंगी[9] और दूसरे क्षेत्र में केवल मादाएं उत्पन्न होती हैं। **बैसिलस रोजाई** नामक यष्टि कीट का उदाहरण लें तो उत्तर में इसके नर एकदम गायब हो गए हैं लेकिन दक्षिण में कभी-कभार मिल जाते हैं।

गण 6—डर्माप्टेरा : (चर्मपंखी गण), कर्ण कीट[10] : आमतौर पर गहरे रंग और कठोर शरीर वाले कीट जिनके छोटे सींग जैसे अग्र-पंख शरीर के छोर तक नहीं होते बल्कि ठूंठ जैसे रहते हैं और सिलवट भरे झिल्लीमय पश्च-पंखों को छुपाए रहते हैं। उदर[11] के अंत में एक जोड़ी दंतुर चिमटियां[12] होती हैं। कर्ण कीट अधिकतर जमीन के नीचे रहते हैं और पौधों की जड़ों पर अशन करते हैं।

---

1. मुखांग : Mouth parts
2. कर्णपटह : Tympanum
3. बहुरूपी : Polymorphic
4. यूथी : Gregarious
5. पर्णाभ कीट : Leaf insect
6. यष्टि कीट : Stick insect
7. जनन : Reproduce
8. अनिषेकजनन : Parthenogenesis
9. द्विलिंगी : Bisexual
10. कर्ण कीट : Earwigs
11. उदर : Abdomen
12. चिमटियां : Forceps

गण 7—एम्बीओप्टेरा : (चेतनपंखी गण), एम्बाइड कीट : नम इलाकों में पाए जाने वाले काले रंग के कीट। ये कीट आमतौर से रात्रिचर होते हैं हालांकि कभी कभी मेघाच्छन्न मौसम में ये खुले में रेंगते हैं। नर कभी कभी परभक्षी[1] होते हैं। प्रौढ़ अंश-यूथी[2] (कॉलोनियों) में प्रायः भूमिगत कोष्ठों[3] में रहते हैं जिनकी दीवारें रेशमी धागों से पटी रहती हैं। मादा पंखहीन होती हैं और नर में दो जोड़ी संकरे वर्णकित[4] पंख होते हैं। प्रथम गुल्फ खंड[5] अत्यधिक सूजा हुआ होता है और इसमें रेशम-ग्रंथियां[6] होती हैं।

गण 8—ब्लेटेरिया, तिलचट्टे[7] : सामान्यतया चपटे, मध्यम आकार के, लेकिन कभी कभी बड़े, पंखमुक्त या पंखहीन गहरे वर्णकित कीट जो मुख्य रूप से वनों में गिरी हुई पत्तियों में, गर्म और सीलभरे इलाकों में जीवन बिताने के लिए अनुकूलित होते हैं। हालांकि ये उड़ने में कमजोर होते हैं लेकिन बहुत तेज दौड़ सकते हैं। सभी तिलचट्टे निकास-पाइपों, शौचघरों और रसोइयों में नहीं पनपते और हालांकि परिचित तिलचट्टा वर्णकित भूरे या काले रंग का होता है। अधिकांश पूर्वी जातियां वस्तुतः बहुत सुंदर होती हैं और चमकदार हरे, पीले, लाल या नारंगी रंग की और सफेद धब्बे वाली होती हैं। यह एक प्राचीन समूह है जिसके जीवाश्म 250,000,000 साल पुराने भूवैज्ञानिक-स्तर में पाए जाते हैं। अधिकांश तिलचट्टे यूथी और रात्रिचर होते हैं और कुछ जातियां अंश-जलीय होती हैं और कुछ तो गुफाओं या चींटियों के बिलों में रहती हैं। हालांकि अधिकांश जातियां अंडे देती हैं लेकिन कुछ जरायुज[8] होती हैं।

गण 9—मैन्टोडिया, प्रार्थी मेन्टिड[9] : मेन्टिडों की अगली टांगें विचित्र आकार की होती हैं जिन्हें वे आगे की ओर जोड़े रहते हैं, ठीक उसी मुद्रा में जिसमें हम प्रार्थना करते समय हाथ जोड़े रहते हैं और इसीलिए उनका नाम प्रार्थी मेन्टिड पड़ा। हालांकि वस्तुस्थिति यह है कि वे प्रार्थना नहीं करते बल्कि अन्य कीटों का शिकार करते हैं। अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक मेन्टिड जमकर परभक्षण करते हैं और सभी तरह के कीटों को खाते हैं जिसमें दूसरे मेन्टिड, छोटे छोटे मेंढक, भेक[10], छिपकलियां आदि शामिल हैं। अगली दांतेदार टांगों से मेन्टिड बिना हिलेडुले इस इंतजार में रहते हैं कि शिकार उनकी पहुंच तक आ जाए। जब कोई असावधान शिकार भूल

---

1. परभक्षी : Predators
2. अंश-यूथी : Semi gregarious
3. कोष्ठ : Chamber
4. वर्णकित : Pigmented
5. गुल्फ खंड : Tarsal segment
6. रेशम ग्रंथियां : Silk glands
7. तिलचट्टा : Cockroach
8. जरायुज : Viviparous
9. प्रार्थी मेन्टिड : Praying mantid
10. भेक : Toad

से इनके पास आने की गलती कर बैठता है तो मेन्टिड अपनी अगली टांगें झटके से निकाल लेते हैं और शिकार को जकड़ लेते हैं। उसे मजबूती से पकड़े रह कर शांतिपूर्वक उसे जिंदा खाते हैं (चित्र 13)।

गण 10—आइसोप्टेरा : (समान पंखीगण) सफेद चींटियां, दीमक : ये न तो सचमुच चींटियां होती हैं और न सफेद होती हैं। दीमक कोमल शरीर, पंखयुक्त या पंखहीन बहुरूपी सामाजिक कीट हैं जो स्वभाव से अंतःभूमिक[1] होते हैं और सब तरह की सब्जियां खाते हैं, विशेषरूप से शुष्क लकड़ी। ये अक्सर जमीन के बड़े बड़े टीले बनाते हैं जो कभी कभी 13 मीटर तक ऊंचे होते हैं जिसमें जमीन के नीचे से लाई गई बालू के लगभग 11,750 टन महीन कण होते हैं। ये सेल्युलोस खाते हैं जिसे वह अपनी आंत्र में मौजूद सहजीवी[2] प्रोटोजोआ की सहायता से पचाते हैं। ये मनुष्य के लिए सबसे विनाशक कीट हैं (चित्र 8, 9, 11)।

गण 11—सोकोप्टेरा : छाल जूं[3] और पुस्तक जूं : सूक्ष्म, कोमल शरीर, पंखयुक्त या पंखहीन कीट जो दौड़ता और कूदता है। यह पेड़ की छाल पर और पुराने तथा सीले हुए कागजों तथा किताबों के बीच पाया जाता है। यह सब्जियों, कवक के बीजाणुओं आदि का आहार करता है।

गण 12—थीरैप्टेरा : काटने और चूसने वाली जूंएं : मनुष्य और बंदर के सिर और शरीर की जूं तथा पक्षी एवं श्वान की जूं आदि। सूक्ष्म पंखहीन बाह्यपरजीवी[4] जो या तो रक्त अथवा पिच्छ[5], शल्क[6] आदि पर अशन करती हैं।

गण 13—थाइसैनोप्टेरा, थ्रिप्स : सूक्ष्म, सामान्यतया गहरे वर्णकित कीट जिनके पंख संकरे झिल्लीमय होते हैं, जिन पर बालों की लंबी सीमांत झालर होती है। ये आमतौर पर फूलों, कलियों आदि में पाए जाते हैं। मुख सिर की निचली तरफ एक शंकु-जैसे प्रक्षेप[7] की नोंक पर होता है और इसके भाग असममितीय[8] होते हैं।

गण 14—हेटेरोप्टेरा : (विषमपंखी), मत्कुण (बग) : सामान्यतया बड़े, बहुत अधिक

---

1. अंतभूमिक : Subterranean
2. सहजीवी : Symbiotic
3. छाल जूं : Bark lice
4. बाह्यपरजीवी : Parasites
5. पिच्छ : Feather
6. शल्क : Scales
7. प्रक्षेप : Projection
8. असममितीय : Asymmetrical
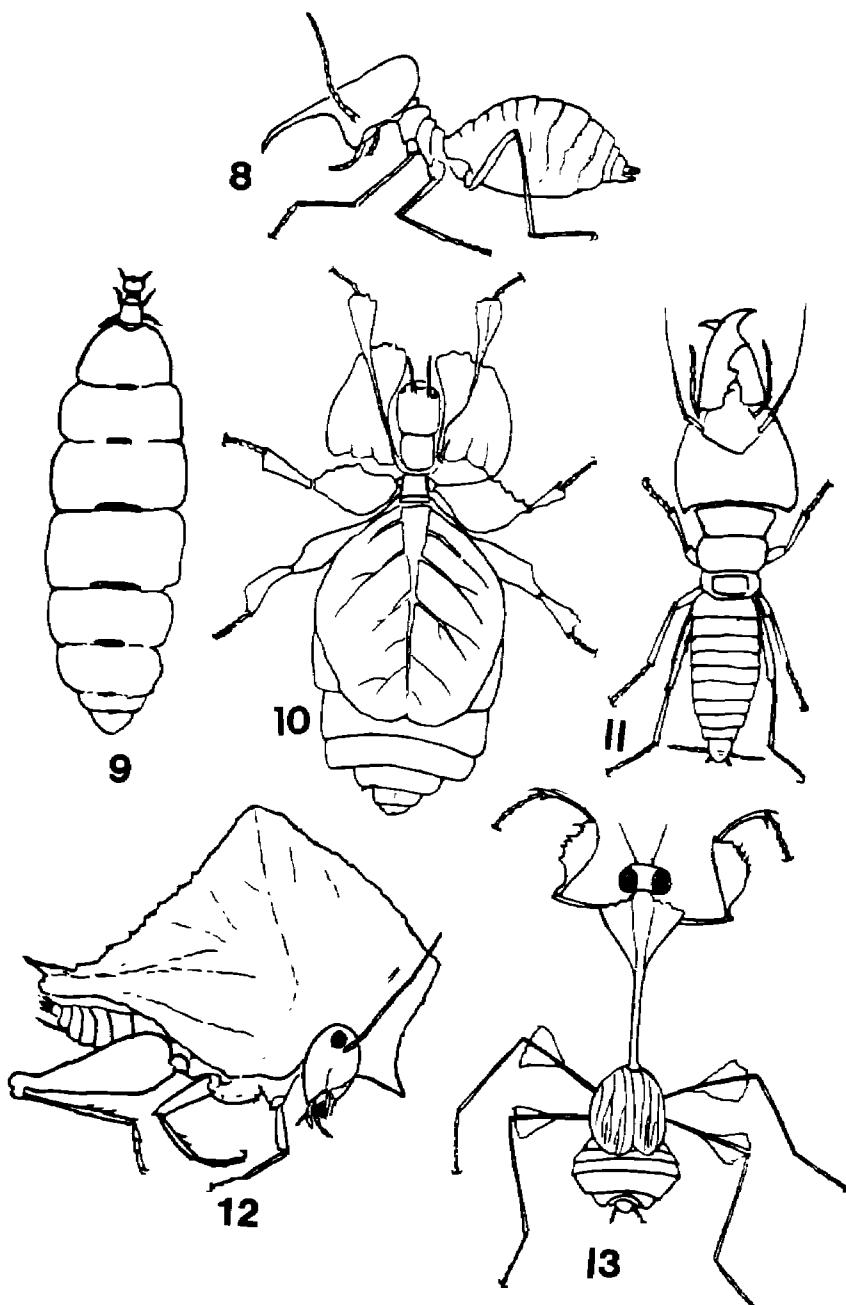
चित्र 8. नासूटे सैनिक दीमक 9. रानी दीमक 10. पर्णाभ कीट 11. सैनिक दीमक 12. *फाइलोटेटिक्स* 13. दक्षिण भारत से *गॉन्जिलस गॉन्जिलॉइडीज* नामक विचित्र दिखने वाला मेन्टिड जिसका शरीर लकड़ी जैसा और टांगें पत्ती की तरह फैली रहती हैं। यह घास में पाया जाता है।

वर्णकित और कठोर-शरीरी, स्थलीय या जलीय कीट जिनके अग्र-पंखों का आधारी आधा भाग मोटा और चर्मिल या शृंगी होता है लेकिन सिरे का भाग झिल्लीमय होता है। पश्चपंख झिल्ली जैसे होते हैं। सिर चोंच की तरह निकला होता है, जो विशेष रूप से पौधों की बाह्य त्वचा[1] या प्राणियों की त्वचा को भेदने के लिए बना होता है ताकि पौधों का रस या प्राणियों का रक्त चूसा जा सके। मत्कुण की विशिष्ट दुर्गंध कुछ ग्रंथियों से निकलती है (चित्र 14-23)।

गण 15—होमोप्टेरा : (समपंखी), साइकेडा, एफिड, चूर्णी मत्कुण[2] (मिलीबग) शल्क कीट, मेम्ब्रेसिड कीट : अधिकतर कोमल शरीरी कीट जिनमें पंखों के दोनों जोड़े झिल्लीमय होते हैं (कभी कभी पंख नहीं भी होते)। पादप-रस चूसने के लिए सिर पर एक चूषक-तुंड[3] होता है। लाख का कीट इसी गण के अंतर्गत आता है (चित्र 24.31)।

गण 16—कोलियोप्टेरा : (वर्मपंखी), भृंग[4] : बड़े या छोटे या सूक्ष्म कठोर शरीरी और प्रायः सतरंगी कीट जिनके झिल्लीमय पश्चपंख ही उड़ने के काम में आते हैं और अग्रपंख इनकी सुरक्षा के लिए शृंगीय आवरण में रूपांतरित हो जाते हैं। ये जातियां शाकाहारी और मांसाहारी दोनों ही होती हैं। यह कीटों का सबसे बड़ा गण है और इसकी जातियां स्थलीय, वृक्षीय, जलीय, गुहावासी या भूमिगत होती हैं (चित्र 32-52)।

गण 17—हाइमेनोप्टेरा : (कलापंखी गण) बर्र[5], वरट[6], मक्खी[7] और चींटी : सामान्यतया छोटे कीट जिनके दो जोड़ी झिल्लीमय पंख होते हैं। इन पंखों में थोड़ी-सी शिराएं होती हैं। अग्रपंख की तुलना में पश्चपंख हमेशा छोटे होते हैं। ये प्रायः सामाजिक कीट होते हैं। मनुष्य और इनके आमाप का अनुपात लिया जाए तो इनकी विशाल संगठनात्मक क्षमता और मस्तिष्क का परिवर्धन मानव के बाद दूसरे स्थान पर हैं। ये शिकारी, शाकाहारी, सड़ागला-मांसाहारी, पराग या मकरंद अशनकार या कम से कम अपने प्रारंभिक जीवनकाल में परजीवी भी, होते हैं (चित्र 53-60, 63-67)।

गण 18—न्यूरोप्टेरा : जाल-शिरावाले, जालपंख कीट[8], ऐन्ट लॉयन : अधिकतर सूक्ष्म

---

1. बाह्य त्वचा : Epidermis
2. चूर्णी मत्कुण : Mealy bug
3. चूषक-तुंड : Sucking rostrum
4. भृंग : Beetles
5. बर्र : Wasp
6. वरट : Hornet
7. मक्खी : Bee
8. जालपंख कीट : Lacewing insects
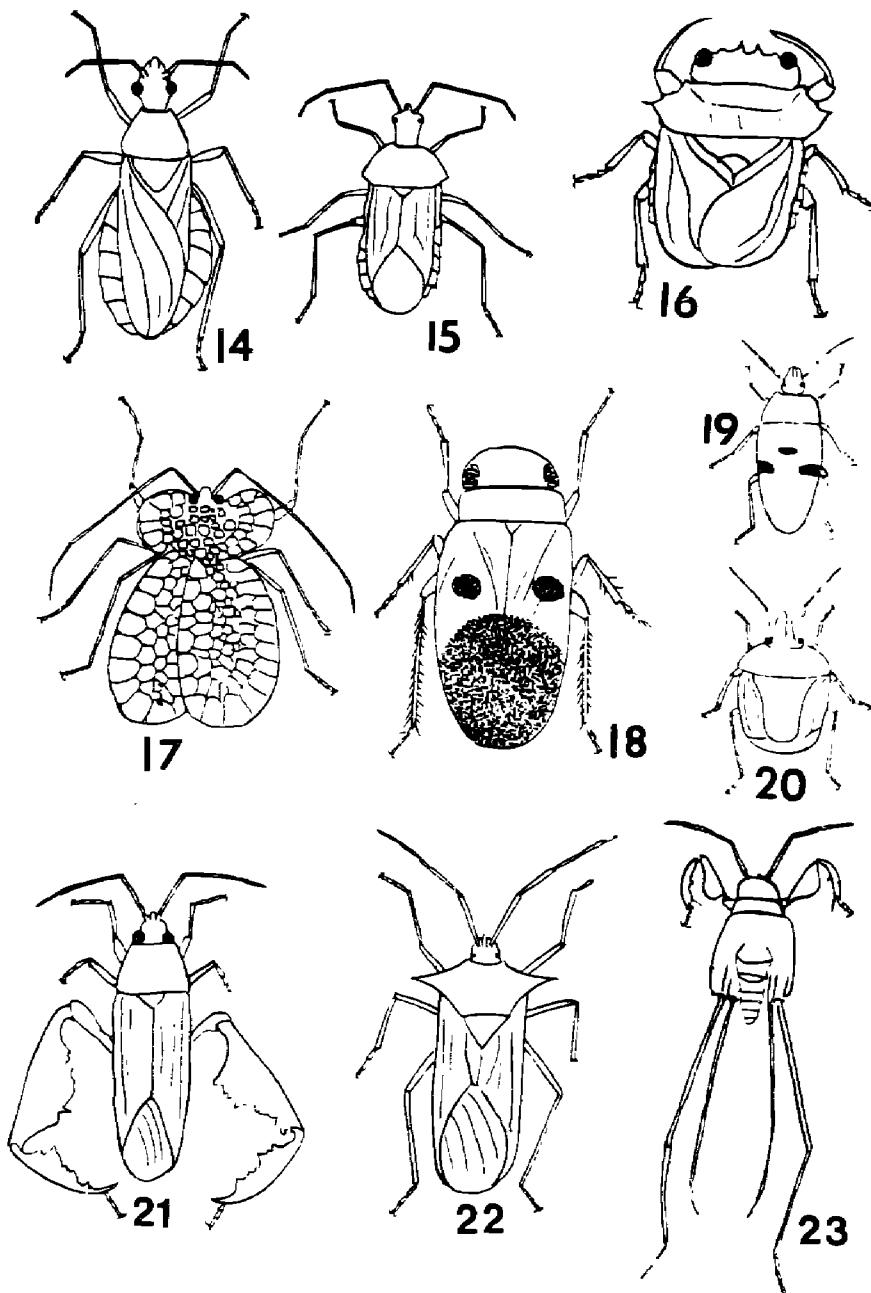
चित्र : कुछ सामान्य मत्कुण (बग)

14. रेडुविड, *कानोरहाइनस* 15. *गोनोसीरस* 16. *मोनोनिक्स* जल-मत्कुण 17. टिंजिड (फीता-मत्कुण) 18. *निफोटेटिक्स* 19. स्कूटेलेरिड मत्कुण, *क्राइसोकोरिस* 20. पेन्टाटोन्यूइड *यूसर्कोकोरिस* 21. शूकीय मत्कुण, *मिरोपैकिस* 22. *क्लेवीजरेला* 23. जलीय मत्कुण, *यूरेटीज*
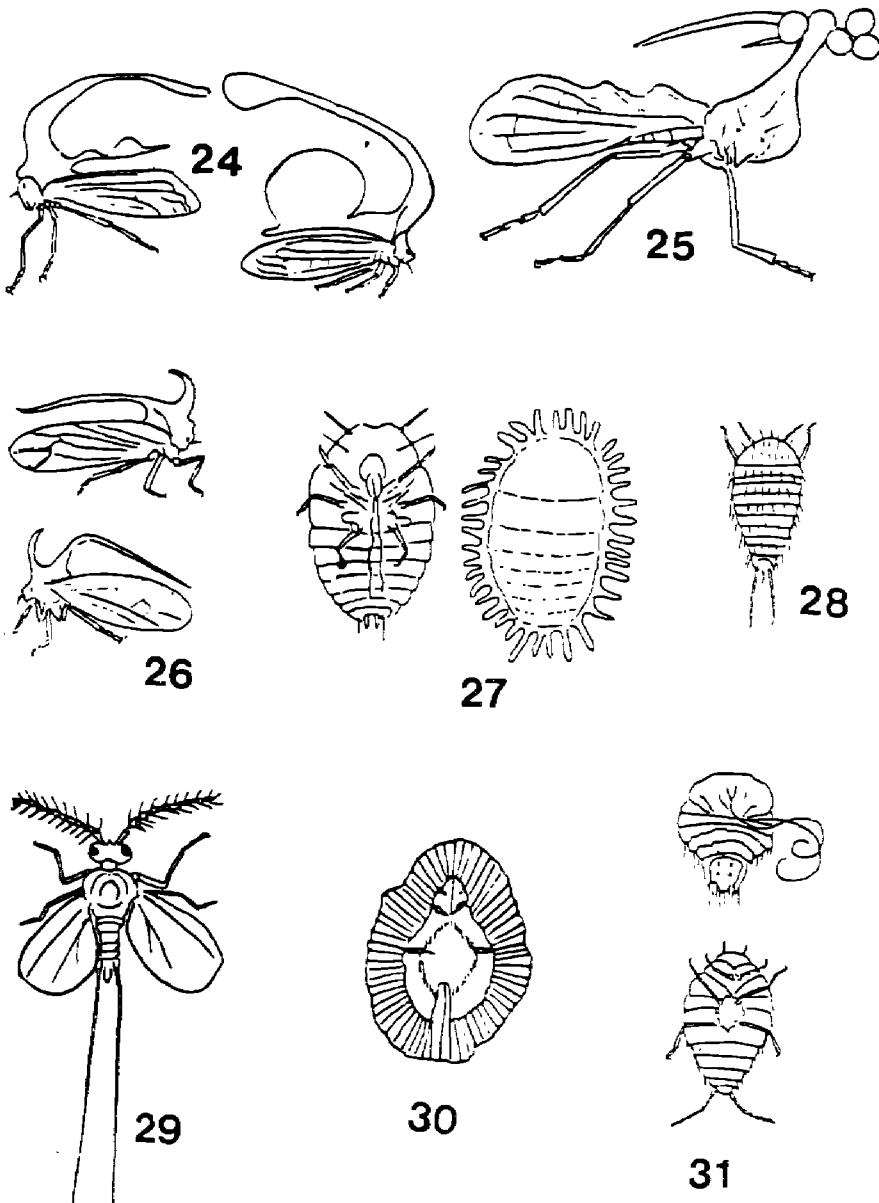
चित्र : 24,25,26. विचित्र शृंगों, घुंडियों, शूकों और प्रक्षेपों वाले कुछ अनोखे मेम्ब्रेसिड मत्कुण जो पादप-रस पीने वाले अहानिकर कीट हैं। 27, 28, 29, 30 और 31 चूर्णी मत्कुण, कॉक्सिड और शल्क कीट जो स्थायी रूप से स्थानबद्ध (Sessile) पादप-रस चूषक के रूप में अपह्रासित (Degenerate) हो जाते हैं। ये प्रचुर मात्रा में रक्षात्मक मोम आवरण का स्रवण करते हैं। केवल तरुण लार्वा (28) ही उपयुक्त स्थान की खोज में चलने में समर्थ है ताकि वह भेदन-शूकिकाओं को पौधे में घुसेड़ सके। उसके बाद यह स्थायी रूप से उसी स्थल पर चिपका रहता है और रस खींचता रहता है।

या मध्यम-आकार वाले कीट जिनके दोनों जोड़ी पंख झिल्लीमय और शिराएं जालयुक्त होती हैं। ये अधिकतर परभक्षी होते हैं।

गण 19—ट्रिकोप्टेरा : चेल मक्खियां[1] : चेल लार्वा एक अपरिपक्व जलीय अवस्था है। यह लकड़ियों के टुकड़ों, छोटे पत्थरों और पानी में मिलने वाले किसी भी उपयुक्त पदार्थ को रेशमी धागों के जाल में बांधकर अपना खोल बनाता है। लार्वा इन खोलों में रहते हैं और जहां कहीं भी जाते हैं इन खोलों को अपने साथ ले जाते हैं। प्रौढ़ में दो जोड़ी रोमिल पंख होते हैं (चित्र 62)।

गण 20—लेपिडोप्टेरा : (शल्कपंखी गण), तितलियां और शलभ[2] : अधिकतर बड़े और चमकीले रंग वाले कीट जिनमें दो जोड़ी पंख होते हैं और एक लंबा कुंडलित शुंड[3] होता है जो फलों से द्रव या फलों से मकरंद को पीने के काम आता है। पंख अतिव्यापी अर्थात एक दूसरे पर चढ़े हुए रंगीन शल्कों से ढंके रहते हैं। लार्वा अधिकतर पादप भोजी होते हैं। रोमिल इल्लियां[4] इसी गण में आती हैं।

गण 21—डिप्टेरा : (द्विपंखी गण), मक्खियां, मच्छर, डांस, मशकाभ[5] : अधिकतर छोटे और सूक्ष्म कीट भी जिनमें केवल एक जोड़ी पंख होते हैं—अग्रपंख। पश्चपंख अवशेष के रूप में होते हैं। जिन्हें संतोलक[6] कहते हैं। मुख द्रवों का स्पंज करने या पादप रसों को पीने और रक्त चूषण के लिए उपयुक्त होते हैं। लार्वा क्षय हो रहे जैव पदार्थ में, पौधों और कवकों[7] के भीतर प्रजनन करते हैं या विभिन्न प्राणियों पर परजीवी होते हैं या जलीय भी होते हैं।

गण 22—एपाहानिप्टेरा : पिस्सू : सूक्ष्म, पंखहीन, कूदने वाले कीट जिनकी देह पिचकी हुई होती है ताकि जिन प्राणियों पर वे अस्थायी बाह्यपरजीवी होते हैं उनके बालों में सुगमता और स्वतंत्रता से चल-फिर सकें। आमतौर पर कृंतकों[8], कुत्तों, बिल्लियों और दूसरे नियततापी प्राणियों[9] पर पाए जाते हैं। लार्वा गंदगी में प्रजनन करते हैं।

---

1. चेल मक्खियां : Caddisflies
2. शलभ : Moth
3. कुंडलित शुंड : Proboscis
4. इल्लियां : Caterpillar
5. मशकाभ : Midges
6. संतोलक : Halteres
7. कवक : Fungus
8. कृंतक : Rodents
9. नियततापी प्राणी : Warm blooded animals
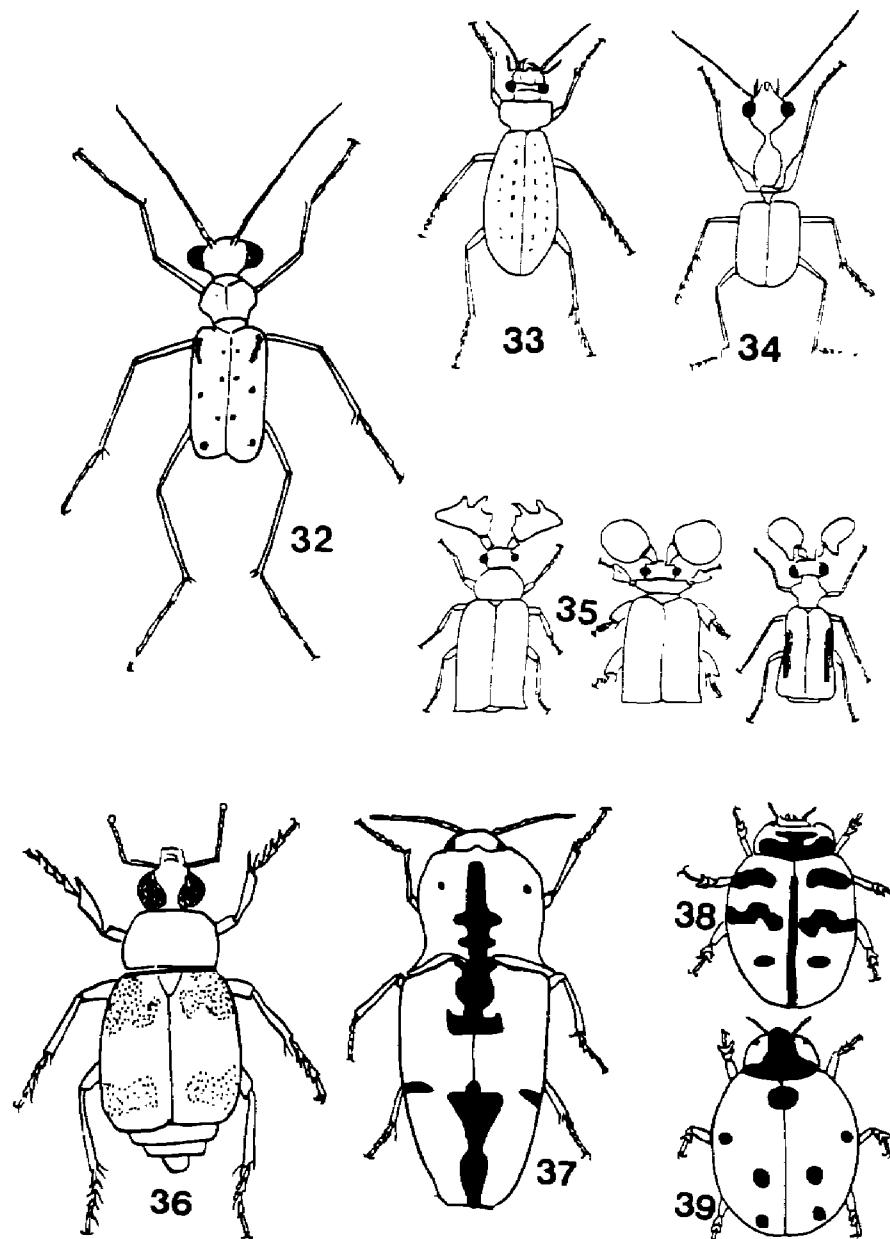
चित्र 32. सामान्य व्याघ्र-भृंग (tiger beetle), *सिसिन्डेला* 33. सामान्य भू-भृंग (ground beetle), *कैरेबस* 34. चींटी जैसा भृंग, *सेलीना* 35. कुछ सामान्य पॉसिड भृंग जिनकी शृंगिकाएं अनोखी दिखाई देती हैं। 36. सेक्सटन भृंग, *नेक्रोफोरस* 37. टकटक-भृंग (click beetle) *एलाउस स्पीशियोसस* 38. छह-चित्तीवाला सोनपंखी भृंग (लेडीबर्ड भृंग), *मीनोकाइलीज* 39. सात-चित्तीवाला सोनपंखी भृंग *कॉक्सीनेला सेप्टेम्पंक्टेटा*।
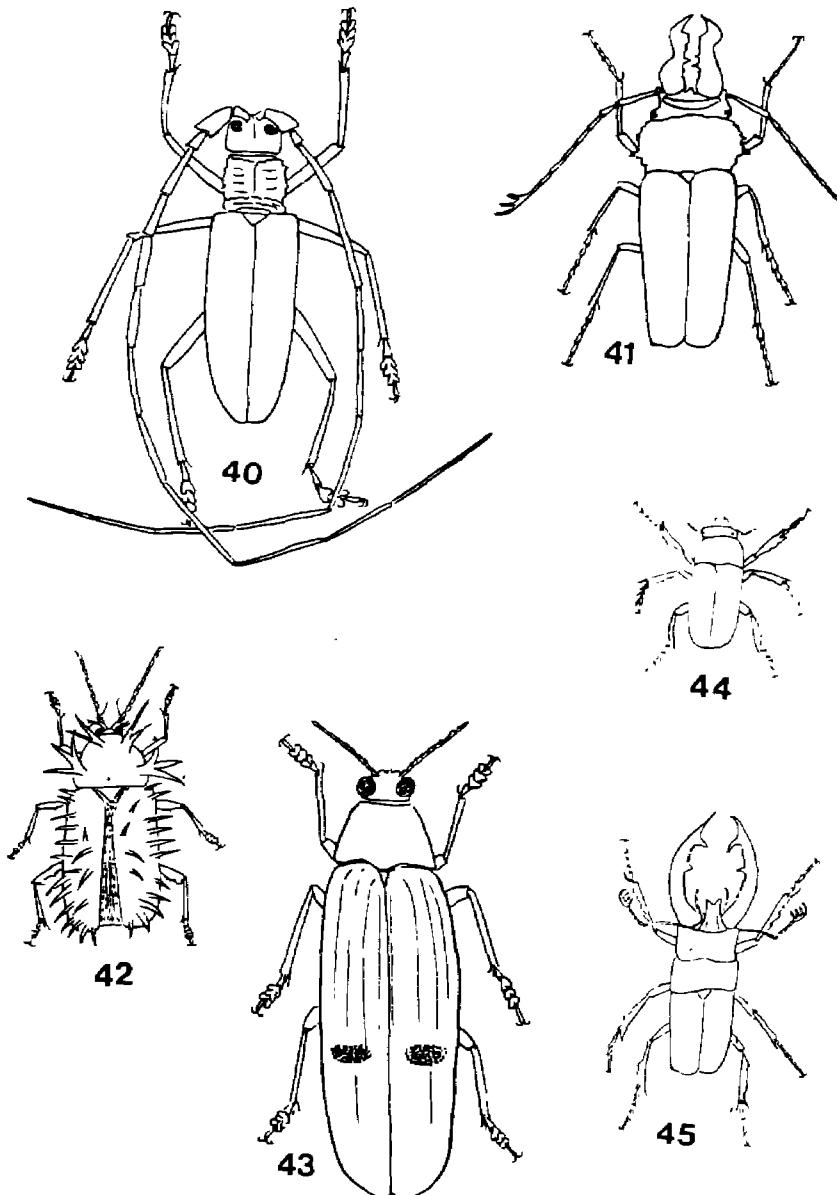
चित्र : कुछ सामान्य भृंग

40. दीर्घशृंगी भृंग (longicorn beetle), *नियोसेरेम्बिक्स पेरिस* 41. *ओटोक्रेटीज एवियस*, पूर्वी हिमालय के वनों में पाए जाने वाला सामान्य ट्रिक्टिनोमिड भृंग 42. कोसीसोमेलिड भृंग, धान हिस्पा, *हिस्पा अर्मीजेरा*, 43. *कैटाजेन्या बाइकोलर* 44. सामान्य महामृग भृंग, *ल्यूकैनस* की मादा 45. *ल्यूकैनस* का नर।
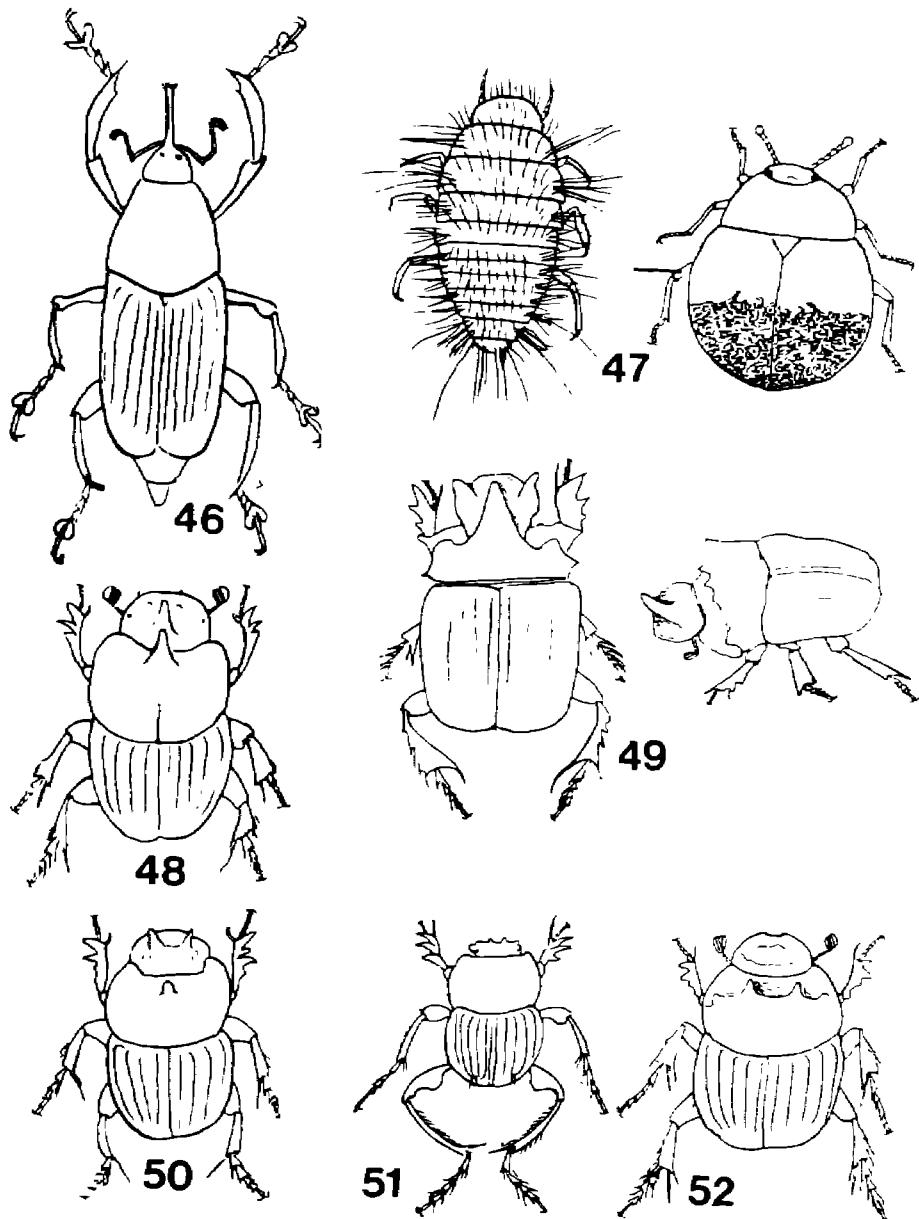
चित्र : कुछ सामान्य भृंग

46. एक बड़ा प्रोथ भृंग (snout beetle) (घुन) *प्रोटोसेरस ग्रैन्डिस,* 47. लोमश रीछ भृंग, बायीं तरफ लार्वा है जो गरम कपड़ों को खाता और क्षति पहुंचाता है तथा दायीं ओर प्रौढ़ भृंग है, 48. एक सामान्य गुबरैला (dung-roller beetle) *ऑन्थोफेगस सेगिटेरियस* मादा, 49. सामान्य गैंडा भृंग *हेलियोकॉप्रिस ब्यूसिफेलस* (ऊपरी ओर पार्श्व दृश्य) 50. *ऑन्थोफेगस सेगिटेरियस* नर 51. एक सामान्य स्कैरब भृंग, मकड़ी जैसा *सिसिफस हिर्टस* 52. *कोकोबियस डेन्टीकोलिस,* नर भृंग।
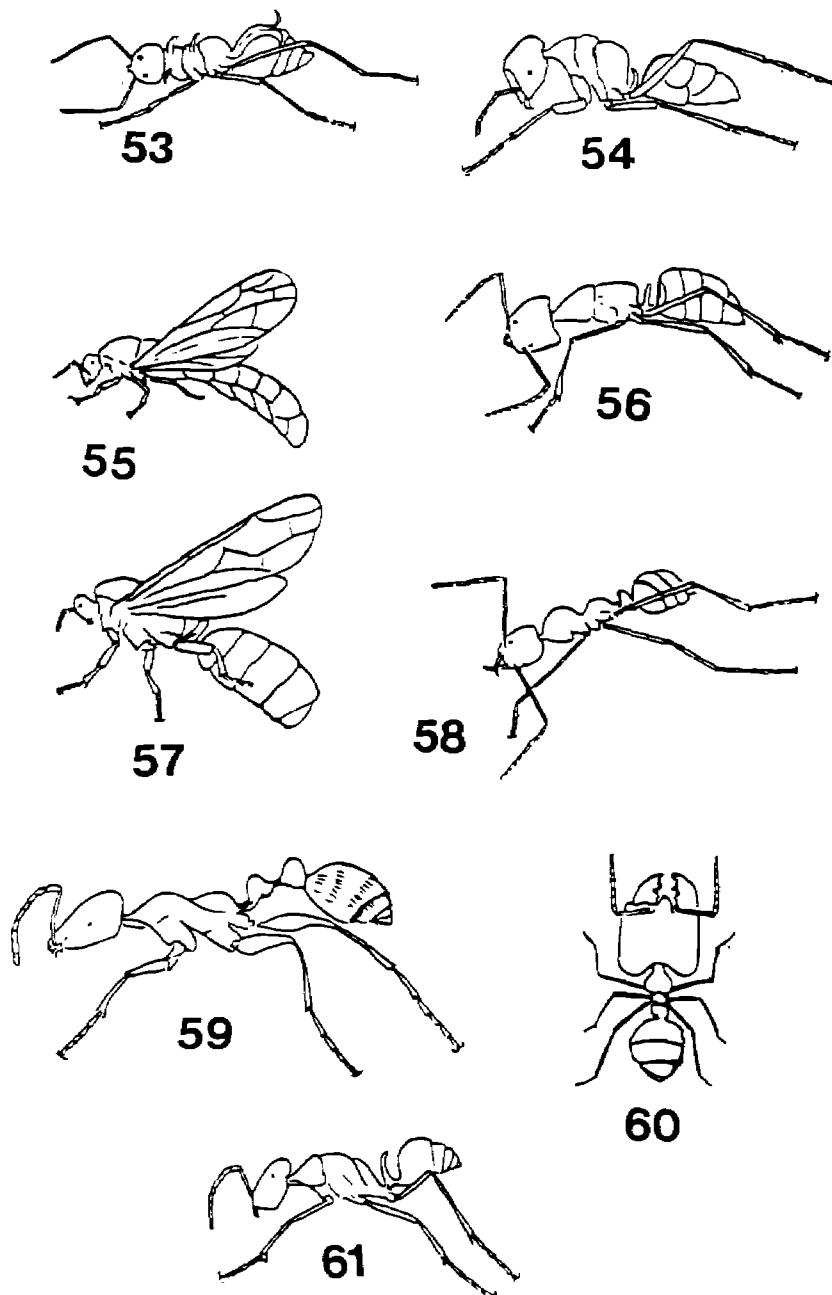
चित्र : कुछ सामान्य चींटियां

53. *पॉलीरेकिस* 54. *कैम्पोनोटस*, तक्ष-चींटी (carpenter ant), 55. परिचालक-चींटी (driver ant), *डोरीलस*, नर 56. *डॉलिकोडेन्ड्रॉन*, कर्मी (worker) 57. *एनिसेटस*, कर्मी 58. सामान्य पैराओ चींटी, *ओईकोफिला स्मारग्डीना*, कर्मी 59. *सोलेनोप्सिस*, कर्मी 60. *फीडोल*, कर्मी 61. *पॉलिर्गस*, कर्मी
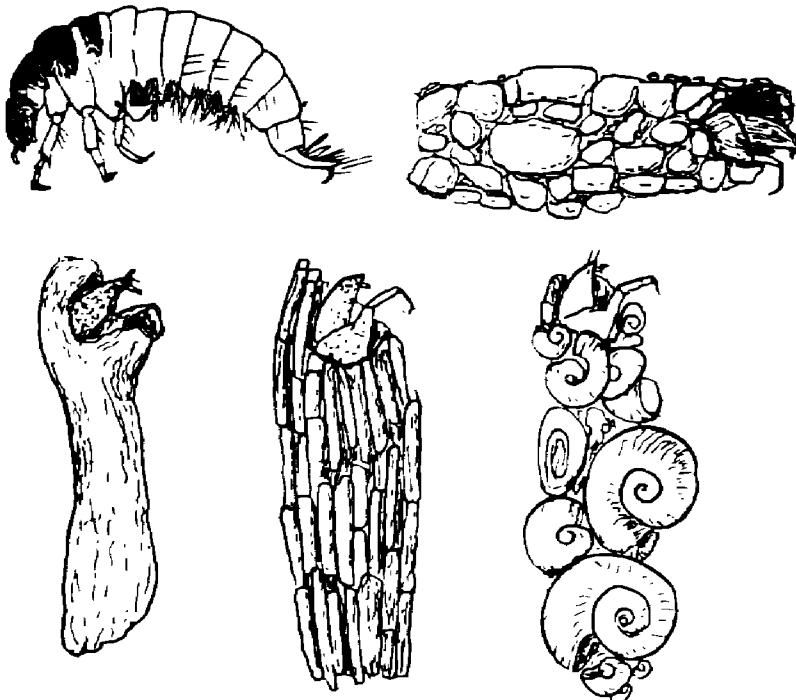
चित्र 62. चेल लार्वे और उनके खोल। ये खोल रेशमी धागों से बालुका-कणों और छोटी छोटी गुटिकाओं, लकड़ियों, घोंघे के खाली कवचों आदि को रेशमी जाल में बांधकर बनाए जाते हैं।

गण 23—थाइसैन्यूरा : रजत मीनाभ[1] कीट : छोटे पंखहीन, दौड़ने वाले कीट जिनका शरीर रजताभ-श्वेत शल्कों से ढंका रहता है। आमतौर पर चट्टानों, पेड़ों की छालों पर और पुरानी सीली किताबों के बीच पाए जाते हैं।

गण 24—कोलेम्बोला : कुंडल पुच्छ[2] और हिम-पिस्सू[3] : सूक्ष्म, कोमल शरीरी, पंखहीन कीट जो अपने शरीर की निचली तरफ स्थित शिकंजे के बीच में पड़ी पूंछ को अचानक मोचित[4] करके कूदते हैं। ये मिट्टी, मॉस, तालाबों और झीलों की सतह पर तथा पर्वत की बर्फ पर पाए जाते हैं।

---

1. रजत मीनाभ : Silver fish
2. कुंडल पुच्छ : Spring tail
3. हिम पिस्सू : Snow flea
4. मोचित : Realsing
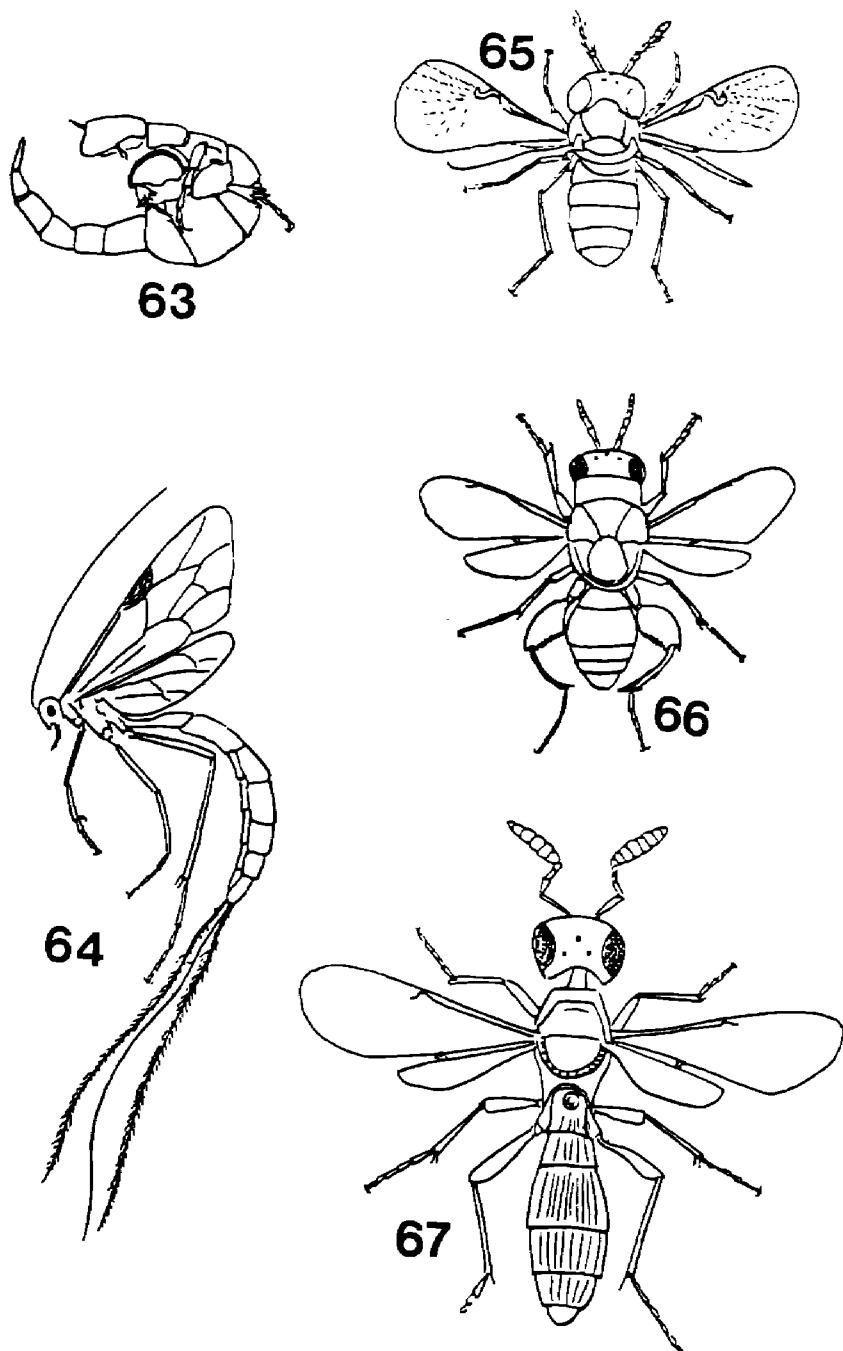
चित्र : हाइमनोप्टेरा (कलापंखी गण) के कुछ लाभदायक कीट

63. अंजीर-कीट 64. इकन्यूमोन 65. *ट्राइकोग्रामा* जो अनेक सामान्य हानिकारक कीटों के अंडों में परजीवी बनकर रहते हैं, 66. *ब्रैकीमीरिया*, इल्लियों का परजीवी 67. *सीलियो* टिड्डों के अंडों का परजीवी।

इन सामान्य कीट गणों के अतिरिक्त भारत में कुछ गौण गण भी हैं जैसे कि जोरैप्टेरा, ग्राइलोब्लाटॉइडिया, स्ट्रेप्सिप्टेरा, मेगोलोप्टेरा, मीकोप्टेरा, रैफीडिऑइडिया, एप्टेरा और प्रोटूरा। गैम्बिआई[1] चूहे पर बाह्य परजीवी के रूप में पाया जाने वाला गण डिप्लोगोसैटा भारत में नहीं मिलता।

1. गैम्बिआई : Gambian

2

कीटों के तौर-तरीके और रंग-ढंग

कीट उड़ान के चमत्कार

कीट अत्यधिक अशांत प्राणी हैं। उनकी शारीरिक गतिविधियां और सहनशक्ति तथा उड़नशक्ति सचमुच चकित कर देने वाली हैं। वे चिकनी और फिसलने वाली पॉलिश की हुई सतहों पर रेंग सकते हैं, दौड़ सकते हैं, ऊपर चढ़ सकते हैं और उन्हें खोद सकते हैं। वे तलाबों और झीलों में पानी की सतह पर भी चल सकते हैं, गोता लगा सकते हैं और तैर सकते हैं। जलमग्न फिसलनभरे पत्थरों पर बिना प्रयास के सर्पण कर सकते हैं। दरअसल वे हमेशा ही कुछ न कुछ करते रहते हैं। हालांकि ऊपर से यह सब लक्ष्यहीन दिखता है लेकिन उनकी सारी गतियां और कार्य बहुत जानबूझकर किए जाने वाले और उद्देश्यपूर्ण होते हैं और वे कभी भी हार नहीं मानते।

कीटों की अबाधरूप से चलने वाली गतिविधियों में उनकी उड़ान सबसे आश्चर्यजनक और सबसे रोचक है। कीट शरीर की संपूर्ण रचना इस अकेली गतिविधि के सांचे में ढली है। शेष संधिपाद (संधियुक्त टांगों वाले प्राणी) पूर्वजों से कीटों का विशिष्ट समूह के रूप में विभेदन उड़ने के प्रयासों से जन्मा है। वस्तुतया अधिकांश कीटों की प्रमुख गतिविधि उड़ान ही है। बहुत से कीट तो ऐसे हैं जो उड़ते हुए ही समागम करते हैं। कीटों की उड़ान कई मायनों में बेजोड़ है।

संभवतया पृथ्वी पर उड़ सकने वाले आदि प्राणियों में पूरे विश्व में कीटों की उड़ान-क्रियाविधि सबसे सरल और सबसे दक्ष है। उड़न मशीन के रूप में कीट का शरीर मनुष्य द्वारा निर्मित अधिकांश वायुयानों से यहां तक कि पक्षियों से भी कहीं अधिक श्रेष्ठ है। पंख उनके उड़ने के अंग हैं, लेकिन सारा शरीर ही जटिल रूप से उड़ान में शामिल होता है। सामान्यीकृत रूपों को छोड़कर पश्चपंखों की तुलना में अग्रपंख बड़े होते हैं। कीट पंख मूलभूत रूप से वक्ष की कंकाल पट्टिकाओं[1] की विस्तारित पार्श्व पालियां[2] हैं। वे आमतौर पर चौड़े होने की अपेक्षा लंबे अधिक होते हैं। सिरे पर संकरे होते हैं और एक संकीर्ण

---

1. कंकाल पट्टिकाएं : Skeletal plates
2. पार्श्व पालियां : Side lobes

आधार द्वारा शरीर से जुड़े रहते हैं। कीट पंख का अगला उपांत[1] लगभग सीधा और पिछला उपांत गोल होता है जो कि वायुगतिक सिद्धांतों[2] के अनुरूप है। पंख-झिल्ली सावधानीपूर्वक व्यवस्थित शिराओं द्वारा पुनर्बलित[3] और दृढ़ होती हैं। ये पंखों को ढेर हो जाने से बचाती हैं और जब कीट उड़ रहा होता है तब शरीर के भार को समुचित-रूप से बांटने का काम करती हैं और इस प्रकार वायु दाब, कर्षण[4] आदि के जटिल तनाव को प्रभावशाली तरीके से प्रति-संतुलित[5] करती हैं।

उड़ान में पंख ऊपर की ओर (उपरिमुखीगति), आगे की ओर (अग्रगति), नीचे की ओर (अधोगति) और पीछे की ओर (पश्चगति) तेजी से चलते हैं। ऐसा एक निश्चित लयबद्ध अनुक्रम में होता है। पंख के निघात[6] के साथ साथ अग्रगति होती है। ऊर्ध्वघात[7] के साथ ही पश्चगति और पंख के पश्च उपांत का विक्षेपण[8] होता है, यानी वे झुक जाते हैं। ऊर्ध्वघात की अपेक्षा निघात में अधिक समय लगता है। पंख की सारी गतियों के दौरान शरीर क्षैतिज की अपेक्षा थोड़े उच्च कोण की स्थिति में यानी तिरछा-सा रहता है और बाकी शरीर की तुलना में सिर भी ऊंचा रहता है। जिससे शक्तिशाली उठान (उत्थान) मिलती है। इन जटिल लेकिन वास्तविक तेज गतियों के फलस्वरूप ऐसा लगता है मानो पंखों की नोक से पाशों[9] की शृंखला बनती हो। पंखों की गतियों में एक कुशल वायुपत्रक[10], नोदक[11], स्टीयरिंग, दिक्नियंत्रक[12] और ब्रेक की मिलीजुली क्रियाएं शामिल हैं। पंख के विस्पंद[13] कीट के शरीर के ऊपर और शरीर के सामने एक निम्नदाब बनाने के साथ शरीर के नीचे और पीछे एक उच्च दाब क्षेत्र बनाते हैं जिससे उत्थान-बल[14] और नोदन शक्ति मिलती है। उड़ता हुआ कीट बीच हवा में एकदम लटका हुआ ही होता है। तेजी से उड़ने वाले कीटों में, अग्रपंखों की गति उनके पीछे वायु-प्रक्षोभ[15] पैदा करती है। इसलिए पश्चपंख सबसे उत्तम ढंग से अग्रपंखों से इस तरह जुड़े हुए होते हैं कि प्रक्षोभ का प्रभाव बहुत ही कम या समाप्त ही हो जाता है। हाइमनोप्टेरा और डिप्टेरा गणों में पंख-विस्पंदों की आवृत्ति[16] एक हजार प्रति सेकंड से भी अधिक होती है। **फॉर्सीपोमिया** एक छोटी मक्खी होती है जिसके नर-पंख का विस्पंद 988-1041 बार प्रति सेकंड होता है। रात के समय हमारे कानों में आने वाली

---

1. उपांत : Margin
2. वायुगतिक सिद्धांत : Aerodynamic principles
3. पुनर्बलित : Reinforced
4. कर्षण : Drag
5. प्रति-संतुलित : Counter balancing
6. निघात : Downstroke
7. ऊर्ध्वघात : Upstroke
8. विक्षेपण : Deflection
9. पाश : loop
10. वायुपत्रक : Airfoil
11. नोदक : Propeller
12. दिक्नियंत्रक : Rudder
13. विस्पंद : Beats
14. उत्थान-बल : Lifting force
15. वायु-प्रक्षोभ : Air turbulence
16. आवृत्ति : Frequency

मच्छर की चिरपरिचित आवाज, मक्खियों की भिनभिन (जिसके कारण संस्कृत में अनुरणनतः इनका नाम भ्रमणा पड़ा) और शलभों का कोमल गुंजन आदि सभी उनके पंख-विस्पंदों के परिणाम हैं। ये विस्पंद परिवर्ती आवृत्तियों के होते हैं।

पंख-विस्पंद वक्ष में पेशियों के द्रुत संकुचन[1] से होते हैं। यह विरोधाभासी है कि अधिकांश कीटों में वास्तव में कोई भी पेशी पंखों से सीधे नहीं जुड़ी होती। कुछ सर्वोत्तम उड़न-कीटों के पंखों में तो पेशी होती ही नहीं। पंख घात[2] वास्तव में टांग के आधार से वक्ष की ऊपरी कंकालीय-पट्टिका तक फैली पाद पेशियों और शरीर की कवच-पट्टिकाओं को एक दूसरे के विपरीत चलाने वाली धड़ की अनुदैर्ध्य पेशियों[3] द्वारा होते हैं। पंख इस ढंग से हिन्ज होते हैं (उत्तोलक की तरह) कि पाद का प्राथमिक आधारभूत भाग आलम्बक[4] की तरह क्रिया करता है। पंख ऊपरी वक्षीय कंकाल-पट्टिका के चापीय[5] हो जाने से अवनमित[6] और चपटा हो जाने से उत्थित[7] होते हैं। जब कीट भूमि पर होता है तब कीट के चलने या दौड़ने या कूदने पर इन पेशियों का संकुचन टांगों को चलाता है। जब कीट उड़ता है तो टांगें शरीर के साथ नीचे की ओर बड़ी सफाई के साथ मजबूती से सटी रहती हैं जिससे कि उन्हीं पेशियों के संकुचन अब पंख चलाते हैं। इस सारे शृंखलाबद्ध घटनाक्रम का चमत्कार भिन्न पेशियों की समन्वित क्रिया में निहित है जो व्यापक रूप से आमाप स्थिति और शक्ति आदि में परिवर्तित होते हैं। कीट उड़ान की अद्वितीय क्रिया-विधि का यह तो बहुत ही सामान्य सा वर्णन है। जिन पाठकों की कीट उड़ान में होने वाली घटनाओं के जटिल रूपांतरणों[8], विशिष्टीकरणों[9] और एकदम सही वायुगतिक अनुक्रमों में रुचि है उनके लिए संबंधित उच्च पुस्तकों का अध्ययन आवश्यक है, फिर भी इतना कहा जा सकता है कि कीट उड़ान के बारे में अभी भी अनेक प्रश्न अनुत्तरित हैं। कीट और पक्षियों की उड़ान में अनेक मूलभूत अंतर हैं। पक्षियों में पाद-पेशियां और पंख-पेशियां एकदम से भिन्न हैं लेकिन कीट में पाद-पेशियां उड़न-उपकरण[10] का भाग हैं। पक्षियों में पाद-पेशियां वस्तुतया पश्चपाद-पेशियां हैं और पंख-पेशियां हाथ यानी अग्रपाद की पेशियां हैं। पक्षी अपना उत्थान बल पूरी तरह से अपने शरीर को आगे धकेलकर अग्रकर्ष[11] से बनाता है लेकिन कीटों में आगे की ओर का धक्का अग्रक्षेप[12] उठान की कीमत पर होता है। यह जो कुछ पक्षियों में होता है उससे विपरीत है। पक्षी अपनी आगे की ओर होने वाली गति से ऊंचाई प्राप्त करता है लेकिन कीट को ऐसा करने की जरूरत नहीं है। पक्षी तो प्रत्यक्ष-रूप

---

1. संकुचन : Contraction
2. पंख घात : Strokes
3. अनुदैर्ध्य पेशियां : Longitudinal Muscles
4. आलम्बक : Fulcrum
5. चापीय : Arching
6. अवनमित : Depressed
7. उत्थित : Elevated
8. रूपांतरण : Modification
9. विशिष्टीकरण : Specialisation
10. उड़न उपकरण : Flight apparatus
11. अग्रकर्ष : Forward push
12. अग्रक्षेप : Forwad thrust

से उदग्रत[1] ऊपर की ओर उत्प्रस्थान[2] नहीं कर सकता और इसके साथ साथ आगे की ओर चले बिना भी ऐसा नहीं करता जबकि कीट का उदग्रत उत्प्रस्थान बहुत ही सहज है और बिना प्रयास होता है। कीट आगे की ओर उड़ सकता है, बीच हवा में अपनी उड़ान अचानक बंद कर सकता है किसी फूल के ऊपर गतिहीन मंडरा सकता है, ऊपर उठ सकता है या हवा में गोता लगा सकता है, बगलों की ओर लपक सकता है और कुंडली जैसी गति कर सकता है। यह सब एक सतत संक्रिया[3] में कर सकता है। कुछ कीट आलस भाव से झपटते हैं लेकिन कुछ बिजली जैसी चाल से झपटा मारते हैं। श्येन शलभ[4] उड़ते समय प्रायः 15 मीटर प्रति सेकंड तक की चाल पकड़ लेते हैं और कुछ व्याध पतंग 10 मीटर प्रति सेकंड की चाल से नियमित रूप से उड़ते हैं।

कीट आहार और अशन विधियां

कीटों का आहार और अशन स्वभाव किसी भी तरह उनकी उड़ान से कम रोचक नहीं है। कीट पत्ती, छाल, कली, फूल, परागकण, मकरंद, फल, बीज, गुठली, जड़, मॉस, लाइकेन, कवक और दूसरे कीटों समेत सभी प्राणियों के पंख, शल्क, बाल, नाखून, खुर, त्वचा और मांस खाते हैं। उनके भोजन में सभी मृत और क्षयकारी जैव पदार्थ, विभिन्न प्राणियों का शमल[5], प्रकाष्ठ[6], काष्ठ, शव, उद्योगों का कच्चा माल, निर्मित और पैक किया हुआ माल, किताबें, फर्नीचर, चमड़े की वस्तुएं, ऊन, कपड़े, सिगरेट, आटा, रोटी, बिस्कुट, सूखे मेवे, चाकलेट, म्यूजियम (संग्रहालय) के प्रतिदर्श (नमूने) और रबड़ तक शामिल हैं। कुछ सर्वाहारी कीट अनेक किस्म की चीजें खाते हैं। कुछ अपने आप को कुछ चुनी हुई खाद्य सामग्री तक सीमित रखते हैं तो दूसरे मनपसंद खाने पर जीवन निर्वाह करते हैं। कीटों की अधिकांश जातियां जैसे कि टिड्डे शुद्धरूप से शाकाहारी हैं लेकिन व्याध पतंग और मेन्टिड जैसे दूसरे कीट मांसाहारी हैं, तो कुछ ऐसे भी हैं जो केवल सड़े मांस का भोजन करते हैं।

अधिकतर कीट पेटू होते हैं लेकिन उनमें से बहुत से दीर्घकाल तक भूखे रह सकते हैं। यह भी अद्वितीय बात है कि कीटों की बहुत बड़ी संख्या केवल अपने बचपन में ही खाती पीती है, प्रौढ़ खाते ही नहीं या कभी कभार फूलों से मकरंद की चुस्की ले लेते हैं। मई मक्खी केवल लार्वा के रूप में अशन करती है और प्रौढ़ में अशन करने के लिए मुख छिद्र ही नहीं होता जिससे इसकी आंत में मात्र हवा भरी होती है। तितली और शलभों की इल्लियां

---

1. उदग्रत : Vertically
2. उत्प्रस्थान : Take off
3. संक्रिया : Operation
4. श्येन शलभ : Hawkmoth
5. शमल : Dung
6. प्रकाष्ठ : Timber

जबरदस्त अशनकारी होते हैं लेकिन प्रौढ़ या तो सड़ रहे फलों का रस चूसते हैं अथवा फूलों से मकरंद पीते हैं। जो कीट लार्वा और प्रौढ़ दोनों ही रूप में खाते हैं उनकी अशन-वृत्ति प्रायः एक जैसी होती है लेकिन अधिकांश मामलों में खाद्य पदार्थ आमूल रूप से बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए मच्छर के लार्वा पानी में मौजूद सूक्ष्म जैव पदार्थों को खाते रहते हैं। लेकिन प्रौढ़ मादा रक्त चूषक हैं और नर पौधों के रस का आनंद लेते हैं। हालांकि वर्ग[1] के रूप में कीट लगभग सभी चीजें खाते हैं लेकिन यह सच है कि जीवनयापन के लिए प्रत्येक कीट को बहुत परिश्रम करना पड़ता है। ऐसे कीटों की संख्या बहुत थोड़ी है, जो पर्याप्त पोषण का जुगाड़ बैठा लेते हैं। ढेरों कीट तो भूख से परलोक सिधार जाते हैं या फिर दूसरे कीट उन्हें खा जाते हैं। कीटों को सक्रिय रूप से भोजन तलाशना पड़ता है, परिश्रम से संचित करना पड़ता है, सावधानीपूर्वक तैयार करना पड़ता है और भविष्य में उपयोग करने के लिए इसका भंडारण करना पड़ता है। अनेक कीट भोजन की तलाश में भटकते हैं, कुछ भोजन को खाने से पहले उसे सुरक्षित जगह ले जाते हैं और कुछ तो इस प्रतीक्षा में पड़े रहते हैं कि भोजन स्वयं उनके पास आएगा। कुछ कीट अपना खाद्य स्वयं तैयार करते हैं। कुछ ऐसे भी कीट हैं जो आहार के संचयन या संग्रहण के लिए कुछ नहीं करते बल्कि चुपचाप दूसरों से चुरा लेते हैं। कुछ भी कहिए कीटों में भिखारी फिर भी नहीं होते।

कीटों का भोजन जितना विविधतापूर्ण होता है उनके खाने की विधि भी वैसी ही विविध है। यह विधि खाने की किस्म, कीट के लिंग, उसकी आयु और वर्ग पर भी निर्भर करती है। कुछ ठोस खाना खाते हैं तो कुछ केवल द्रव पदार्थों का सेवन करते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो अपना जीवन चक्र ठोस से आरंभ करते हैं लेकिन बाद में उसे त्याग कर द्रव पर उतर आते हैं।

शिकारी, मुफ्त आवासी और परजीवी कीट

जीवित शिकार को मारने की प्रवृत्ति कीटों में इतनी व्याप्त है कि ऐसा लगता है मानो वे एक दूसरे को मारने में व्यस्त हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण किंतु सत्य है कि कीटों के सबसे बड़े शत्रु स्वयं कीट ही हैं। हालांकि अनेक कीट कृमियों[2], स्लगों, घोंघों, मकड़ियों और छोटी छोटी छिपकलियों, पक्षियों और स्तनधारियों तक का शिकार करते हैं फिर भी शिकारी कीटों के शिकार दूसरे कीट भी होते हैं। कीट की लगभग हर जाति किसी दूसरी जाति का शिकार बनती है और उसके द्वारा खाई जाती है। प्रमुख शिकारी प्लेकोप्टेरा, ओडोनेटा, मैन्टोडिया, कुछ हायमेनोप्टेरा, कॉलियोप्टेरा जैसे कि कैराबिडी, कुछ हेटेरॉप्टेरा और डिप्टेरा गणों के परभक्षी कीट हैं।

---

1. वर्ग : Class

2. कृमि : Worm

विभिन्न जातियों की शिकार करने की तकनीक शिकार के आकार और स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर करती है। लगभग सभी परभक्षी कीट बिजली की चपलता से आक्रमण करते हैं। उनमें निरपवाद रूप से अत्यधिक शारीरिक शक्ति होती है और वे अपने शिकार के स्थान का पता लगाने, लुकछिपकर शिकार करने और शिकार को पराजित करने में प्रायः बहुत चालाकी दिखाते हैं। कुछ परभक्षी गंध द्वारा अपने शिकार के स्थान का निर्धारण करके उसका पीछा करते हैं और कुछ दूसरे परभक्षी विशेषतया, पंखवाले, अपनी दृष्टि से शिकार का पता लगाते हैं। उनकी संयुक्त आंखें असाधारणरूप से सुपरिवर्धित होती हैं और प्रायः सारे सिर को घेरे रहती हैं। वे अपने दृष्टि क्षेत्र में होने वाली मामूली से मामूली गति को भी सरलता से जान लेते हैं। शिकार गतिहीन या कहिए निश्चल बने रहने तक ही सुरक्षित रहता है और उसकी जरा-सी भी गति उसके लिए जानलेवा साबित होती है। कुछ शिकारी सक्रिय रूप से शिकार का पीछा करते हैं जबकि कुछ ऐसे हैं जो उस भाग्यहीन शिकार की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते हैं जो संयोग से उनकी गिरफ्त में आ जाता है।

शिकार का सक्रिय पीछा : कोई भी शिकारी कीट अपने शिकार का पीछा जमीन या हवा में कर सकता है। भू-भृंग (कैराबिडी), जुगनू और दीप्त कीट (लैम्पाइरिडी) और अनेक खनक-बर्र[1] अपने शिकार के पीछे जमीन पर दौड़ते हैं। शिकार शक्तिशाली जबड़ों में पकड़ा जाता है। उसके टुकड़े टुकड़े कर दिए जाते हैं और तब उसका भक्षण किया जाता है। संभवतया व्याध पतंग सबसे शक्तिशाली सपंख शिकारी हैं। तेजी से उड़ते समय वे मच्छर, डांस और मशकाभों को अपनी कंटीली टांगों की सहायता से पकड़ लेते हैं। ये टांगें सुरक्षित रूप से कैदी बनाए गए शिकार को पकड़े रहने के लिए एक प्रकार की ढीली जालिका जैसी टोकरी-सी होती हैं। दस्यु मक्खियां[2] घरेलू मक्खियों, मच्छरों और अन्य छोटी छोटी मक्खियों को उड़ते समय पकड़ लेती हैं और उन्हें सूखा ही चूस डालती हैं। अनेक वरट[3] और एकाकी बर्र भूमिगत आवास में सुरक्षापूर्वक छिपे रहने वाले शिकार का पता लगा लेते हैं। यह शिकार मकड़ी या झींगुर कुछ भी हो सकता है। वे शिकार तक पहुंचने के लिए खुदाई करते हैं या विभिन्न युक्तिपूर्ण गतियों से लुभाते हैं या धमकियां देकर उसे अपने सुरक्षित आवास से बाहर निकालते हैं। उसके बाद इसे खुले मैदान में घसीटकर डंक द्वारा सुन्न कर देते हैं और अपने नीड़ में ले जाते हैं।

असावधान शिकार की प्रतीक्षा में पड़े रहना : अनेक कीट, ऐसे स्थानों पर जहां शिकार आमतौर पर आते हैं, गतिहीन बने रहकर सीधी-सादी और अहानिकर लगने वाली मुद्रा अपना लेते हैं तथा अपनी प्रहार सीमा में आने वाले असावधान शिकार को चतुराई से

1. खनक-बर्र : Digger wasp
2. दस्यु मक्खियां : Robberflies
3. वरट : Hornet

पकड़ लेते हैं। शिकारी मेन्टिस का वक्ष लंबा पतला और सिर ऐसा होता है जिसे किसी भी इच्छित दिशा में इस प्रकार घुमाया जा सकता है कि गर्दन के स्थानच्युत होने या विकृत होने का डर नहीं होता तथा शरीर की मुद्रा भी नहीं बदलनी पड़ती। इसके अग्रपाद लंबे और शक्तिशाली होते हैं और उनमें दृढ़ तथा बहुत नुकीले शूक और दांत लगे होते हैं। मोड़ लिए जाने पर अग्रपादों से एक अत्यधिक सुदृढ़ शिकंजा बन जाता है जिससे बच निकलना असंभव होता है। अपने शिकार की प्रतीक्षा करते समय गतिहीन और एकदम से अस्पष्ट मेन्टिस अपने अग्रपादों को शरीर से सटा लेता है। दोनों टांगें आगे की ओर उठी रहती हैं और ऐसी विचित्र मुद्रा बन जाती है मानो मेन्टिस हाथ जोड़े प्रार्थना कर रहा हो और इसीलिए अंग्रेजी में इसका नाम 'प्रेयिंग मेन्टिस' पड़ा। लेकिन वास्तव में यह एक शिकारी मेन्टिस है। कोई भी कोट, जिसमें छिपकली या छोटी चिड़िया या मेन्टिस भी शामिल है, यदि संयोगवश इसके नजदीक आ जाता है तो यह अग्रपादों द्वारा बिजली की चपलता से उसे पकड़ लेता है और वह शूकों तथा दांतों के बीच फंसा रहता है। आजादी के लिए हाथ-पैर मारते हुए शिकार को टुकड़े टुकड़े करके निगलते हुए पूरा का पूरा खा लिया जाता है।

सामान्य पिपीलिका सिंह[1] *मिर्मीलियॉन* का लार्वा अपने शिकार के इंतजार में और भी चतुराई दिखाता है। अपने नाम के अनुरूप यह चींटियों के लिए एक आतंक है क्योंकि यह पूरे साल और आजीवन केवल उन्हें ही खाता है। चींटियां व्यस्त प्राणी हैं जिनकी दिनचर्या देखकर ऐसा लगता है मानो वे बहुत ही ज्यादा जल्दी में हैं जो एक दूसरे को ढकेलती हुई और सामने आने वाली बाधाओं को ठोकर मारती गड्ढों में गिरती और आनन-फानन उससे बाहर निकल कर इस तरह आगे बढ़ जाती हैं मानो कुछ हुआ ही न हो। धूर्त पिपीलिका सिंह चींटियों के स्वभाव का नाजायज फायदा उठाता है। यह उस जगह जहां चींटियां आती हैं ढीली मिट्टी या रेत में शंकु के आकार का गड्ढा खोद लेता है और इस गड्ढे की तली में इस प्रकार छिप जाता है कि इसके तीखे और संडसी जैसे जबड़े की मात्र नोक ही बाहर रहती है जो कार्य के लिए एकदम तैयार रहती है। अत्यधिक जल्दीबाजी में रहने वाली चींटी अचानक फिसल जाती है और रेत पर घिसटती हुई गड्ढे में आ गिरती है। भयाक्रांत होकर यह उस गर्त से बाहर निकलने के लिए बुरी तरह से हाथ पैर मारती है लेकिन सब व्यर्थ जाता है क्योंकि रेत के ढीले और लुढ़कते हुए कण इसे और भी नीचे की ओर फिसला देते हैं। चींटी की इसी दुर्गति की आशा में शांति से प्रतीक्षा करता पिपीलिका सिंह निरीह चींटी को रेत में खींच लेता है और इसके रक्त तथा शरीर द्रव को पूरी तरह से चूस लेता है।

1. पिपीलिका सिंह : Antlion

मुफ्त खाने और मुफ्त रहने वाले : संभवतया जीवनयापन का सबसे आसान तरीका यह है कि आप किसी दूसरे के घर इस तरह जाइए मानो वह आपका विशेष मित्र है। यह कतई जरूरी नहीं है कि आपके प्रति आपके तथाकथित 'मित्र' की कैसी भावना है। आप इस बात की चिंता न करें। बहुत से कीट बिल्कुल ऐसा ही करते हैं और उन्होंने तो इस कला को और निखार दिया है। कुछ कीट तो इस क्रिया को बहुत ही साधारण रूप में लेते हुए मित्र के यहां जा धमकते हैं और इस बात का रत्तीभर मलाल नहीं करते कि उनके क्रुद्ध मित्र ने उन्हें बेइज्जत करके बाहर निकाल दिया है। कुछ कीट ऐसे भी हैं जो दूसरे कीटों के नीड़ में अनचाहे मेहमान बनकर न केवल चंद घंटों के लिए बल्कि जीवन भर और पीढ़ी दर पीढ़ी भी रहते हैं।

अधिकांश कीट मुफ्त रहने और मुफ्त खाने के लिए घर का चुनाव बहुत सावधानी से करते हैं ताकि मकान मालिक उन्हें **अस्वीकार्य व्यक्ति** समझ कर बाहर न फेंक दे। कुछ तो अपने आपको मेजबान के अनुरूप बनाने का कष्ट भी उठाते हैं। अब प्रश्न उठता है कि ऐसी कौन-सी जगह हो सकती है जहां पूरी तरह से अजनबी होते हुए भी आपका आदर सत्कार हो? सीधा सा उत्तर है : ऐसा उस घर में हो सकता है जहां शादी हो रही हो, जल्दीबाजी और शोरगुल हो और जहां लोग बिना कोई उपयोगी काम के ही व्यस्त हों। जहां आपको वधू-पक्ष के लोग वर-पक्ष का और वर-पक्ष के लोग वधू-पक्ष का व्यक्ति समझें और आप मजे से दोनों से घुलमिल जाएं। भीड़भाड़ और भ्रम की स्थिति में आपको सुअवसर मिल जाता है। कीट ने भारतीय विवाह की पद्धति आरंभ होने से बहुत पहले ही इस तरकीब को अपनी बुद्धिमत्ता से अपना लिया था।

दीमकों, चींटियों और बर्रों के नीड़ में यह परिस्थितियां होती हैं भले ही उनके कारण भिन्न हों। उनके नीड़ में आमतौर पर व्यस्त व्यक्तियों की जरूरत से ज्यादा भीड़ रहती है। प्रत्येक व्यक्ति भांति भांति के काम में जुटा रहता है और सदा ही भीतर-बाहर दौड़ता रहता है। किसी व्यक्ति के पास इतना समय नहीं होता कि बिन बुलाए शिष्ट मेहमान का आना देख सके। उनके नीड़ झींगुरों, कुछ भृंगों (पॉसिडी, स्टैफीलिनिडी), लाइसीनिड तितलियों की इल्लियां और फॉरिड मक्खियां जैसे बिना निमंत्रण के आने वाले कीट अतिथियों के समूह के लिए मनपसंद आश्रयस्थल हैं। इसीलिए ऐसे कीट दीमकरागी[1] या वम्ररागी[2] कहलाते हैं। वे अपने मेजबानों द्वारा संग्रहीत और भंडारित पौष्टिक और विभिन्न प्रकार के खाद्यपदार्थों या बेकार समझकर छोड़ दिए गए खाद्यान्न का सेवन करते हैं। कुछ वम्ररागी कीट जिन चींटियों के बीच रहते हैं उनकी मुद्राएं और चाल अपना लेते हैं। अनेक तो चींटियों से इस सीमा तक मिलते जुलते होते हैं कि एक प्रशिक्षित कीटविज्ञानी भी उन्हें चींटी समझ बैठने की भूल कर जाता है।

---

1. दीमकरागीय : Termitophilous 2. वम्ररागी : Myrmecophilous

परजीवी : परजीवी दूसरे जीव के शरीर के ऊपर या उसके भीतर रहते हैं और आवास तथा पोषण के लिए इस जीव पर निर्भर करते हुए उन तमाम सुविधाओं के बदले में कुछ नहीं देते बल्कि धीरे धीरे इसे मार देते हैं। यह दूसरा जीव परपोषी[1] कहलाता है। अपने परपोषी को छोड़कर परजीवी का अलग अस्तित्व नहीं होता। कुछ कीट कभी कभार ही परजीवी बनते हैं अन्यथा आत्मनिर्भर होते हैं। उदाहरण के लिए खटमल, मनुष्य का यदा-कदा बाह्य परजीवी है। अधिकांश समय यह दरारों और झीरियों में छुपा रहता है और केवल रात होने पर ही जब भूख लगती है तब खून चूसने के लिए बाहर निकलता है, दूसरी जातियां जैसे कि **पेडीकुलस ह्यूमेनस** जूं मानव के सिर और शरीर पर आजीवन बाह्य परजीवी के रूप में रहती हैं और मनुष्य के बिना जिंदा नहीं रह सकतीं। हालांकि परजीवी कीट लगभग सभी प्राणी समूहों पर आक्रमण करते हैं पर यह एक विडंबना ही है कि दूसरे कीट ही उनके सबसे सामान्य परपोषी हैं। जो कीट दूसरे कीटों पर परजीवी होते हैं वे कीटाहारी परजीवी कहलाते हैं।

कीटों की लगभग हर जाति को परजीवी कीटों की एक या अधिक जातियों के हमले का शिकार होना पड़ता है। किसी कीट का कीट-परजीवी स्वयं दूसरे परजीवी कीट के हमले का शिकार बन जाता है। यह परात्परजीवी[2] कहलाता है यानी परजीवी पर परजीवी।

कीट सर्वहारा वर्ग[3], राजपद[4] और जातिप्रधान समाजवादी स्वचालन[5] : कीटों में सामाजिक जीवन

संभवतया समानता एक न प्राप्त किया जा सकने वाला आदर्श है और अंतिम विश्लेषण में शायद अनचाहा भी। प्राणियों के एक समूह में जहां वामनों (बौनों) की तुलना में भीमकायों का आकार एक हजार गुना से भी ज्यादा हो; जहां 'संपन्नों' से 'वंचित' आवास और खाना मांगें; और जहां कुछ ही शिकार करें और अनेक शिकार बनें तथा जहां कोई भी जाति परजीवी के हमले से मुक्त न हो वहां कुछ कीट दूसरों की अपेक्षा निश्चित रूप से 'अधिक समान' होते हैं। यह बात आसानी से समझी जा सकती है लेकिन कीटों में सबसे अधिक अप्रत्याशित और कपटपूर्ण लक्षण यह है कि नर की अपेक्षा मादा 'अधिक समान' होती है। नर को प्रायः अनेक असुविधाएं होती हैं और उसके साथ लगभग सदा ही दुर्व्यवहार किया जाता है, उसे लांछित किया जाता है, यहां तक कि उसे बेकार समझकर मिटा दिया जाता है। कीट समाज मूलरूप से मादाओं का समाज है। ऐसा समाज जो मादाओं द्वारा मादाओं के लिए चलाया जाता है जहां नर का अस्तित्व शून्य है। सारा काम मादा ही करती हैं और नर उपेक्षित रहकर मानरहित कठपुतली बना रहता है। क्षमता, कार्य निष्पादन, वरीयता, हैसियत, पुरस्कार

---

1. परपोषी : Host
2. परात्परजीवी : Hyperparasite
3. कीट सर्वहारा वर्ग : Insect proletariat
4. राजपद : Royalty
5. जातिप्रधान समाजवादी स्वचालन : Caste-dominated Socialist Automations

और अवसर की असमानता कीट समाजों का असाधारण लक्षण है। अधिकांश कीट जीवनयापन के लिए अनथक परिश्रम करते हैं जबकि कुछ कीट अपेक्षाकृत विलासिता और आलस्य में रहते हैं। परिश्रमी कीट भोजन के लिए घूमते हैं, फसल उगाते हैं, अनाज निकालते हैं, अपने घरों को झाड़ू लगाते और साफ करते हैं या अगर वे सैनिक नहीं होते तो वे चिनाई करने वाले मिस्त्री, मकान बनाने वाले, बढ़ई, बुनकर होते हैं। उनमें कठोर जाति प्रथा होती है जो कि किए जाने वाले कार्य के आधार पर होती है और जिससे बच पाना असंभव है। शोषित परिश्रमी श्रमिक सारे समुदाय की सामूहिक भलाई के लिए योगदान देते हैं क्योंकि परिश्रम का फल परिश्रम करने वाले को नहीं बल्कि समुदाय को मिलता है। हालांकि इसका आधार कठोर जाति प्रथा और सैद्धांतिक असमानता है। यह एक प्रकार का समाजवाद है जिसमें राजपद के लिए भी स्थान है। समाजवादी कीट समाज में राजपद के विशेषाधिकारों को तख्ता पलटने के कारण समाप्त होने का निश्चित रूप से कोई खतरा नहीं है। लेकिन राजपद को राजपद के लिए बरकरार नहीं रखा जा सकता बल्कि इसे इसलिए सहन किया जाता है क्योंकि यह समुदाय के लिए अपरिहार्य है और इसका कोई विकल्प नहीं है।

अधिकांश कीट एकल[1] जीवन बिताते हैं लेकिन कुछ निश्चितरूप में यूथी होते हैं और झुंड में रहते हैं। वृंद इल्ली या टिड्डी वृंद[2] इसके परिचित उदाहरण हैं। ये कीट किसी भी प्रकार से सामाजिक कीट नहीं हैं। मात्र साथ रहने वाले, एक ही खाने को बांटकर खाने वाले और एक ही आवास में रहने वाले व्यष्टियों की भीड़ सामाजिक जीवन नहीं है। इसमें इन सबसे कहीं अधिक बातें सम्मिलित हैं। सामाजिक कीटों में व्यष्टि पारस्परिक रूप से पूरी तरह परस्पर-निर्भर होते हैं, सहयोगी होते हैं और बस्ती में सुस्पष्ट परिश्रम का विभाजन होता है। विविध विशिष्ट कार्यों को करने के लिए व्यष्टियों में संरचनात्मकता विभेदन[3] होता है। यही श्रम विभाजन और पारस्परिक निर्भरता सामाजिक कीट को परिभाषित करती है और इसे साधारण भीड़ से अलग पहचान देती है। वास्तविक सामाजिक कीट दीमक, बर्र, मधुमक्खियां और चींटियां हैं।

कीट समाज अत्यधिक जटिल और अत्यधिक संगठित होता है। कभी कभी सामाजिक दक्षता का स्तर मानव समाज से भी आगे बढ़ जाता है और स्वार्थ, लालच और बेईमानी जैसे मानव लक्षणों से मुक्त होता है जो हमारे समाजवाद का जन्मजात अंग है। असमानता का स्तर भी मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक ऊंचा होता है। कीटों में सभी आकार वाले व्यष्टि होते हैं—विशालकाय, वामन, सपंख, अपंख रूप वाले, सुपरिवर्धित नेत्रों और एकदम से अंधे व्यष्टि, बलिष्ठ जबड़े वाले और दुर्बल तथा पूर्णतया ह्रासित, अबंध्य[4] मादाएं और

1. एकल : Solitary
2. वृंद : Swarm
3. संरचनात्मकता विभेदन : Structurally differentiation
4. अबंध्य : Fertile

आजीवन बंध्य[1] मादाएं। जटिलता जाति के विभेदन के साथ ही समाप्त नहीं हो जाती बल्कि अनेक अजीबोगरीब बाहरी व्यष्टियों तक जाती है जिसमें आमंत्रित और अनामंत्रित, चाहे और अनचाहे अतिथि, उपेक्षित घुमक्कड़, सह्य या पीछे पड़ जाने वाले कीट, चापलूस, पालतू कीट, दास, लुटेरे, विभिन्न प्रकार के परजीवी और आलसी कीट शामिल हैं। कीट समितियां गांव और गगनचुंबी मीनारों वाले भीड़ से भरे-पूरे शहर बनाती हैं, खेती करती हैं, फसलें उगाती हैं, फसल एकत्रित करती हैं, सुभंडारित अनाजों के कोठार संभालती हैं, शहद की टंकियां भरे रखती हैं। वे सड़कें और बांध बनाती हैं, नालों पर पुल का निर्माण करती हैं, शहरों पर अनुक्रमण करती हैं और विध्वंसी युद्ध में उलझती हैं जिसमें वे रसायनों और तंत्रिका-गैस[2] जैसे हथियारों को काम में लाती हैं, शत्रुओं को नष्ट कर देती हैं, उनके शहरों को लूटती हैं, युद्धबंदियों को पकड़कर उन्हें दास कर्म के लिए विवश करती हैं और ऐसे अनेकानेक कार्य करती हैं जो हमने अभी तक नहीं सीखे हैं। आप सोचने लगे होंगे कि कीट और मानव समाज बहुत ज्यादा एक जैसे हैं फिर भी मानव समाज और कीट समाज में एक मूलभूत अंतर है। सामाजिक कीट की बस्ती भले ही कितनी ही बड़ी और जटिल क्यों न हो अंतिम विश्लेषण में यह एक **अकेला और वस्तुतया आवश्यकता से बड़ा परिवार है**—सभी भिन्न भिन्न सदस्य एक अकेली मां की संतान हैं। मानव समाज एक ही परिवार नहीं है और इसलिए इसके व्यष्टियों को बांधे रखने के लिए ऐसा कुछ नहीं है जैसा कि कीट समाज में है। कीट समाज में सारे के सारे व्यष्टि बहनें हैं, बड़ी बहनें हैं और **अनंत तक** बड़ी की बड़ी बहनें हैं और इस प्रकार विकट रूप से एक मां से जुड़ी हुई हैं। सामाजिक कीट की जटिल और विचित्र बस्ती का सृजन करने वाली, उसे आकार देने वाली और उसे बनाए रखने वाली है मातृ-वृत्ति[3]। यह सहज वृत्ति बच्चे अपनी मां से स्वेच्छापूर्वक ग्रहण करते हैं ताकि वे आजीवन मां की भूमिका निभा सकें। दूसरे कीट मां भले ही न बन सकें (बंध्य होने के कारण)। फिर भी वे व्यवहार में मां के रूप में कार्य करते हैं। इसके बारे में हम बाद में पढ़ेंगे।

दीमक बस्ती में कुछ लाख व्यष्टि होते हैं, जो विभिन्न प्रभेदों[4] में विभाजित रहते हैं जैसे कि बंध्य मादाएं या श्रमिक, सैनिक, नर या राजा और एक अकेली लैंगिकता[5] अबंध्य मादा जिसे रानी दीमक कहते हैं। विभिन्न प्रभेद वाले व्यष्टियों को उनके आकार और उनके सिर की आकृति, ज्ञानेन्द्रियों[6] और उनकी क्षमताओं के सुस्पष्ट अंतरों से आसानी से पहचाना जा सकता है। रानी दीमक और राजा जनन-जातियों[7] से संबंधित हैं। रानी दीमक भारी भरकम, लंबी, मोटी कृमि जैसी प्राणी है जो प्रायः 10 से.मी. तक लंबी होती

1. बंध्य : Sterile
2. तंत्रिका गैस : Nerve gas
3. मातृ-वृत्ति : Maternal instinct
4. प्रभेद : Caste
5. लैंगिकता : Sexually
6. ज्ञानेन्द्रियां : Sense organs
7. जनन जातियां : Reproductive Castes

है। वह पंद्रह या पचास साल तक भी जीवित रहती है। वह कभी भी बस्ती से बाहर नहीं आती और उसे दीमक के टीले को नीचे तक खोदकर ही देखा जा सकता है।

जनन रूप सपंखी होते हैं तभी नर और मादा आमतौर पर मानसून की पहली वर्षा के बाद संध्या के समय भारी संख्या में झुंडों में उड़ने लगते हैं। वृंदन और उड़ान की समाप्ति पर वे जमीन पर गिर पड़ते हैं और अपने पंख तोड़कर समागम करते हैं। नर जल्दी ही मर जाते हैं और चींटियां तथा छिपकलियां आदि उन्हें खा जाती हैं। कुछ निषेचित[1] मादाएं अनेक शत्रुओं से बचने के बाद किसी तरह से रेंगकर भूमि के भीतर पहुंचकर नई बस्तियां बना लेती हैं। प्रत्येक मादा जल्दी ही अतिशय रूप से बढ़कर रानी दीमक बन जाती है और लाखों की संख्या में अंडे देती है। इन अंडों से बंध्य मादाएं या श्रमिक दीमक निकलती हैं और बस्ती में विभिन्न कार्यों में जुट जाती हैं। स्वयं श्रमिकों को प्रायः बदलती प्रावस्था में भी प्रमुख और गौण श्रमिकों में विभेदित किया जा सकता है। बस्ती में श्रमिकों की संख्या सभी दूसरे रूपों से कहीं ज्यादा होती है और यही वह रूप है जो मिट्टी का दीमकगृह[2] बनाता है, खाना तलाशता है और उसका संग्रह करता है, तथा रानी और दूसरे तरुणों आदि को भोजन कराता है। बस्ती की रक्षा करने का विशेष कार्य सैनिक संभालते हैं। उनके सिर बड़े और कठोर होते हैं, भयंकर जबड़े होते हैं या सिर लंबा होकर चोंच-सा बन जाता है जो शत्रु को भेद सकता है। श्रमिक नर या मादा भी हो सकते हैं।

दीमक गृह में दीमक की विभिन्न जातियों के व्यष्टियों के अतिरिक्त दीमक-रागी कीट, जैसे कि कुंडलपुच्छ[3], रजत मीनाभ कीट (थाइसेन्यूरा), झींगुर, विभिन्न भृंग, मक्खियां आदि अतिथियों और सफाई वाले के रूप में रहते हैं। दीमकों और दीमकरागी कीटों के अनेक परजीवी भी इसमें रहते हैं।

मधुमक्खियां सामाजिक मक्खियां होती हैं जिसकी चार जातियां होती हैं—**एपिस मेलिफेरा, एपिस इंडिका, एपिस डॉर्सेटा** और **एपिस फ्लोरिया**। मधुमक्खियां श्रमिक मधुमक्खियों द्वारा स्रावित मधुमोम के छत्ते बनाती हैं। वे फूलों से पराग और मकरंद एकत्रित करती हैं। उनकी जीभ मकरंदकोष तक पहुंचने के लिए दीर्घित और रूपांतरित होती है। उनके पश्चपाद रोमिल और पराग कणों का संग्रह करने के लिए ब्रश जैसे होते हैं। एकत्रित किए गए पराग को वापस नीड़ तक ढोने के लिए इन टांगों में टोकरी जैसी रचना बनी होती है। प्रकृति में मधुमक्खियां अपने छत्ते पेड़ों की शाखाओं पर, पेड़ के तनों में बनी खोखली जगहों में या मुड़ी हुई चट्टान के भीतरी तरफ बनाती हैं। मधुमक्खी की बस्ती में एक लैंगिकता अबंध्य मादा, रानी मक्खी और कुछ लैंगिकता अबंध्य नर या पुंमक्षिका[4] और अनेक बंध्य मादाएं या सामान्य श्रमिक मक्खियां होती हैं, निषेचित रानी

1. निषेचित : Fertilized
2. दीमकगृह : Termitarium
3. कुंडलपुच्छ : Spring tail
4. पुंमक्षिका : Drones

मधुमक्खी बस्ती तलाश करके कुछ अंडे देती है और उनसे निकले शिशुओं का अपनी लार से पोषण करती है। ऐसा तब तक करती है जब तक कि श्रमिकों की पहली खेप तैयार नहीं हो जाती। तब ये श्रमिक रानी को शिशुओं की देखभाल से पूरी तरह छुटकारा दे देते हैं ताकि वह मुक्त होकर अपनी सारी ऊर्जा और सारा समय अंडे देने में लगा सके। श्रमिक छत्ते को बड़ा करते हैं, बाहरी आक्रमण से बस्ती की रक्षा करते हैं, पराग और मकरंद की तलाश में यहां-वहां जाते हैं। पुंमक्षिका अपना समय खोते हुए और नई जन्मी रानी की कामद उड़ान[1] की प्रतीक्षा करते हुए ही गंवाती है। जब मधुमक्खियों की कोई बस्ती असुविधाजनक रूप से बड़ी और ज्यादा भीड़भाड़ वाली हो जाती है तो श्रमिक साधारण तरुण लार्वों में से एक को विशेष खाद्य सांद्रण[2] खिलाना शुरू करते हैं। यह लार्वा अब नई रानी में परिवर्धित हो जाता है। एक समय दो रानियां नहीं हो सकतीं इसलिए नई रानी छत्ते को छोड़ जाती है और श्रमिकों तथा पुंमक्षिका का एक दल समागम के लिए उसके पीछे जाता है। मुघमक्खियों में एक दिलचस्प बात यह है कि निषेचित अंडे मादाओं में परिवर्धित होते हैं और अनिषेचित अंडे नर बन जाते हैं।

कीटों में संभवतया चीटियां सबसे अधिक जानी पहचानी और सबसे अधिक व्यापक रूप से वितरित हैं। सभी चींटियां सामाजिक होती हैं और कोई जाति एकल नहीं होती। कोई भी चींटी अपनी बस्ती से दूर रहकर और अकेली रहकर जीवित नहीं रह सकती। चींटी का सामाजिक जीवन मधुमक्खियों और दीमकों की अपेक्षा कहीं अधिक जटिल है और प्रकृतिविदों के सामने अनेक अनसुलझी समस्याएं रखता है। चींटी बस्ती का आकार और बहुरूपता अत्यधिक परिवर्ती[3] यानी बदलती रहती है। वस्तुतया चींटियों में बहुरूपता अधिकतम विकसित और जटिल रूप में देखने को मिलती है। चींटी की एक ही जाति की बस्ती में इक्कीस तक प्रभेद पाए जाते हैं। चींटी-बस्ती में आमतौर पर निम्नलिखित प्रभेद पाए जाते हैं : (i) अंडदकर्मी[4] श्रमिक जिसमें अच्छा पोषण मिलने पर रानी बनने की क्षमता होती है ; (ii) अनेक श्रमिक जो दरअसल बंध्य मादाएं होती हैं जो अपंख और विविध प्रकार की होती हैं ; (iii) सैनिक, जो विशेष रूप से रूपांतरित श्रमिक होते हैं। इनके सिर बहुत बड़े और जबड़े भयंकर तथा तीखे दांत जड़े होते हैं जो शत्रु को कुचल देने के काम आते हैं ; (iv) अबंध्य मादाएं जो बड़ी और सपंख होती हैं ; और (v) बंध्य नर।

कामद उड़ान के दौरान एक बार नर द्वारा निषेचित हो जाने के बाद रानी चींटी अपने पंख गिरा देती है, जो उसके लिए एकदम बेकार हो चुके होते हैं। वह भूमिगत हो जाती

---

1. कामद उड़ान : Nuptial flight
2. सांद्रण : Concentrate
3. परिवर्ती : Variable
4. अंडदकर्मी : Gynaecoid

है और अपनी संतति के प्रथम तरुणशाव[1] को अपनी ही लार के विशेष स्राव से पोषित करती है। इस समय के दौरान वह कुछ नहीं खाती बल्कि अपने वक्ष में अब बेकार हो चुकी उड्डयन पेशियों का भंजन करके उनमें उपस्थित पदार्थ को अपने लिए पोषक पदार्थ में बदल लेती है। तरुणशाव से जैसे ही प्रथम श्रमिक चींटियां निकलती हैं वे खाने की खोज में निकल पड़ती हैं और बच्चों की देखभाल करने के उसके सारे दायित्व स्वयं संभाल लेती हैं। उसके बाद रानी सारा ध्यान अंडे देने में लगा देती है और लगभग आगामी पंद्रह वर्षों तक अंडे देती रहती है। एक चींटी बस्ती में लगभग पांच लाख चींटियां होती हैं।

चींटियां अपने नीड़ भूमि के नीचे, पेड़ों पर, पेड़ों के खोखले तनों में, कांटों में, पुरानी सुपारियों और फलों तथा पत्तियों में बनाती हैं। सच बात तो यह है कि चींटी किसी भी खाली उपयुक्त जगह पर डेरा जमा लेती है जैसे कि दूसरों के द्वारा छोड़ी गई पिटिकाएं

चित्र : 68—व्यस्त चींटी। बायीं ओर एक श्रमिक चींटी ने मीठे मधुबिंदु (honey dew) की चमकदार बूंद के लिए अभी अभी चींटी-गाय एफिड को 'दोहा' है। यह बूंद उसने अपने जबड़ों में थामी हुई है जिसे वह निकालने वाली है। दायीं ओर एक श्रमिक चींटी लार्वा को ले जा रही है।

---

1. तरुणशाव : Brood

या नीड़। सामान्य भारतीय चींटी *ओइकोफाइला* आम और अन्य वृक्षों के पत्तों को एक दृढ़ जाल में बांधकर नीड़ और शिशुपालन गृह का निर्माण करती है। इस काम के लिए वह अपने ही लार्वों से आवश्यक रेशमी धागे निकलवाती है। श्रमिक इन लार्वों को बड़ी सावधानी से अपने जबड़ों से पकड़कर चतुराई से आवश्यकतानुसार आगे-पीछे और ऊपर-नीचे ले जाते हैं। इसके साथ साथ वे लार्वों से निकलने वाले रेशमी धागों को मुड़ी हुई पत्तियों से इस प्रकार जोड़ देते हैं कि ये पत्तियां एक आरामदेह कोष्ठ को घेरे रहने के लिए मजबूती से एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं। वस्तुतया लार्वा एक तरह से बैडमिंटन की चिड़िया की तरह काम में लाया जाता है। चींटियों के नीड़ से जो कोई भी छेड़छाड़ करता है वे उस पर भयंकर आक्रमण करती हैं। वे घुसपैठिए को न केवल निर्दयता से काट खाती हैं बल्कि उस पर फॉर्मिक अम्ल की बारीक धार छोड़ती हैं जिससे जलन और बढ़ जाती है। चींटियां पत्तियों से निर्मित इस नीड़ में चूर्णई मत्कुणों[1] को अपने साथ रखती हैं जिन्हें वे समय समय पर पत्तियां खिलाती हैं और उनसे नियमित रूप से मधुबिंदु[2] प्राप्त करती हैं (मधुबिंदु मत्कुणों द्वारा चूसा गया सांद्रित पादप रस है)।

चींटियों का पूरा वर्ग ही सचमुच में सर्वाहारी है जो कुछ भी खाने योग्य है उसे खाती हैं फिर भी कुछ चींटियां ऐसी हैं जो शाकाहारी, मांसाहारी, कवकभक्षी, पत्ती काटने वाली, बीज खाने वाली और मधुभक्षी होती हैं। सामान्य भारतीय कृषि चींटी *हॉल्कोमिर्मिक्स* अनेक प्रकार की घासों और शाक की खेती करती है और जब बीज पक जाते हैं तो उनकी कटाई करती है और उन्हें भूमि के नीचे स्थित अपने धान्यागार में ले जाती है। जब अगली बारिश आती है तो श्रमिक चींटियां बीज बाहर ले आती हैं और उन्हें अपने नीड़ के चारों ओर बो देती हैं। कटाई के बाद श्रमिक चींटियां अनचाहे भूसे और डंडियों का नीड़ के प्रवेश द्वार के चारों ओर एक गोलाई में ढेर लगा देती हैं। पत्ती काटने वाली चींटियां जो एटिनी संवर्ग[2] के अंतर्गत आती हैं अपने नीड़ों के भीतर विशेषरूप से तैयार किए गए संवर्धन संस्तर[3] पर मनपसंद कवक की खेती करती हैं। संवर्धन संस्तर पत्तियों के कटे हुए टुकड़ों से बनाए जाते हैं। श्रमिकों का एक दल सुबह अपने नीड़ों से निकलता है, उपयुक्त पेड़ या झाड़ी पर चढ़ता है, पत्तियों को सुविधाजनक टुकड़ों में काटता है और उन्हें नीचे जमीन पर गिरा देता है जहां से श्रमिकों की दूसरी टोली टुकड़ों को नीड़ों में ले जाती है। टुकड़े सिर के ऊपर छतरी की तरह उठाए होते हैं ताकि श्रमिक आराम से भागकर बिना देर किए नीड़ में पहुंच सकें। नीड़ के प्रवेश द्वार पर श्रमिकों की तीसरी टोली दूसरी वाली से भार लेकर नीड़ के भीतर ले जाती है और वहां पर विशेषतौर पर तैयार किए गए छोटे छोटे कोष्ठों में उन टुकड़ों को एक के ऊपर एक रखकर जमा देती है। श्रमिकों का एक दल अब

1. चूर्णई मत्कुण : Mealy bug
2. मधु बिंदु : Honey dew
3. संवर्ग : Tribe
4. संवर्धन संस्तर : Culture bed

खाद्य-कवक के बीजाणु[1] लाता है और कटी हुई पत्तियों के संवर्धन संस्तर को कवक के बीजाणुओं से संरोपण[2] करता है। खरपतवार जैसा लगने वाले अन्य बाहरी कवक को फौरन हटा दिया जाता है और चींटियां उसे नष्ट कर देती हैं। उगाई गई फफूंदी जल्दी ही खूब उग जाती है और चींटियां फफूंदी फल-काय[3] को खाती हैं। मधुपात्र[4] चींटी, *मेलोपोरस* एक ऐसा उदाहरण है जो चरम सीमा तक जाती है। इस चींटी के श्रमिकों का पेट बहुत ही फूला हुआ होता है जिसमें फूलों से एकत्रित किया हुआ शहद भरा होता है। यह चींटी एकदम चल फिर नहीं सकती लेकिन पूरी बस्ती के लिए शहद की जीती जागती टंकी होती है। इससे भी खराब मामला दास बनाने वाली चींटी का है। यह चींटी दूसरी जातियों की चींटियों पर नियमित रूप से आक्रमण करती है, भीषण युद्ध में रक्षा करने वाली चींटियों को पराजित कर देती है। युद्ध में दोनों ओर की सैकड़ों चींटियां काल कलवित हो जाती हैं। युद्ध समाप्त होने पर हमला करने वाली चींटियां पराजित चींटियों के तरुणों को विजयोल्लास में अपने नीड़ों में ले जाती हैं। इन पकड़े गए तरुणों से बनने वाली श्रमिक चींटियां अपनी स्वामिनियों की स्वामिभक्त दासियां बनकर खाना तलाशती और बस्ती के दूसरे सारे काम करती हैं। स्वामिनियों के आसपास खाने का अंबार लगा होता है। लेकिन जब तक कोई दासी-श्रमिक आकर उनके मुंह में खाना न ठूंसे वे स्वयं अपने आप खाना तक नहीं खा सकतीं। कैसी विडंबना है कि स्वामिनी स्वयं अपने स्वामित्व की दास बन जाती है।

चींटियां नियमित रूप से सड़कें बनाती हैं, पानी के नालों को पार करने के लिए उन पर पुल-निर्माण करती हैं, रेशमी धागे बुनकर उन्हें अपने नीड़ों में अस्तर लगाने के काम में लाती हैं, युद्ध करतीं और दासों को पकड़ती हैं, फसलें उगाती हैं, खाद्यान्न कीट कटाई करती हैं, दूसरी चींटियों की बस्तियां लूटती हैं, जिन विभिन्न कीटों के मीठे स्रावों का आनंद उठाती हैं उन्हें अपने पास रखकर उनकी देखभाल करती हैं, अपनी बस्ती में आने वाले वांछित और अवांछित तथा पीड़ित, अनिधकारपूर्वक आ घुसने वालों को सहन करती हैं। चींटियां रासायनिक और गैस युद्धकला में पूर्णतया निपुण हैं। बस्तियों में पाए जाने वाले विभिन्न कीट वम्रागी या चींटीरागी कहलाते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं : (i) सहजीवी[5] जैसे कि मेम्ब्रेसिड, फलगोरिड, कॉक्सिड, साइलिड और एफिड बग, लाइसीनिड तितलियों की इल्लियां। ये सब आश्रय और रक्षा के लिए चींटियों पर निर्भर हैं और बदले में उन्हें शर्करायुक्त (मीठा) स्राव देते हैं। (ii) भोजन-साथी या अनचाहे अतिथि जैसे कि स्टैफीलिनिड भृंग चींटियों से उनका भोजन छीन लेते हैं। ये चींटी के नीड़ में छिपे रहते हैं और चींटियां इन्हें क्षुद्र चोर मानकर सामान्यतया इनकी उपेक्षा कर देती हैं या अपरिहार्य

---

1. बीजाणु : Spores
2. संरोपण : Inoculate
3. फल-काय : Fruit bodies
4. मधुपात्र : Honeypot
5. सहजीवी : Symbiotes

बुराई समझकर इन्हें सहन भी कर लेती हैं। ये चींटियों का सामना करने से बचते हैं और उनके लिए प्रत्यक्ष रूप से हानिकारक नहीं हैं लेकिन कभी कभी अपने आपको चींटी-श्रमिकों के अनुकूल बना लेते हैं और उनके बीच ऐसे घूमते-फिरते हैं मानो वे भी चींटियां ही हों। उनमें से अनेक तो एकदम चींटियों जैसे लगते हैं जैसे कि भृंग, मकड़ियां और रजत मीनाभ। कुछ झींगुर सेवक के रूप में काम करते हैं और चींटियों के शरीर को साफ करते हैं। (iii) संरागी[1] वस्तुतया ऐसे अतिथि होते हैं जिनका स्वागत और सत्कार किया जाता है। चींटियां इनका लालन-पालन करती हैं और इनकी चाकरी करती हैं। बदले में उन्हें खाने के रूप में मीठा स्राव मिलता है। चींटियों में कुछ सामाजिक परजीवी भी होती हैं। कुछ जैसे कि टेट्रामोरियम चींटी दूसरी चींटियों के नीड़ों में अंडे देती है और उनके श्रमिकों को अंडों और तरुण लार्वों की देखभाल करने के लिए बाध्य करती है। चींटियों के परजीवी भी होते हैं जैसे कि सूत्रकृमि[2], चिंचड़ी[3] तथा अन्य कीट जो चींटी के अंडों, लार्वों या प्रौढ़ चींटियों के शरीरों पर परिवर्धित होते हैं।

संगीतकार कीट

कीट विभिन्न प्रकार की आवाजें निकालते हैं। जिस भिनभिनाने और गुंजन से हम इतना परिचित हैं वे वास्तव में उड़ते समय पंख-विस्पंदों की निष्क्रिय घटना है। विभिन्न कीट चींचीं, खड़खड़, किकियाने, सीटी और कर्कश चीख जैसी आवाजें पैदा करते हैं। ऐसा या तो जीवन के आनंद की अभिव्यक्ति के रूप में या अपने मित्रों से संपर्क करने के साधन के रूप में या शत्रुओं को चेतावनी देने के लिए करते हैं। जहां कुछ कीटों की ध्वनियां हमें नाममात्र को सुनाई देती हैं वहीं कुछ कीट ध्वनियां कान फाड़ डालने वाली होती हैं। कुछ कीट तो ऐसे भी हैं जिनकी ध्वनियां हमारे 'ध्वनि प्राचीर'[4] से परे होने के नाते सच में ही परा-श्रव्य[5] हैं। कुछ कीट-ध्वनियों का स्वर[6] प्रायः 3668-4138 तक पहुंच जाता है।

कीट दो उपयुक्त रूप से खुरदरी सतहों को एक-दूसरे से रगड़कर घर्षण ध्वनि उत्पन्न करना[7] या खींचकर फैलाई हुई कर्णपटह झिल्ली[8] के तेज कंपन[9] द्वारा भी विभिन्न आवाजें पैदा करते हैं। ध्वनि प्रवर्धन[10] यानी ध्वनि को और तेज करने के लिए एक अनुनादी वायु कोष्ठिका[11] होती है जो कर्णपटह से ढकी रहती है। घर्षण द्वारा ध्वनि उत्पन्न करने वाले कीटों में शायद झींगुर सबसे ज्यादा जाने-पहचाने हैं। रसोईघर या भंडारघर में झींगुरों की

---

1. संरागी : Symphiles
2. सूत्रकृमि : Nematode
3. चिंचड़ी : Mites
4. ध्वनि प्राचीर : Sound barrier
5. परा-श्रव्य : Ultra-sonic
6. स्वर : Pitch
7. घर्षण ध्वनि उत्पन्न करना : Stridulation
8. कर्णपटह झिल्ली : Tympanal membrane
9. कंपन : Vibration
10. ध्वनि प्रवर्धन : Amplification
11. अनुनादी वायु कोष्ठिका : Resonating air chamber

परिचित चींचीं किसने नहीं सुनी होगी? यह चींचीं की आवाज दसों दिशाओं से आती हुई लगती है और अगर आप गायक की स्थिति जानने का प्रयास करेंगे भी तो वह व्यर्थ ही होगा क्योंकि झींगुर आपके पैर के एकदम पास हो सकता है। वायु का तापमान अनुकूल होने पर झींगुर घंटों तक चींचीं करता रहता है।

साइकैडा का संगीत शायद कीटों द्वारा ध्वनि उत्पादन में उच्चतम रूप में विकसित है। साइकैडा के उदर के आधार पर एक लचीली झिल्ली होती है जिसे कर्णपटह कहते हैं और जिसके भीतरी ओर कुछ कोमल पेशियां जुड़ी होती हैं। इन पेशियों का जल्दी जल्दी संकुचन होने से झिल्ली में कंपन होने लगता है और इस प्रकार पैदा होता है विशिष्ट साइकैडा संगीत। इस तरह पैदा होने वाली ध्वनि वायु अवकाश[1] के अनुनादी स्तंभ[2] द्वारा अत्यधिक प्रवर्धित हो जाती है जो कभी कभी पूरे उदर को भर देती है। साइकैडा की ध्वनि घरघराहट, आरा चलाने, चाकू पैना करने, चिचयाने, सीटी बजाने, चिड़िया के गाने जैसी या कड़ाही में तेल गरम करने जैसी होती है।

अनुरंजन और जनन

कीटों के व्यवहार के दूसरे पहलुओं की तरह उनका लैंगिक जीवन भी विचित्रताओं से भरा है। उच्चकोटि के प्राणियों की तरह इनमें दोनों लिंग यानी नर और मादा होते हैं जिनमें नर और मादा का अनुपात बराबर होता है। लेकिन कुछ कीटों में नरों की अपेक्षा मादाओं की संख्या अधिक होती है और कुछ असाधारण मामलों में नर होते ही नहीं। अनेक कीट बिना समागम के ही अंडे देने में सक्षम होते हैं इसलिए नर या तो होते ही नहीं अथवा होते भी हैं तो उनके दर्शन अनियमित अंतरालों के बाद होते हैं। कभी कभी तो शायद मादाओं की अनेक पीढ़ियों के बाद नर दिखाई देते हैं। कुछ अश्म मक्खियां आधी नर-आधी मादा (अर्धनारीश्वर) या उभयलिंगी[3] होती हैं। लेकिन दोनों लिंगों में आकार, रंग और देह के लक्षण सामान्यतया भिन्न भिन्न होते हैं जिससे लिंग द्विरूपता[4] बहुत सुस्पष्ट होती है। आमतौर पर नर कीट की तुलना में मादा कीट बड़ी, सुपरिवर्धित ज्ञानेन्द्रियों वाली और ज्यादा जीवित रहने वाली भी होती है। अधिकांश कीटों की प्रौढ़ मादाएं कुछ न कुछ तो खाती ही हैं, नरों में प्रायः खाने की क्षमता ही नहीं होती। मच्छर इसका जाना-पहचाना उदाहरण है। कोशधारी साइकिड[5] शलभ अपह्रासित, पूर्णतया अपंखी भृंगक[6] जैसा प्राणी-अंडों का थैला मात्र होता है और नर सपंख शलभ होता है। अंजीर में पाए जाने वाले अंजीर कीट में नर अपंखी और मादा सपंखी होती है। मखमल पिपीलिका[7] (म्यूटीलिड

1. वायु अवकाश : Air space
2. अनुनादी स्तंभ : Resonating column
3. उभयलिंगी : Hermaphrodites
4. लिंग द्विरूपता : Sex dimorphism
5. कोशधारी साइकिड : Case-bearing Psychid
6. भृंगक : Grub
7. मखमल पिपीलिका : Velvet ant

बर्र) कहलाने वाली मादा पंखहीन और जबकि नर पंखयुक्त होता है और किसी भी तरह से मादा जैसा नहीं होता। पिटिका बनाने वाले कुछ साइनिपिड बर्र केवल एक पीढ़ी छोड़कर दूसरी में सपंख होते हैं। नर और मादाओं में पाए जाने वाले अन्य अंतर में नर साइकैडा का उल्लेख किया जा सकता है जो गा सकता है। जबकि मादा पूर्णतया मूक होती है लेकिन इसमें नर का गीत सुनने के लिए कान तो होते हैं।

लिंगों में इतनी भिन्नता देखते हुए आपको किसी न किसी तरह के प्राकृतिक अनुरंजन[1] की आशा तो होगी ही। समागम से पूर्व प्रायः जटिल अनुरंजन होता है। नर उत्तेजित होकर अपनी शृंगिकाएं हिलाते हैं, पंख फड़फड़ाते हैं, मादा को थपथपाते हैं और तरह तरह के खेल रचाते हैं। अनेक कीटों, जैसे कि मई-मक्खियां, व्याध पतंग, दीमक आदि में मादाओं और नरों के बड़े बड़े झुंड अपने पंखों के सहारे नाचते हैं। झुंड में शामिल व्यष्टि जल्दी ही जोड़ा बनाकर अधिकाधिक ऊंचे उड़ते हैं और तब समागम करते हैं। कुछ स्कैरेबिड भृंगों के नर अनुरंजन के दौरान आने वाली संतति के लिए खाना एकत्रित करते हैं और गर्व से प्रेम भेंट के रूप में मादा को देते हैं। नर कामद कक्ष बनाने में भी सहायता करते हैं। कभी कभी तो अकेला नर पहले से ही इस कक्ष का निर्माण करता है और तब अपनी प्रेयसी को इसके भीतर आने का निमंत्रण देता है।

कामद उड़ान के अंत में अनेक कीट बीच हवा में समागम करते हैं। मादाएं और नर हवा में जितना ऊंचा जा सकते हैं उतना ऊपर उठते हैं और तब एक जोड़ा अकेला रह जाता है जिसे कोई बाधा पहुंचाने वाला नहीं होता। कुछ अन्य कीट-जोड़े किसी अनुकूल आश्रमस्थल की ओर रेंग जाते हैं जैसे कि पत्थर के नीचे। कुछ कीट ऐसे भी हैं जो पत्तियों, झाड़ियों, घास आदि में और खुले मैदान में भी समागम करते हैं। समागम के अंत में नर सामान्यतया थककर चूर हो जाते हैं और कुछ ही घंटों में मर जाते हैं। प्रार्थी मेन्टिस का उदाहरण सबसे करुणा भरा है। जब नर समागम के चरम आनंद के क्षणों में होता है तब उसकी पत्नी उसे सिर की ओर से टुकड़ा टुकड़ा करके उदरस्थ कर जाती है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है अधिकांश कीटों में जनन यद्यपि द्विलिंगी[2] होता है, फिर भी समागमविहीन मादाओं में सफलतापूर्वक जनन करने और पूरी तरह से ऐसे जीवनक्षम[3] अंडे देने की क्षमता है जो सामान्यतया प्रौढ़ कीटों में परिवर्धित हो जाते हैं। कुंवारी मादाओं द्वारा इस प्रकार की जनन विधि अनिषेकजनन[4] कहलाती है। अनेक गणों में यह विधि बहुत सामान्य है और दूसरे गणों में एकांतर पीढ़ियों[5] में यह एक नियमित घटना है। एफिडों और पिटिका-बर्रों[6] में अनिषेकजनन और द्विलिंगी जनन एकांतर रूप

1. अनुरंजन : Courtship
2. द्विलिंगी : Bisexual
3. जीवनक्षम : Viable
4. अनिषेकजनन : Parthenogenesis
5. एकांतर पीढ़ियां : Alternate generations
6. पिटिका-बर्र : Gall wasps

से होता है अर्थात एक बार अनिषेकजनन और दूसरी बार द्विलिंगी जनन होता है और यही क्रम चलता रहता है। अनिषेचित अंडे प्रायः नरों में और निषेचित अंडे मादाओं में परिवर्धित होते हैं। मधुमक्खी और पिटिका-बर्र साइनिप्स के उदाहरण हैं। एफिडों में जनन प्रायः एक अत्यधिक जटिल प्रक्रिया है। निषेचित अंडे से अपंखी मादा बनती है जो अनेक पीढ़ियों तक अनिषेकजनन करती रहती है और उत्पन्न होने वाली संतति[1] अपंखी मादाएं होती हैं। उसके बाद अनिषेकजनन द्वारा ही मादाएं और नर दोनों ही उत्पन्न होते हैं। ये नर और मादाएं दूसरे खाद्य पौधों पर चले जाते हैं, वहां समागम करते हैं और निषेचित मादाएं अंडे देती हैं। डिप्टेरा (द्विपंखीगण) में लैंगिकतः परिवर्धित मादा प्रौढ़ के अतिरिक्त अपरिपक्व लार्वा भी अनिषेकजनन करने में सक्षम होता है। अपरिपक्व तरुण द्वारा जनन की यह क्रिया शावकीजनन[2] कहलाती है और इसका उदाहरण है पिटिका मशकाभ (मिज) **मियास्टर** मादा एक से लेकर कई लाख तक अंडे देती है। जरायुज कीटों में, अंडे मादा के शरीर में ही स्फुटित हो जाते हैं यानी वहीं लार्वा निकल आते हैं। इस प्रकार लार्वा या प्यूपा या तरुण प्रौढ़ भी पैदा होते हैं। कुछ जरायुज कीटों में सुपरिवर्धित गर्भाशय होता है। तरुण कीट अपने गर्भाशयी परिवर्धन के दौरान अपना पोषण गर्भाशय से लेता है।

अंडे का परिवर्धन आमतौर पर जल्दी होता है। जब अंडों से तरुण निकलता है तो यह प्रौढ़ जैसा नहीं होता। यह प्रायः अपरिपक्व कृमि जैसा प्राणी होता है जिसे लार्वा कहते हैं। लार्वा पंखरहित होता है और इसमें प्रायः संयुक्त नेत्र तथा श्रृंगिकाएं नहीं होतीं। लार्वा जमकर खाता है और वृद्धि के दौरान अपनी त्वचा कुछ बार निर्मोकन[3] करता है यानी उतार फेंकता है। लार्वा की वृद्धि पूरी हो जाने के बाद यह खाना एकदम बंद कर देता है, बहुत सुस्त हो जाता है, कोई आश्रयस्थल खोज लेता है और प्रायः रेशमी धागों का रक्षात्मक कोया[4] कातता है। कोया के भीतर यह एकबार फिर निर्मोकन करता है और तब एक गतिहीन प्यूपा में रूपांतरित हो जाता है जो कुछ भी नहीं खाता-पीता। स्पष्ट प्रशांत[5] काल के बाद प्यूपा अपनी त्वचा फाड़ फेंकता है और इसमें से पूरी तरह से सपंख प्रौढ़ कीट निकलता है जो भृंग, तितली या शलभ कुछ भी हो सकता है। लार्वा के प्रौढ़ में रूपांतरण को और प्रौढ़ बनने से पूर्व उसमें होने वाले परिवर्तनों की श्रृंखला को कायांतरण[6] कहते हैं। कुछ कीटों जैसे कि तितलियों, शलभों, भृंगों, मधुमक्खियों, चींटियों, मक्खियों और मच्छरों आदि में अपरिपक्व लार्वा का सपंख प्रौढ़ कीट में रूपांतरण आकस्मिक रूप से प्यूपा में हो जाता है। इसे पूर्ण कायांतरण कहते हैं और जिन कीटों में यह होता है वे होलोमेटाबोला कहलाते हैं। दूसरे कीटों में जैसे कि टिड्डों, चिलचट्टों और मत्कुणों में प्रौढ़

---

1. संतति : Progeny
2. शावकीजनन : Paedogenesis
3. निर्मोकन : Moulting
4. कोया : Cocoon
5. प्रशांत : Quiescence
6. कायांतरण : Metamorphosis

के लक्षण क्रमिकरूप से प्रकट होते हैं। पंख के अवशेष लार्वा की प्रारंभिक अवस्था में भी होते हैं लेकिन प्रत्येक अनुक्रमिक[1] निर्मोकन में उत्तरोत्तर बड़े होते जाते हैं। प्यूपों की कोई प्रशांत अवस्था नहीं होती। उनका कायांतरण अपूर्ण होता है और वे हेटेरोमेटाबोला[2] कहलाते हैं। कायांतरण अनेक कारकों से प्रभावित होता है जैसे कि मस्तिष्क का हॉर्मोनी स्राव, बाहरी तापमान, आर्द्रता (नमी) आदि। यह स्फुटन के समय अंडे के भीतर आरंभिक भ्रूणीय परिवर्धन[3] से भी प्रभावित होता है।

हमारे बागों में पत्तियों को कुतर कुतर कर भक्षण कर जाने वाली और भद्दी दिखाई देने वाली इल्ली का सहसा ही एक फूल से दूसरे फूल पर मंडराने वाली चमकदार रंगों से सुशोभित शानदार तितली में हो जाने वाले रूपांतरण का अध्ययन करना बड़ा ही लुभावना है। जब कोई व्यक्ति दुर्बल तितली या शलभ को प्यूपा की त्वचा को तोड़कर बाहर निकलते हुए, हौले हौले अपने पंखों को फैलाते हुए और उनके सूखने तथा कठोर हो जाने की प्रतीक्षा करते और बाद में मकरंद का रसास्वादन करने के लिए सबसे नजदीक फूल के पास जाने के लिए बेझिझक उड़ने के चमत्कार को देखता है तो उसके सामने अनेक ऐसे प्रश्न मुंह बाए आ खड़े होते हैं जिनका कोई उत्तर नहीं। नींद में अलसाई-सी इल्ली को कैसे पूर्वाभास हो जाता है कि जब वह प्यूपा में परिवर्तित होगी तब इसे सुरक्षा के लिए रेशमी कोये की जरूरत हो सकती है? नए नए निकले शलभ या तितली को कैसे पता चलता है कि उसे मकरंद के लिए किसी फूल के पास जाना है? प्यूपा की त्वचा के भीतर ही पंख कैसे परिवर्धित हो जाते हैं जो असंगठित ऊतकों से भरे होते हैं और जो बाद में टूट जाते हैं? ऐसा क्यों हैं कि तितली और शलभ में तो कायांतरण होता है जबकि मत्कुण में नहीं? यह आनंद, धैर्यपूर्ण अध्ययन और प्रेक्षणों के तार्किक संश्लेषण का अंतहीन क्षेत्र है, जो यह संकेत करता है कि चमत्कार केवल बीती हुई पौराणिक घटना नहीं है बल्कि हम चमत्कारों से घिरे हुए हैं और हम स्वयं कीट चमत्कारों का एक अविभाज्य अंग हैं।

---

1. अनुक्रमिक : Successive
2. हेटेरोमेटाबोला : Heterometabola
3. भ्रूणीय परिवर्धन : Embryonic development

3

कीटों में बाल-कल्याण

सभी प्राणियों की तरह कीटों को भी आश्रयहीनता, रोग, भुखमरी, असंख्य शत्रुओं के आक्रमण, अनिश्चितताओं और अन्य अज्ञात संकटों को झेलना पड़ता है। वे अत्यधिक घातक पर्यावरण में रहते हैं। जिसमें जीवित बने रहने के अवसर अधिक अनुकूल नहीं होते। प्रौढ़ कीट आमतौर पर एक जगह से दूसरी जगह जाने, खाना तलाशने और संकटों से बचने में समर्थ होता है। यह अपने शत्रुओं का सामना कर सकता है और सामान्यतया अपनी अच्छी देखभाल कर सकता है।

दूसरी ओर अंडे और लार्वा अधिकतर असहाय होते हैं। ऊष्मायन अवधि[1] के दौरान अंडे को न केवल पाले, अत्यधिक गर्मी, आर्द्रता, शुष्कता और बाढ़ का बल्कि अनेक शत्रुओं का सामना करना पड़ता है। स्फुटन (अंडे को फोड़कर बाहर निकलना) के फौरन बाद ही तरुण लार्वा को आश्रय और भोजन खोजना पड़ता है। उनमें से बहुत से तो अपना रास्ता भटक जाते हैं और अंततः भूख तथा थकान से दम तोड़ देते हैं, बहुत से निर्दयी शत्रुओं के शिकार बन जाते हैं। इन महाविपत्तियों को देखते हुए यह सचमुच एक चमत्कार ही है कि कीट सफलतापूर्वक जनन करते हैं और जीवित बचे रहते हैं।

सभी प्राणियों में माता-पिता सामान्यतया बच्चों की शत्रुओं से रक्षा करते हैं, उन्हें अनाश्रय से बचाते हैं, उनका भरण-पोषण करते हैं, उन्हें शिक्षित करते हैं और उनकी देखभाल करते हैं। ऐसा तब तक करते हैं जब तक बच्चे अपना बचाव स्वयं करने योग्य नहीं हो जाते। पैतृक-रक्षण के कारण ही प्राणियों में शिशु-मृत्यु संख्या न्यूनतम होती है।

अधिकांश कीट जन्म के समय अनाथ होते हैं। उनके पिता की मृत्यु विवाह के बाद जल्दी ही हो जाती है और विधवा मां भी अंडे देने के बाद चल बसती है। हालांकि कीटों की एक बहुत बड़ी संख्या अपनी संतति को देखने के लिए कभी भी ज्यादा दिन जिंदा नहीं रहती लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि तरुणों की देखभाल ही न होती हो। मां स्वतः ही बच्चे के कल्याण के लिए काम करती है। जिस बच्चे को देखना उसके भाग्य में नहीं

---

1. ऊष्मायन अवधि : Incubation period

लिखा है उसकी सुरक्षा के लिए वह हर संभव उपाय करती है।

सभी कीटों में पैतृक-रक्षण होता है। उन में से कुछ में तरुण की नाममात्र की देखभाल होती है लेकिन दूसरों में अपेक्षाकृत उच्चकोटि की पैतृक-चिंता होती है। बच्चों का विशेष ध्यान रखने की यह वृत्ति सभी अवस्थाओं के लिए होती है जैसे कि अंडावस्था, लार्वावस्था, प्यूपावस्था और यहां तक कि नई नई तरुण प्रौढ़ावस्था।

अंडे की देखभाल

ऐसा नहीं है कि कीट-मां अपने अंडे यूं ही असावधानी से बिखेर देती हो। वह अंडे सही माध्यम में और ऐसी जगहों पर देती है जिससे कि जलवायु की प्रतिकूल परिस्थितियों में उनकी अधिकतम रक्षा हो सके और अंडों से निकलने वाले नए नए लार्वा बिना अधिक कठिनाई के खाना और आश्रय खोज सकें। उदाहरण के लिए वायुवीय कीटों के लार्वा प्रायः जलीय होते हैं और ऐसे सभी मामलों में मां बिना कोई भूल किए अपने अंडे या तो पानी में ही या उसके पास देती है। प्रौढ़ चेल मक्खी, अश्म मक्खी, व्याध पतंग, मई मक्खी और मच्छर अपने लार्वों के विशेष स्वभाव के अनुसार किसी तालाब या नाले को ढूंढ़कर पानी में अंडे जमा करते हैं। अंडों को पानी में यूं ही नहीं गिरा दिया जाता बल्कि दृढ़ स्थिरण[1] की व्यवस्था करने के लिए अनेक विधियां अपनाई जाती हैं। ताकि अंडे डूबने या तेज धारा में बह जाने से बचे रहें। इसके साथ साथ यह भी व्यवस्था की जाती है कि उन्हें पर्याप्त हवा मिलती रहे। अंडे तालाब या झील की सतह पर खाली पानी में नहीं दिए जाते बल्कि मां द्वारा अच्छी तरह से तैयार की गई अंड-चाटी[2] में दिए जाते हैं। ऐसे अनेक कीट जो साधारणतया बसंत और गर्मी के दौरान पेड़ों की पत्तियों पर अंडे देते हैं वे एक दृढ़ स्राव द्वारा पत्तियों को टहनी से चिपकाने की अतिरिक्त सावधानी बरतते हैं ताकि सामान्य पतझड़-ऋतु में जब पत्तियां झड़ती हैं तो अंडे भी उनके साथ जमीन पर न गिर जाएं।

प्रतिकूल जलवायु की परिस्थितियों में अंडों के लिए समुचित आश्रय की व्यवस्था करने और उन्हें उनके प्राकृतिक शत्रुओं से सक्रिय रूप से छिपाने का प्रबंध करने की वृत्ति कीटों में व्यापक रूप से पाई जाती है। कुछ कीट अपने अंडे जमीन में गाड़ देते हैं तो दूसरे कीट अपने अंडों को जमीन के भीतर घुसेड़ देते हैं। टिड्डे अपने असाधारण रूप से वितान्य[3] यानी फैलाए जा सकने वाले उदर की सहायता से अपने अंडों को प्रायः नरम मृदा में बहुत गहराई तक धकेल देते हैं। बाघ-भृंग[4] की मादाएं जमीन में नलिकाकार सुरंगें खोदती हैं, उसके पेंदे में अपने अंडे देती हैं, सुरंगों को सावधानीपूर्वक वापस मिट्टी से भर देती हैं

1. स्थिरण : Anchorage
2. अंड-चाटी : Egg- raft
3. वितान्य : Extensible
4. बाघ-भृंग : Tiger beetle

और जहां सुरंग खोदती हैं उस जगह की सतह को चिकना बनाने की अतिरिक्त सावधानी भी बरतती हैं ताकि शत्रु के लिए कोई पहचान चिह्न बाकी न रहे। कुछ कीट तो असली अंड-कक्ष[1] को बंद कर देने के बाद नकली सुरंग तक का निर्माण करते हैं ताकि शिकार की खोज में आने वाले संभावित शत्रु को भ्रम में डाल सकें। एक ओर जहां कुछ कीट की मादाएं अपने अंडों को मैल के टुकड़ों, मल-गुटिकाओं[2] अथवा बाहरी पदार्थ के साथ मिश्रित मोम या रेशमी धागों के विशेष स्राव से ढक देती हैं वहीं दूसरी ओर कुछ अन्य बहुत परिश्रम से तैयार किए गए जटिल अंडावरणों, अंड-चाटियों, अंड-कोयों[3] आदि में अंडे देती हैं। ऐसे अंडावरणों का निर्माण प्रायः अंडे देने के बाद छिपाने का प्रयास मात्र नहीं है बल्कि अंडों के आगमन से पूर्व की व्यापक तैयारी भी है। अंडावरण के निर्माण में सब प्रकार की सामग्री काम में लाई जाती है। मार्निंगग्लोरी और अन्य *कॉनवॉल्वुलस* पौधों की पत्तियों पर प्रजनन करने वाली सामान्य मादा उद्यान-भृंग, *एस्पिडोमॉर्फा मिलियेरिस* ऐसा अंडावरण बनाती है जिसमें लगभग 30-80 अंडे आ सकें। इस अंडावरण में आठ अनुदैर्घ्य कतारें होती हैं जिनमें केवल बीच के चार कोषों में तो अंडे होते हैं तथा अन्य चारों ओर के कोष खाली होते हैं। ये नकली कोष केवल रक्षा की दृष्टि से बनाए जाते हैं। एक अंडावरण बनाने में मादा भृंग को लगभग आधा घंटा लगता है। एक मादा अपने जीवनकाल में 70 अंडावरण बनाती है। प्रार्थी मेन्टिस जिसका परिचय हम हत्यारिन पत्नी के रूप में दे चुके हैं एक आदर्श मां होती है। वह अनेक किस्म के अंडावरण बनाती है। मेन्टिड का अंडावरण मादा के शरीर से निकलने वाले एक विशेष स्राव से निर्मित हवा से भरा हुआ एक ठोस फोम होता है। यह अंडावरण अंडों के लिए एक सच्चे उष्मा-रोधी[4] का कार्य करता है। अंडावरण प्रायः रात में बनाया जाता है और किसी झाड़ी में एक शाखा के साथ मजबूती से चिपका दिया जाता है। अंडों की साफ-सुथरी पंक्तियां ठोस बनाए गए फोम के भीतर गहराई में होती हैं। सूख जाने पर यह फोम पूरी तरह से जल-सह[5] और प्रघात-सह[6] होता है।

मादा जल-भृंग, *हाइड्रस* रेशमी धागों और पानी के पौधों की पत्तियों के टुकड़ों से सादी-सी अंड-चाटियां बनाती है। मादा प्रायः पौधों की जड़ों के तंतु और दूसरे रेशों को मिलाकर एक लंबी-चौड़ी टोकरी बुनकर उसमें अंडे देती है (चित्र 69)। दूसरी मादा भृंग पत्तियों के छोटे छोटे टुकड़ों और रेशमी धागों से जाल बनाकर जटिल अंड-चाटियां बनाती है। यह चाटी एक भारी भरकम रेशमी नाव होती है जो चारों तरफ से बंद और चतुराई से पत्तियों के छद्मावरण से ढकी रहती है। शुरुआत करने के लिए मादा तैरती हुई पत्ती

---

1. अंड-कक्ष : Egg chamber
2. मल-गुटिकाएं : Fecal pellets
3. अंड-कोये : Egg-cocoons
4. उष्मा-रोधी : Thermo insulator
5. जल-सह : Water proof
6. प्रघात सह : Shock proof

के नीचे जाती है और इसके उपांत को जोरशोर से बुनना शुरू करती है। ऐसा करते समय वह पत्ती के किनारों को अपनी टांगों से पकड़े रहती है। दस मिनट बाद वह कलाबाजी-सी करते हुए पलटी खा जाती है और अब औंधी होकर तैरती है लेकिन अभी भी पत्ती को पकड़े रहती है। इस स्थिति में बने रहकर वह पत्ती को एक बंद रेशमी धागे के अस्तर वाले तैरते थैले की शक्ल में बुनना जारी रखती है। अब धीरे धीरे एक बड़ी जेब-सी बन जाती है और वह अपने अंडे इस जेब में ठूंस देती है। अंड-प्लव[1] को पूरा बना देने के बाद वो इस पर एक छोटी, थोड़ी-सी मुड़ी हुई सीधी चिमनी-जैसी संवातक नलिका[2] लगा देती है। इस नलिका का सिरा पानी की सतह से बाहर निकला होता है। ताकि अंडों को आवश्यक हवा जाती रहे।
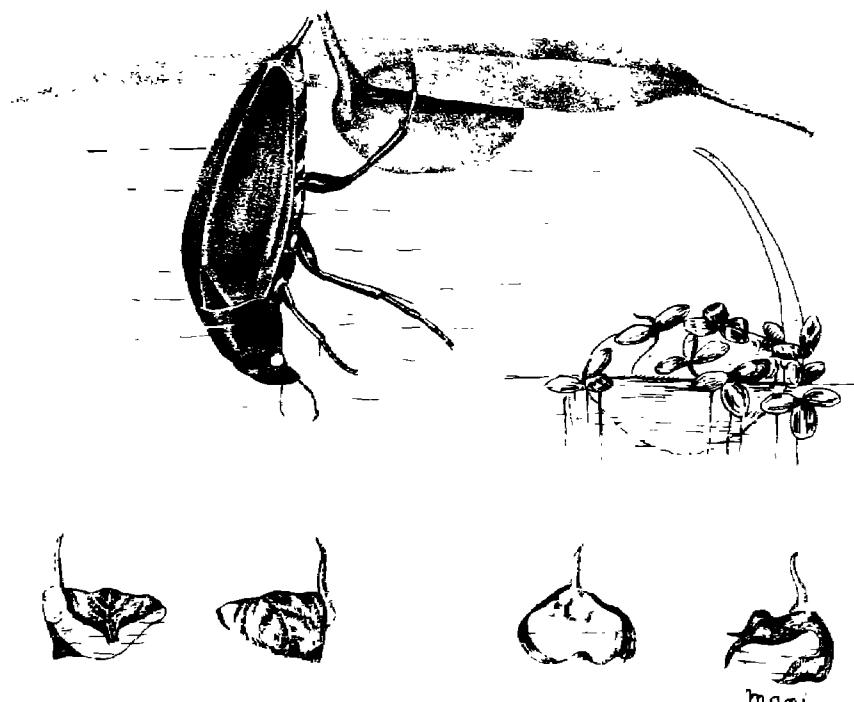
चित्र 69. जल-भृंग *हाइड्रस* की मादा और रेशमी धागों का अंड-कोया। यह कोया एक तैरती पत्ती के नीचे बनाया गया है और इसमें एक मुड़ी हुई संवातक नलिका की व्यवस्था होती है ताकि कोए में परिवर्धित होने वाले अंडों को हवा मिलती रहे। अंड-कोश की सतह पर चिपके पत्तियों के टुकड़ों का छद्मावरण इसे चतुराई से छिपाए रखता है।

---

1. अंड-प्लव : Egg-float
2. संवातक नलिका : Ventilator tube
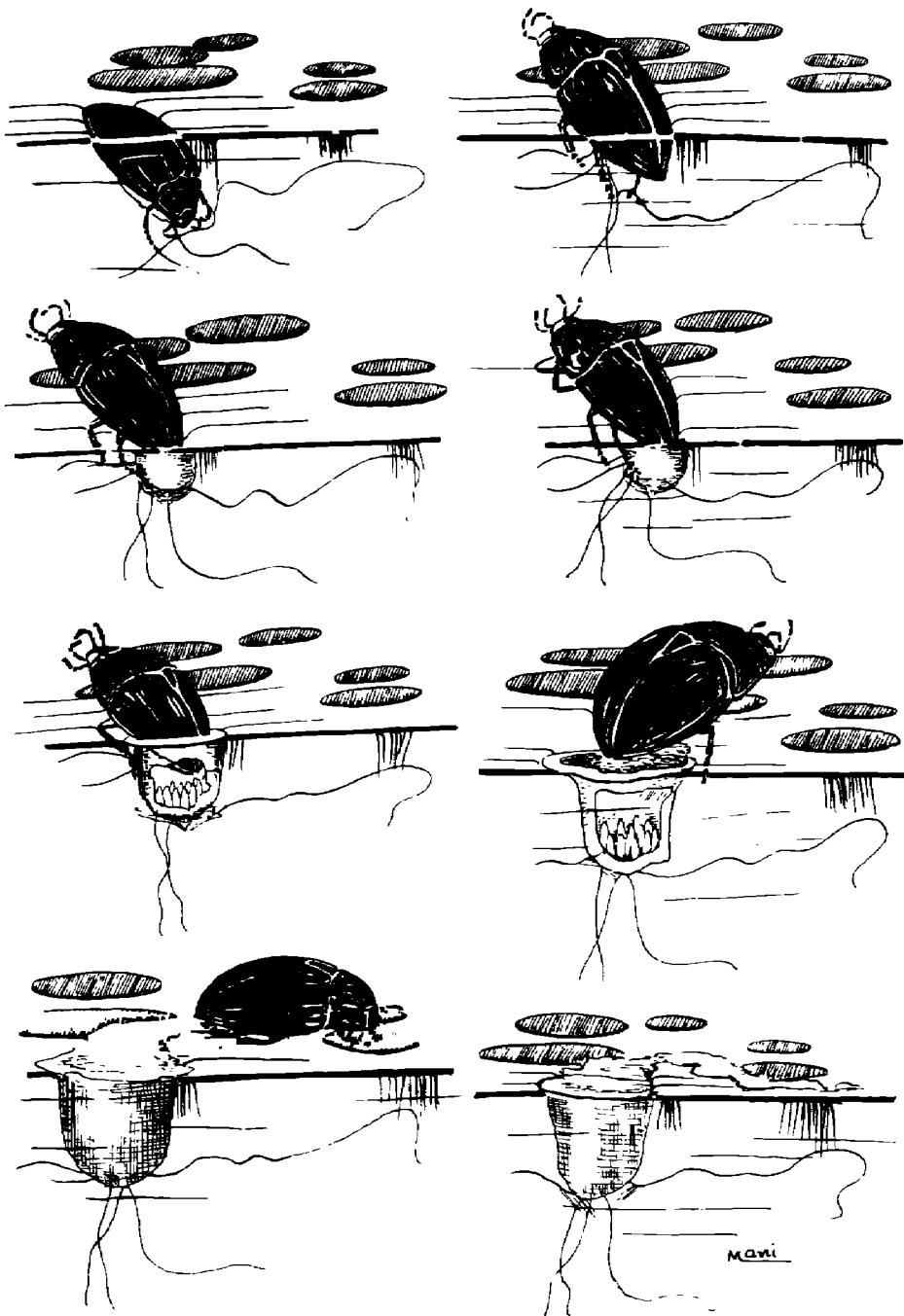
चित्र 70. रेशमी धागों से अंड-प्लव बनाती एक जल-भृंग की मादा। (*लेन्गरकेन* से संशोधित)

इसके बाद वह तैयार किए गए अंड-प्लव का चारों ओर से सावधानीपूर्वक निरीक्षण करती है और रेशमी धागों को छिपाने के लिए पत्ती के छोटे छोटे टुकड़े यहां वहां टांग देती है। अंड-प्लव बाहर से एकदम नहीं दिखाई देता बल्कि ऐसा लगता है मानो जलीय खरपतवार हो।

शाव-नीड़

बहुत-से कीट अपने बच्चों की रक्षा में और एक कदम आगे हैं। वे वास्तव में शाव-नीड़[1] बनाते हैं जिसमें अंडों का ऊष्मायन होता है और लार्वों को भी आश्रय मिलता है। शाव-नीड़ अंडे और लार्वा दोनों ही की रक्षा करते हैं। कभी कभी मादा लार्वा के लिए इस नीड़ में थोड़ा-सा भोजन भी रख देती है। अगर मादा कीट अपने अंडों और लार्वा की व्यक्तिगत रूप से देखभाल करने और भोजन कराने के लिए शाव-नीड़ या उसके आसपास रहने लगती है तो यह नीड़ एक शिशुपालन गृह (नर्सरी) बन जाता है।

हालांकि सबसे अधिक परिवर्धन सामाजिक कीटों में देखने को मिलता है फिर भी दूसरों कीटों में भी नीड़स्थल और निर्माण सामग्री के चयन और नीड़ के निर्माण में पर्याप्त कौशल देखा गया है। बहुत-से कीट अपना शाव-नीड़ स्वयं नहीं बनाते बल्कि किन्हीं भी सुविधाओं का उपयोग कर लेते हैं या कुछ दूसरे कीटों के अंड-नीड़ों पर आक्रमण करके अधिकार जमा लेते हैं। सेक्सटन भृंग (स्टेफीलीनिडी) समुद्र-तट पर ऐसी बालू में सुरंग खोदती है जिसपर समुद्री-शैवाल तथा अन्य जैविक मलबा बिखरा हुआ होता है। मादा भृंग सुरंग की तली में रहती है और अंडों के लिए अपने बसेरे के चारों ओर काट काट कर अंडाकार कक्ष बनाती है। वह मुख्य गलियारे को अंडों से निकलने वाले लार्वों के लिए काम में लाती है। कुछ एकल मक्खियां सीधी खड़ी पंक से बनी चोटियों पर अपने शाव-नीड़ बनाती हैं। पंक से लगभग दस सेंटीमीटर तक एक सीधा खोखला स्तंभ बनाया जाता है और तब बगल में कुछ दूरी के लिए अचानक एक मोड़ दे दिया जाता है। इस पार्श्व नलिका का अंतिम छोर बड़ा होता है जिसमें मादा थोड़ी-सी मात्रा में शहद जमा रखती है और अपने अंडे देती है। कुछ खनक-बर्रों के शाव नीड़ भी प्रलंबी[2] यानी लटकी पंक से बनी खड़ी चोटियों में इसी प्रकार बनाए जाते हैं। हरेक नीड़ लगभग दस सेंटीमीटर लंबी सीधी क्षैतिज संकरी नलिका जैसा होता है जो अनेक दीर्घित[3] अंडाकार अंड-कक्षों में समाप्त होता है। इन कक्षों में भोजन का भंडार और अंडे होते हैं। प्रत्येक अंड-कक्ष में पंक की ढीली ढाली डाट लगा दी जाती है और बाद में मुख्य गलियारे में भी डाट लगा दी जाती है (चित्र 75)। नीड़ के प्रवेश द्वार को वर्षा और शत्रुओं के आक्रमण से बचाने के लिए एक नीचे की ओर

---

1. शाव-नीड़ : Brood nests
2. प्रलंबी : Overhanging
3. दीर्घित : Elongated
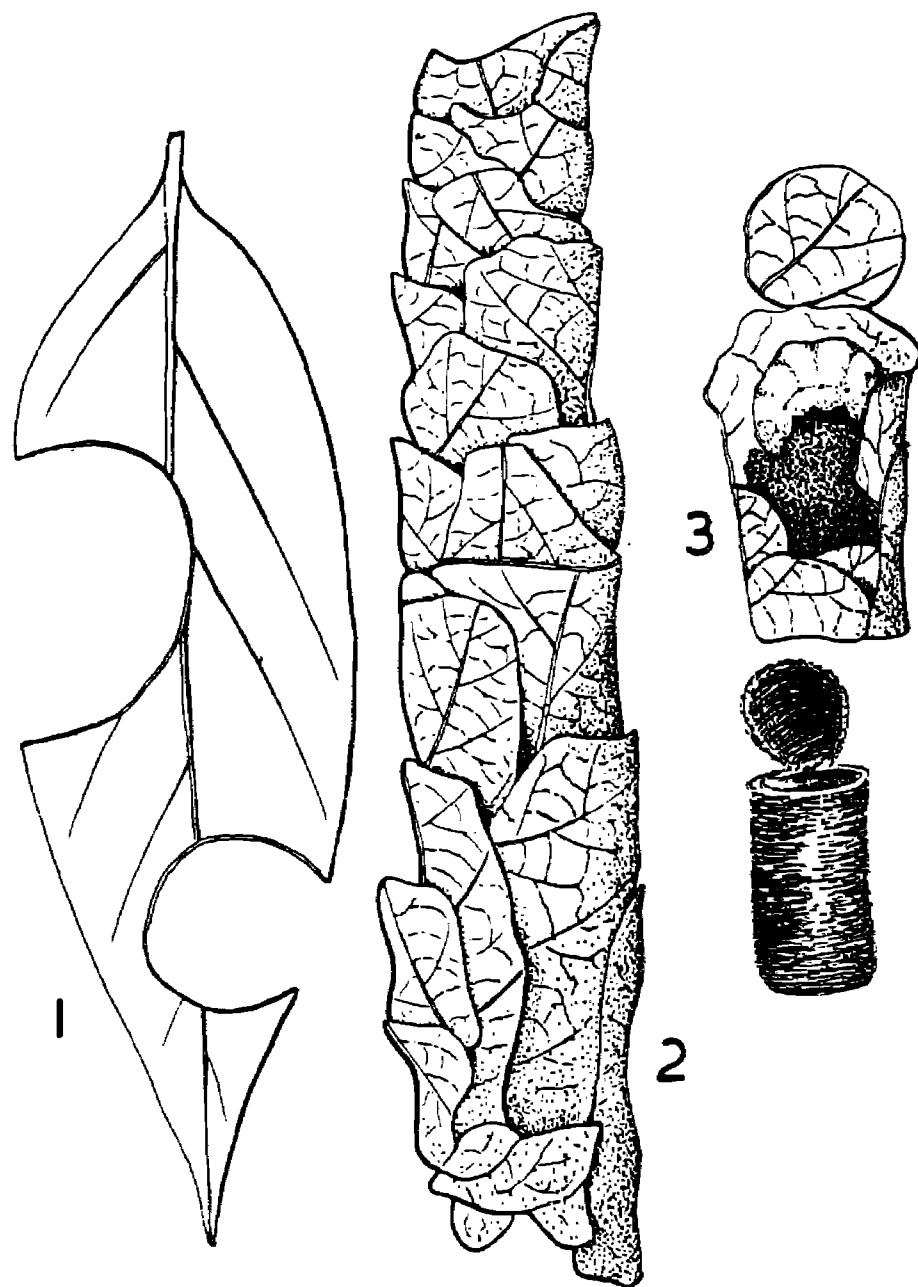
चित्र 71. पत्ती के टुकड़ों को साइज और नियत आकार में काटकर बनाया गया पर्ण-कर्तक मक्खी अंड-नीड़। 1. मक्खी द्वारा अरहर के पौधे की काटी गई पत्ती 2. बाहर से नीड़ ऐसा दिखाई देता है 3. पत्ती के ढक्कन, मां द्वारा संगृहीत शहद और पराग के मिश्रण पर मक्खी लार्वा को दिखाने के लिए खोला गया एक कोष्ठ।

मुड़ी हुई चिमनी की शक्ल की प्रवेश नलिका होती है जो सुस्पष्टतः बाहर निकली रहती है।

शाव-नीड़ सब तरह की जगहों पर बनाए जाते हैं। उदाहरण के लिए जमीन में, मिट्टी और ईंटों की पुरानी दीवारों में, चोटियों, खड़ी चट्टानों, पेड़ के तनों आदि में। *ऑस्मिया* मक्खी अपने शाव-नीड़ टेलीग्राफ के खोखले खंभों, पुरानी और बिना छेड़ी गई पुस्तकों के पीछे, काम में नहीं लाई जाने वाली बंदूकों की नली, बेकार पड़ी मशीनरी के निर्वातन-पाइपों[1] और एकांत स्थानों में स्थापित करते हैं। *ऑस्मिया* की कुछ जातियां और *ड्यूटेरोजिनीया* मक्खी अंड-नीड़ के लिए पुराने घोंघा-कवचों को पसंद करती है। अंड-नीड़ों का निर्माण कोई साधारण कार्य नहीं है। इसमें अनेक क्रियाओं की शृंखला शामिल है जैसे कि नीड़स्थलों का सावधानीपूर्ण सर्वेक्षण और चयन, जमीन की सफाई, खुदाई और निकलने वाले मलबे का निपटान, नीड़स्थल तक प्रायः दूर दूर से उपयुक्त सामग्री को ढोना, अंड-कोष्ठिकाओं का सही साइज और आकार में निर्माण, कोष्ठिकाओं के भीतरी भाग को प्रपट्टों (पैनल) द्वारा बांटना, टेपिसट्री तथा नीड़ का छद्मावरण आदि। नीड़-निर्माण तकनीक घिसी पिटी नहीं होती। अधिकांश कीटों में अनुकूलता की असाधारण शक्ति होती है। उनमें अप्रत्याशित स्थानीय परिस्थितियों से मेल खाने के लिए और सभी उपलब्ध सुविधाओं के प्रभावशाली उपयोग के लिए अपने स्वभाव और तरीकों को बदलने की क्षमता होती है।

खुदाई से नीड़-निर्माण : झींगुर, अनेक भृंग और अन्य कीट अपने अंड-नीड़ शाव-नीड़ खोदकर बनाते हैं। प्रजनन के समय मादा अपने भूमिगत आवास से कभी भी बाहर नहीं आती बल्कि वह अपने पुराने बिल को और बढ़ा लेती है और कुछ पार्श्व-दीर्घाओं (गैलरी) का निर्माण कर लेती है, जिनमें अंत में अंड-कक्ष होते हैं। सामान्य गोबर लपेटा गुबरैला भृंगों *जियोट्रपस* और *ऑन्थोफेगस* की मादा अपने आपको जमीन के नीचे लगभग तीन सेंटीमीटर दफना लेती है और अपने अग्रपादों तथा कठोर वक्षीय ढाल को बेलचे के रूप में काम में लाकर खुदाई करती है। पहले मिट्टी के छोटे-से पिंड को अलग करती है और उसे अपने शरीर के नीचे से सरकाती हुई मध्यपादों तक और फिर पश्चपादों तक लाती है और अंत में अपने शरीर के पीछे ले जाती है। जब मिट्टी का पर्याप्त ढेला जमा हो जाता है तब खोदना बंद कर देती है और मुड़कर पंक के उस ढीले ढेले को अपने सिर द्वारा भूमि की सतह से बाहर धकेल देती है। प्रवेश द्वार से इस मलबे को पर्याप्त दूर छोड़ आने के बाद वह गोल गोल घूमती है ताकि सुरंग को गोलाकार आकृति की बना सके। वह दीवारों को दबा दबाकर मजबूत करती है और उन्हें चिकना करती है तथा हर चीज को करीने से पैक करती है। अंत में जब उसे सुरंग संतोषजनक लगने लगती है तब वह अंडे देने का काम करती है। वह अपने कार्य के प्रति कितनी गंभीर और उद्देश्यपूर्ण है

1. निर्वातन पाइप : Exhaust pipe
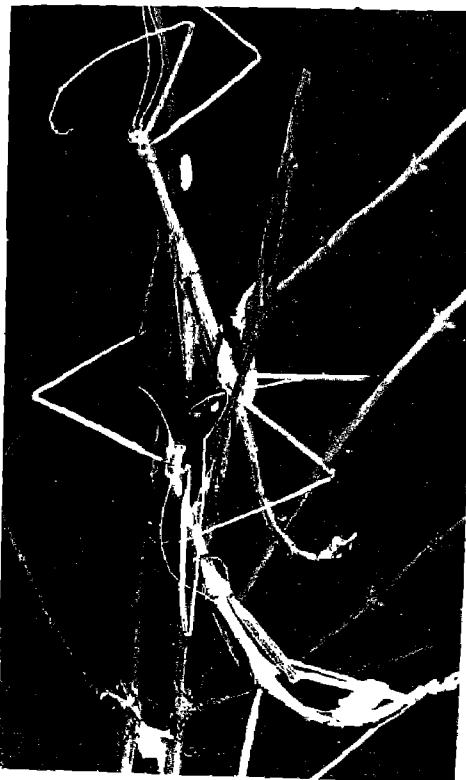
प्लेट-I (क) दो सामान्य यष्टि कीट जो एक झाड़ी में सूखी लकड़ियों के बीच अचलरूप में आराम कर रहे हैं ; (ख और ग) प्रार्थी मेन्टिस के दो सामान्य प्रकार के अंडकवच ; (घ) छोटी छोटी सींकों और बबूल के कांटों का बुना हुआ खोल। यह साइकिड शलभ *क्लेनिया क्रैमेराई* की इल्लियों ने सुरक्षा के लिए बुना है। इल्ली इस खोल के अंदर रहती है और जहां जाती है इसे साथ ले जाती है। इल्ली अपना सिर केवल भोजन करते समय ही इस खोल से बाहर निकालती है।

प्लेट-II (क और ख) पेड़ों के साथ साथ बने कई साल पुराने दीमक के टीले के दो दृश्य जो मनुष्य से भी ज्यादा ऊंचा है। उष्णकटिबंधीय जलवायु वाले दक्षिण-भारत में यह ध्यानाकर्षक दृश्य है। दीमक के इस घर का जो भूमिगत भाग है वह गलियों और कोष्ठों का एक जटिल मायाजाल है जिसमें असंख्य दीमक और उनके मेहमान आदि रहते हैं।

B
ख
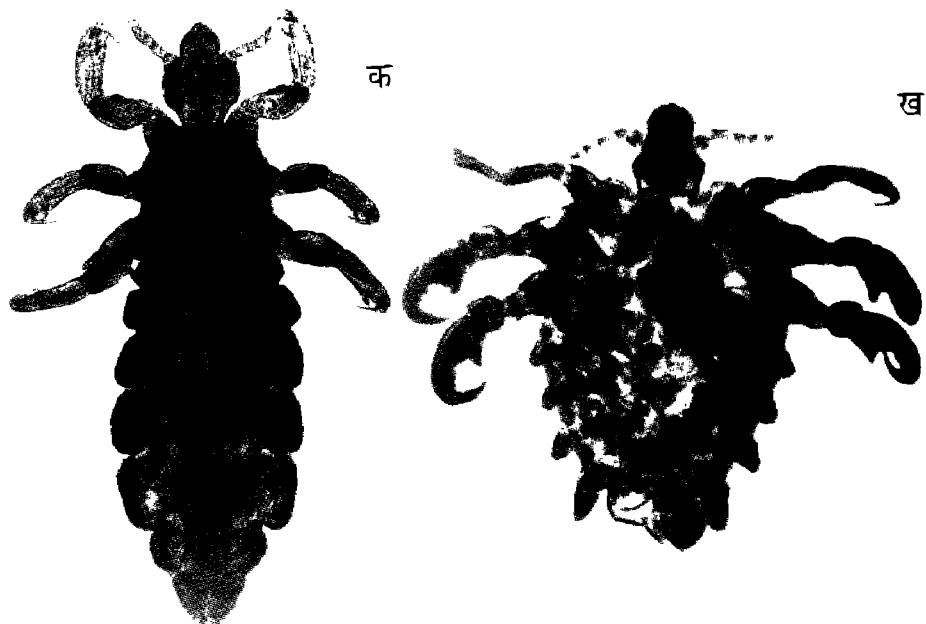
प्लेट-III मानव की दो सामान्य जूं के सूक्ष्मफोटो, बाएं—सिर की सामान्य जूं *पेडीकुलस ह्यूमेनस कैपिटिस*, दाएं—जघन की जूं या तथाकथित केंकड़ा जूं *थिरस प्यूबिस* जो मनुष्य के जघन क्षेत्रों के बालों में चिपटी रहती है। इसके मुड़े हुए और अंकुश जैसे नखर देखिए जो मनुष्य के बालों में चिपटे रहने और घूमने फिरने के लिए विशिष्ट हैं।
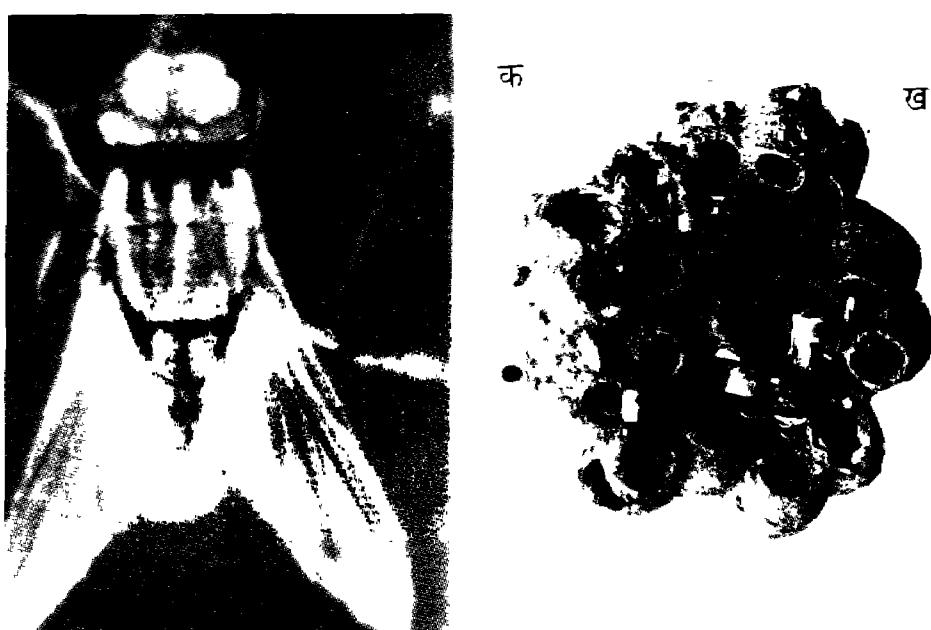
प्लेट-IV (क) भारतवर्ष की सामान्य घरेलू मक्खी, *मस्का डोमेस्टिका* (ख) बर्र, *रिन्कियम निरीडुलम* के मिट्टी के बर्तनों का गुच्छा जिस पर चिपचिपे गोंद की गोलिकाओं का लेप होता है।
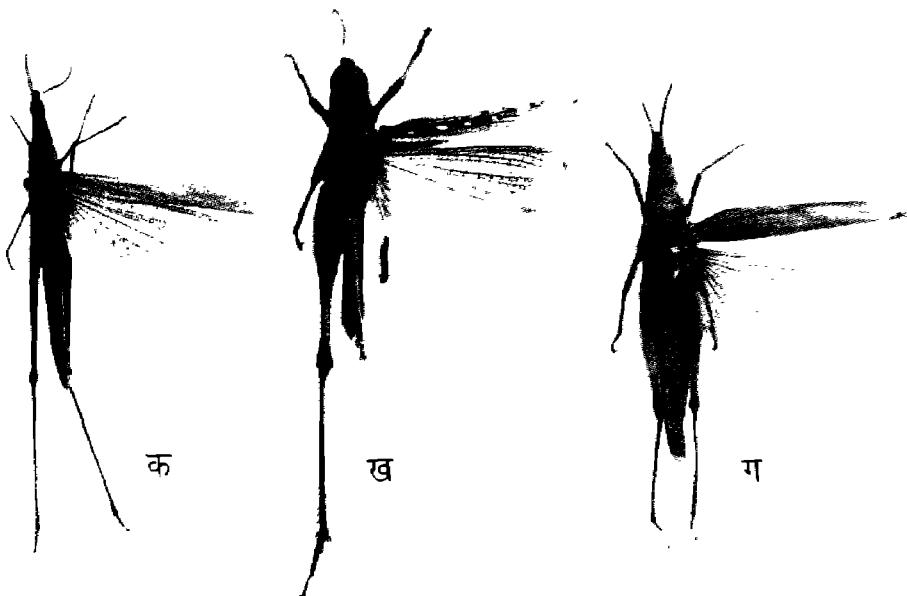
प्लेट-V कुछ सामान्य टिड्डे – (क) *एक्रिडा टूरिटा* (ख) *कैटेन्टॉप्स डोमीनोस* (ग) *टेक्टोमॉर्फा क्रेनुलेटा*
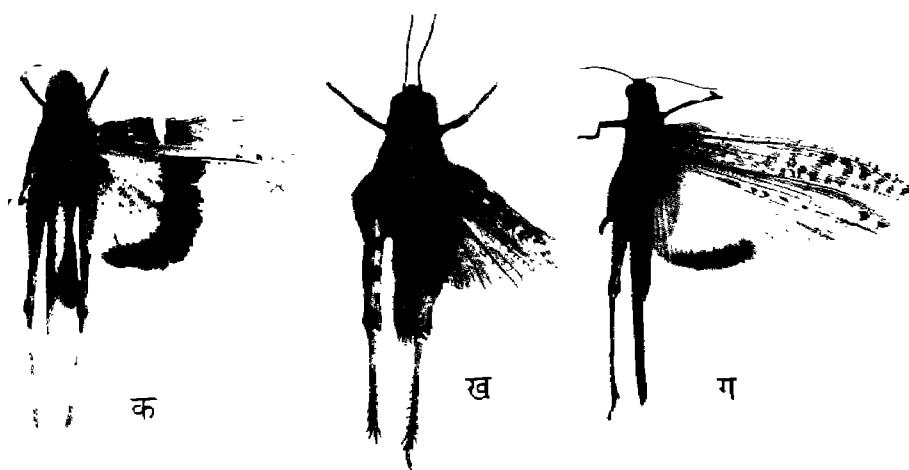
प्लैट-VI कुछ सामान्य टिड्डे – (क) *गेस्ट्रीमार्गस मॅरेटस*, (ख) *आर्थाकैन्थेक्रिस ईजिप्शिया* और (ग) *क्लिओबोरा क्रैसा*
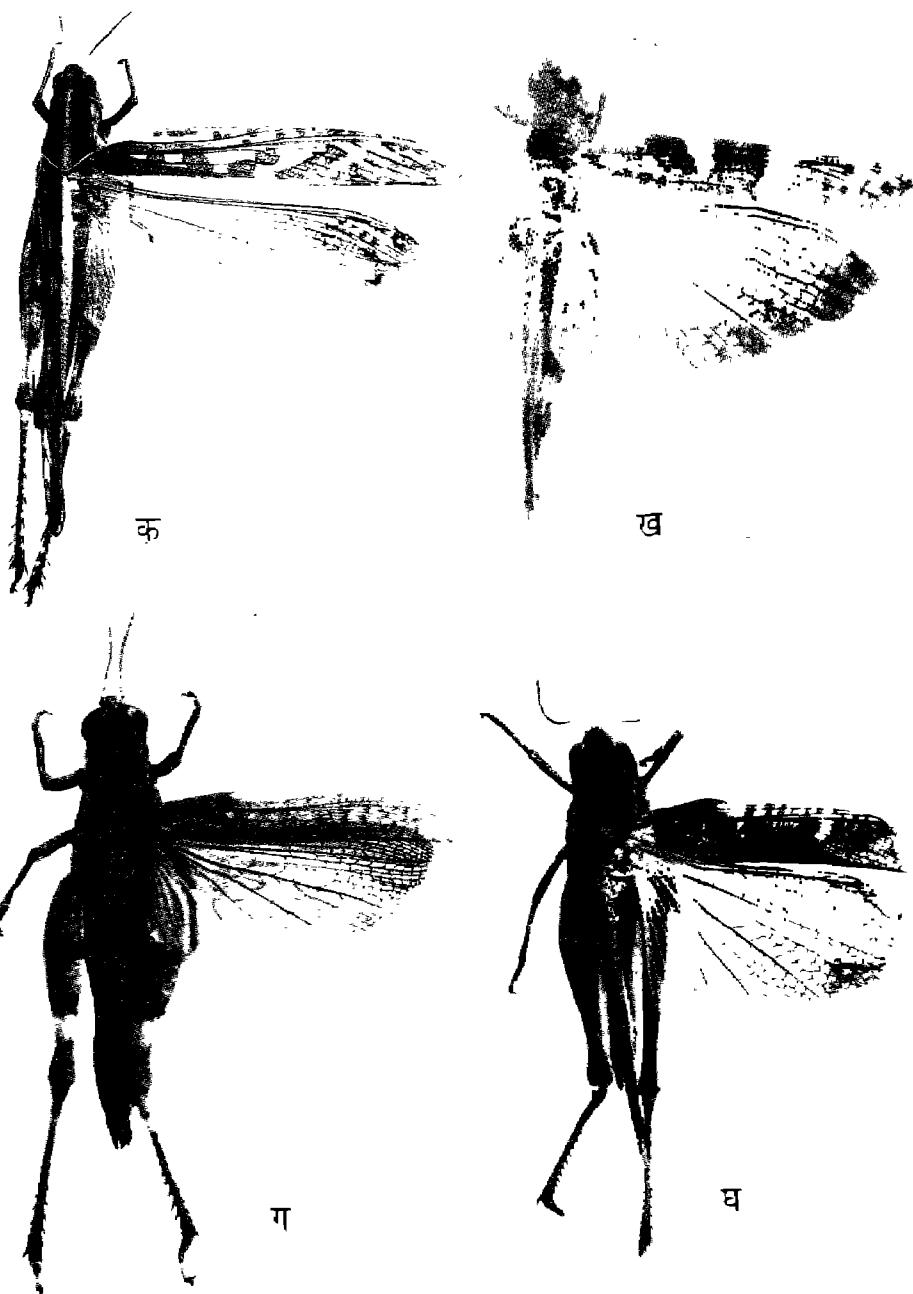
प्लेट-VII कुछ सामान्य टिड्डे– (क) *एनाक्रिडियम फ्लेवेसियस* (ख) *एओलोपस टैमुलस* (ग) *डिटोप्टर्निस जेब्राटा* (घ) *जीनोकैटोन्टॉप्स ह्यूमिलिस*
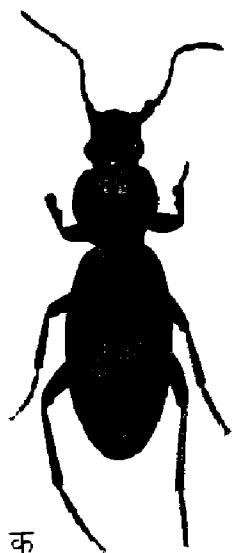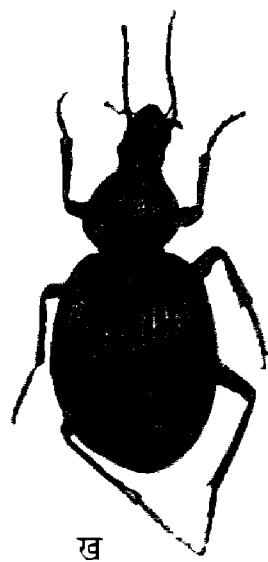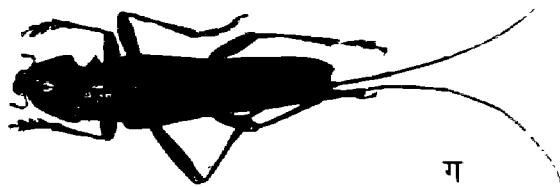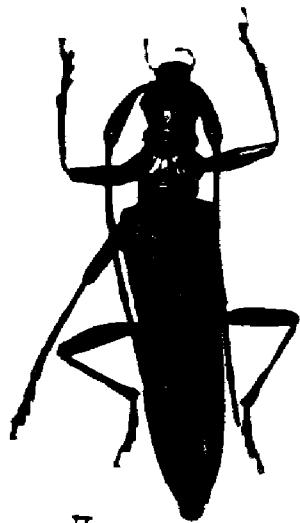
प्लेट-VIII कुछ सामान्य भृंग – बाएं से-
(क) एक कैराबिड – बेम्बेडियॉन
(ख) एक अन्य कैराबिड भृंग (ग) दो दीर्घ शृंगी कैरेम्ब्रीसिड भृंग (घ) सामान्य धातु जैसे हरे रंग वाला भृंग, इलेटरिडी

प्लेट-IX सामान्य गोलियथ भृंग
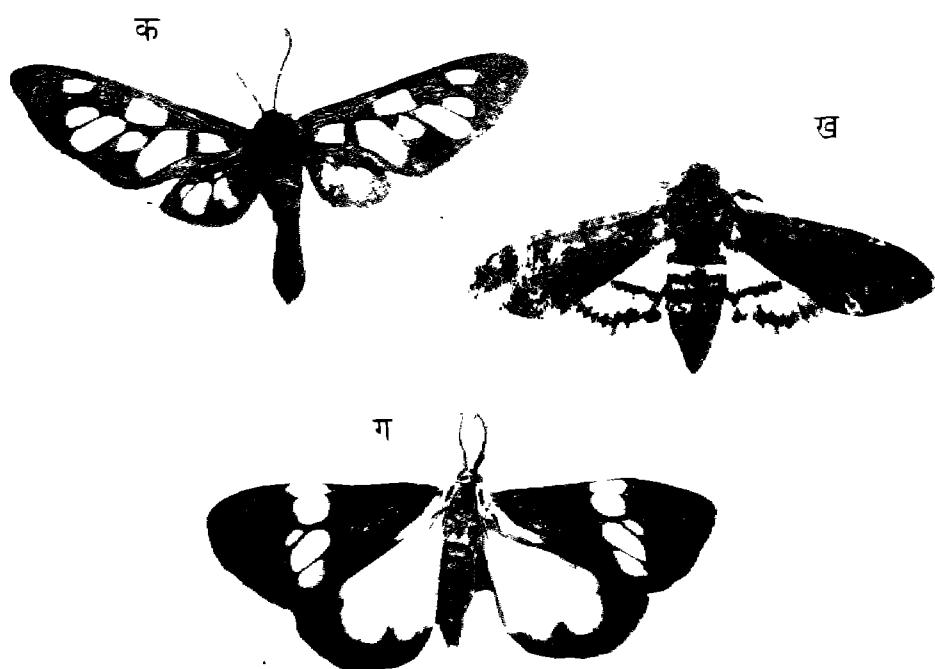
प्लेट-X (क) कुछ सामान्य शलभ—सिन्टोमिड भृंग (ख) एकेरॉन्टिया स्टाइक्स - सामान्य स्फिन्गिड या बाज-भृंग जिसका लोकप्रिय नाम डेथस्हेड (मृत्यु-शीर्ष) भृंग है; (ग) *एजिइरा वेनुला।* बाहर से शलभ भी तितलियों जैसे ही दिखाई देते हैं लेकिन इनकी शृंगिकाएं शाखित होती हैं जबकि तितलियों की नहीं
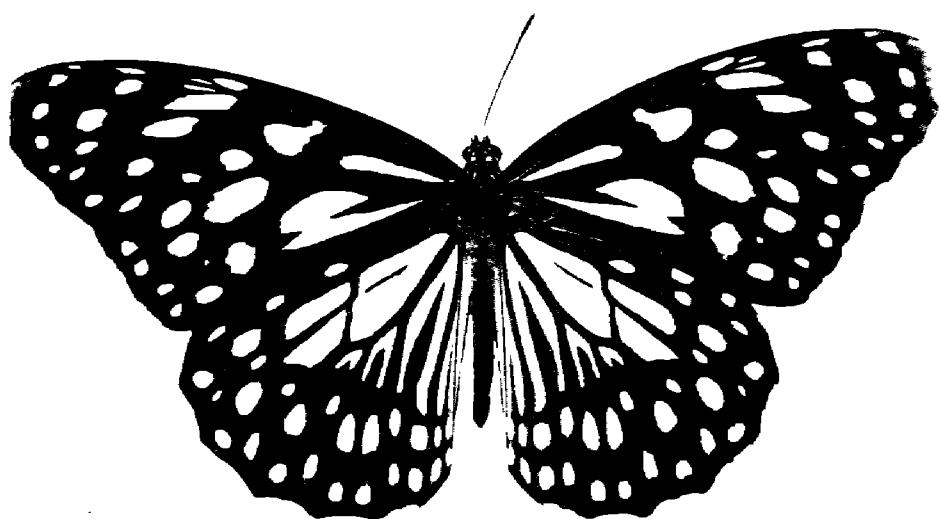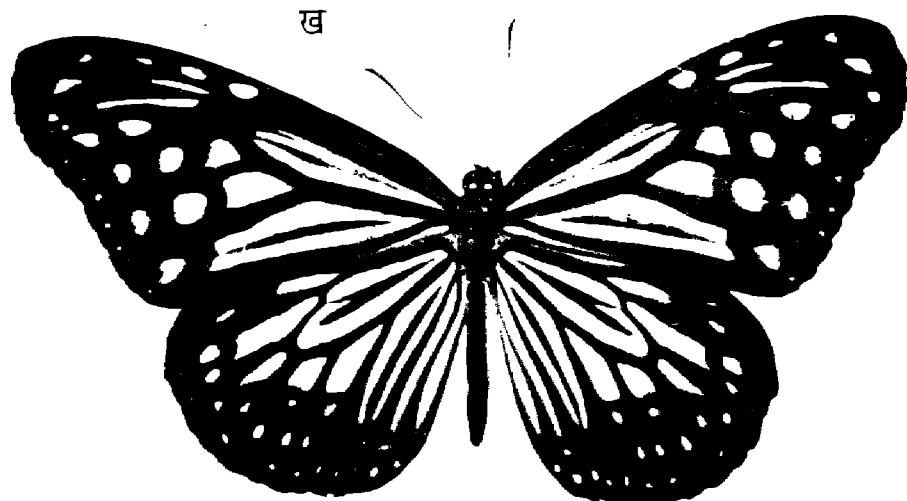
प्लेट-XI (क) *डैनोस लिम्निएस;* (ख) *डैनोस नीलग्रिएन्सिस*
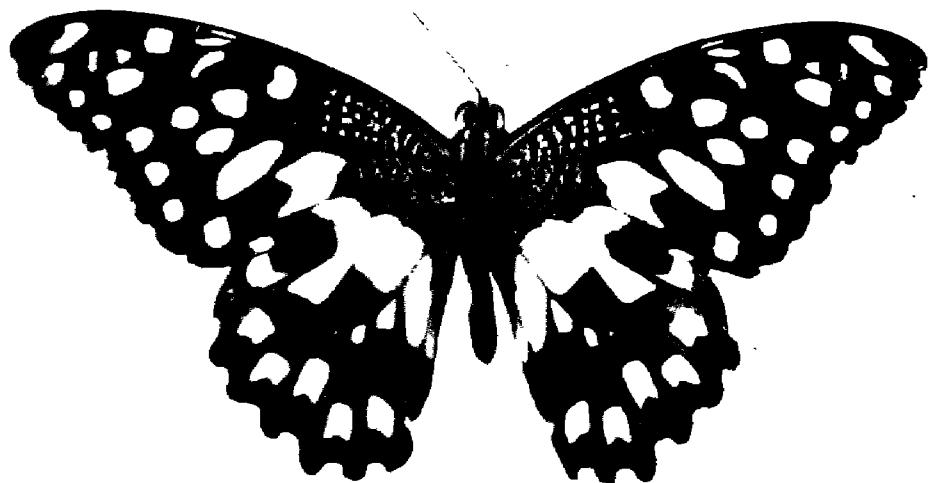
प्लेट-XII (क) *यूप्लीआ कोर कोर* (ख) *पैपिलियो डिमोलियस डिमोलियस*

प्लेट-XIII (क) *ट्राइडीज हेलेना मेनॉस* नर (ख) *मादा*
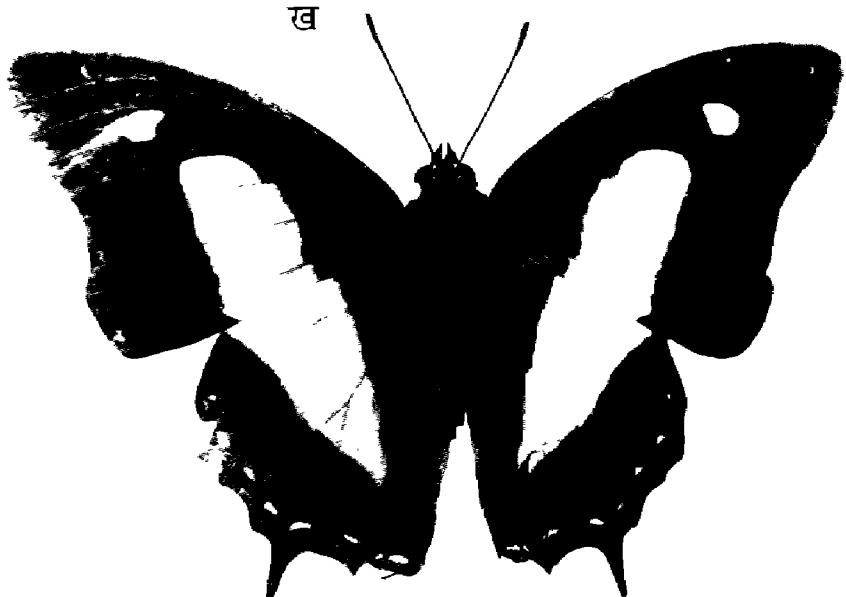
प्लेट-XIV (क) *ग्रेफियम सर्पेडॉन* (ख) *एरीबीया एथेमस*
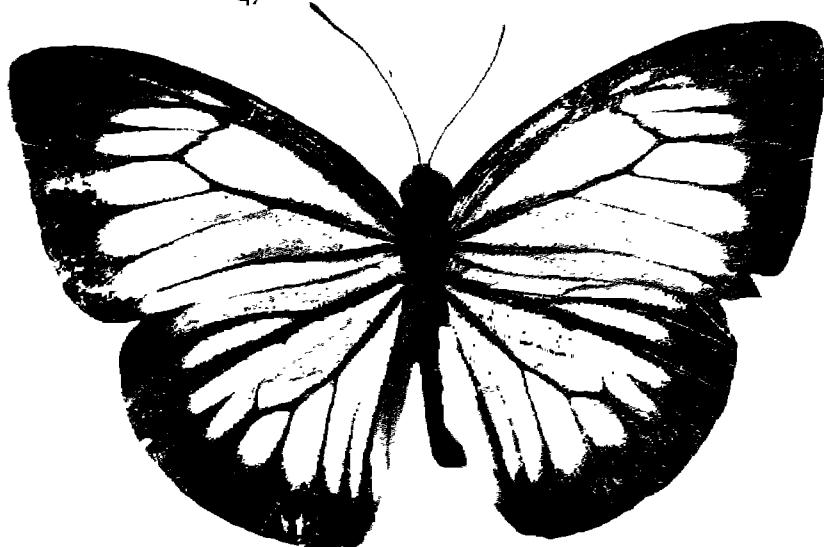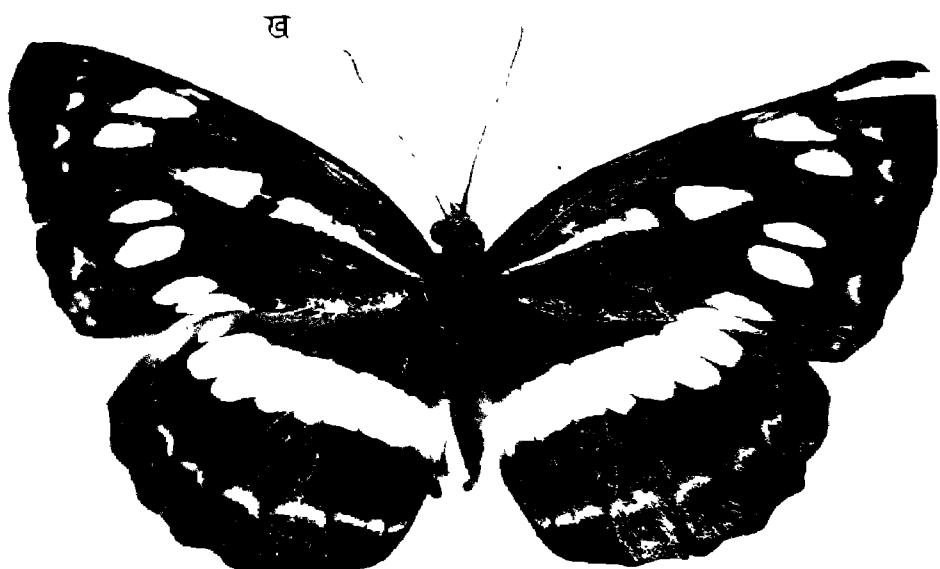
प्लेट-XV (क) *वैलरिया वैलरिया* (ख) *नेप्टिस हायलस*
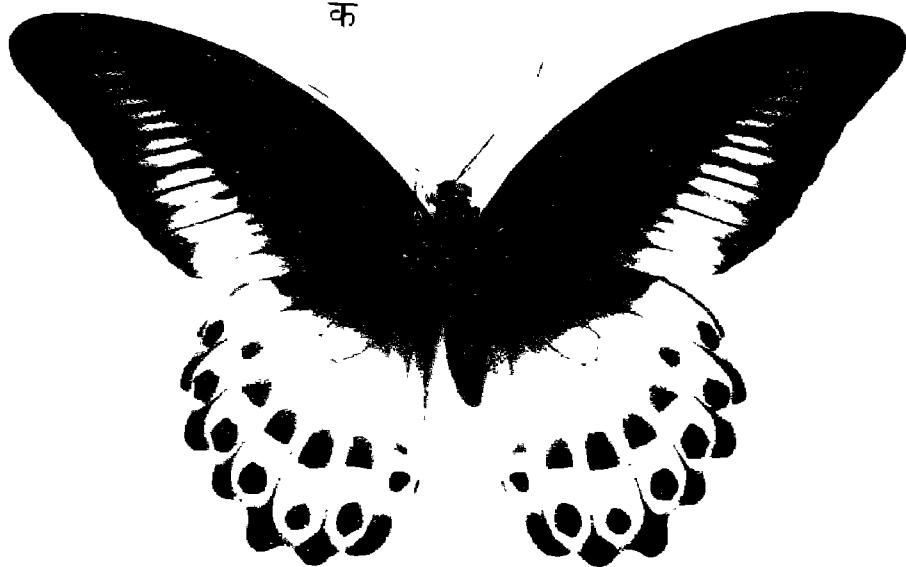
प्लेट-XVI (क) *पैपिलियो पॉलीमेन्स्टर पॉलीमेस्टर* (ख) *पैपिलियो क्राइनो*
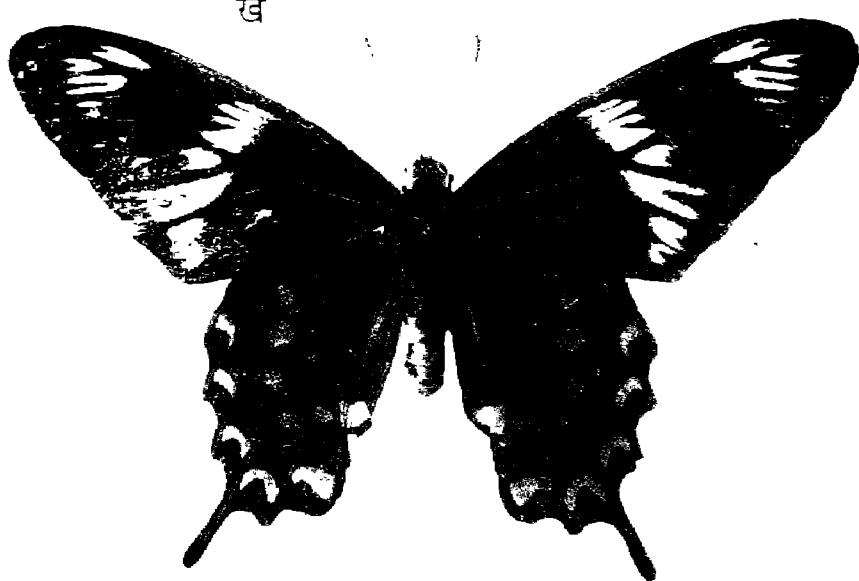
प्लेट-XVII (क) *पॉलीडोरस एरिस्टोलोची* (ख) *पॉलीडोरस हेक्टॉर*

क

ख
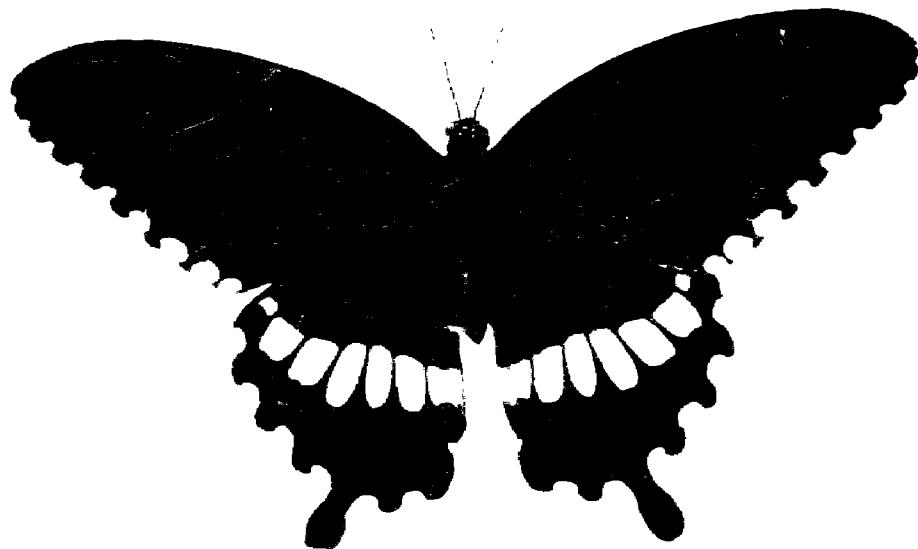
प्लेटर-XVIII (क) *पैपिलियो पॉलीटीज रोमुलस* (ख) *पैपिलियो हेलेना हेलेना*
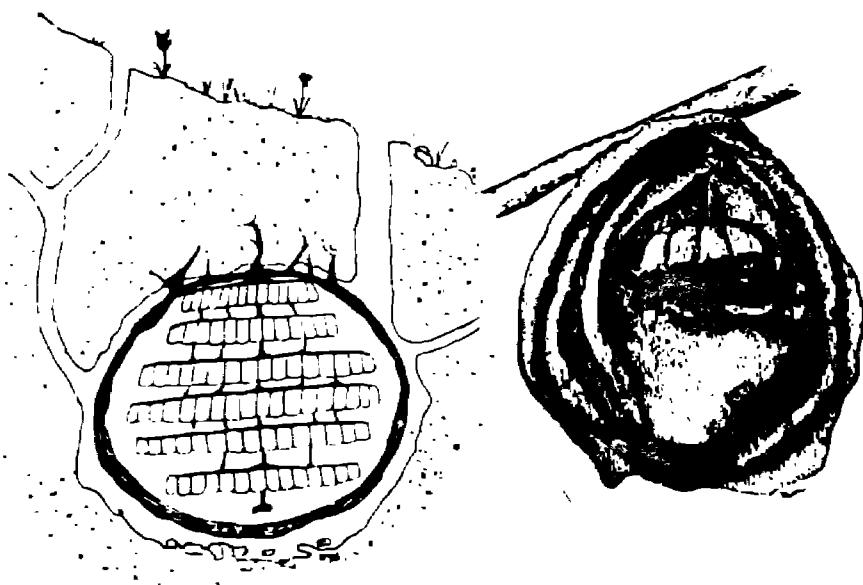
चित्र 72. **वेस्पा** का कागज नीड़। बायीं ओर भूमिगत कक्ष में नीड़ की आरेखी काट दिखाई गई है। षट्भुजीय कोष्ठिकाओं के कागज-छत्ते जो स्तरों में एक के नीचे एक व्यवस्थित हैं। ये और भी स्थूल कागज लुगदी के मोटे आवरण से ढके हुए हैं। दायीं ओर एक टहनी पर बना हुआ एक नया नीड़ जिसमें पहले कुछ कोष्ठिकाएं रानी बर्र द्वारा बनाई गई हैं और चार हुंडों में बंद हैं।

यह जानने के लिए आपको उसे कार्यरत देखना होगा। कार्य संपन्न हो जाने तक वह एक भी क्षण नहीं गंवाती और न विश्राम ही करती है।

इमारत निर्माण द्वारा नीड़ : नीड़-निर्माण के लिए विभिन्न निर्माण सामग्री तलाशते हैं और पहले से ही सावधानीपूर्वक सर्वेक्षण किए गए, चयन किए गए और तैयार किए गए निर्माण स्थल तक उस सामग्री को ढोते हैं। निर्माण सामग्री पास ही सरलता से उपलब्ध हो सकती है या फिर यह भी हो सकता है कि इसे बहुत दूर से लाना पड़े। *सीलीफ्रॉन, रिन्कियम* और *यूमेनीज* बर्र निर्भीक होकर अपने शाव-नीड़/अंड-नीड़ हमारे कमरों में बना लेते हैं। उनके शाव-नीड़ मृत्तिका यानी मटियारी मिट्टी से बने होते हैं। मादा बर्र एक किलोमीटर की दूरी से नम मृत्तिका या चिकनी मिट्टी की गुटिकाएं[1] लाती है। अगर मृत्तिका पहले से ही पर्याप्त गीली न हो तो पहले वह अपने मुंह में पानी लाती है, मृत्तिका के ऊपर डालती है और अपने शक्तिशाली जबड़ों से उपयुक्त गुटिकाएं खोदती है। नीड़-निर्माण के काम में लाई जाने वाली सामग्री की सूची अंतहीन है : विष्ठा-गुटिकाएं, हरी और सूखी

1. गुटिकाएं : Pellets

पत्तियां, छड़ियां, मृत्तिका, गोलियां, चोड़-पत्तियां, कपास, पादप-रोम आदि। शाव-नीड़ों अथवा अंड-नीड़ों की भीतरी सजावट और टेपिस्ट्री के लिए पत्तियों के काटे गए टुकड़े व्यापक रूप से काम में लाए जाते हैं। उदाहरण के लिए सामान्य पर्ण-कर्तक मक्खियां *सिरेटिना*, और *मेघाकाइली* आश्चर्यजनक तेजी से गुलाब, बौहिनिया, अरहर और अन्य पौधों के एकदम गोल और एक समान बड़े बड़े टुकड़े काटती हैं। ये टुकड़े जो प्रायः स्वयं मक्खी से छह या सात गुना बड़े होते हैं, उड़ान के दौरान नीड़ में ले जाते समय टांगों के बीच झूलते रहते हैं। पहले तीन या चार टुकड़ों को आपस में जोड़कर एक बाहरी आवरण तैयार किया जाता है जो नीड़ गुहिका[1] के भीतरी भाग का अस्तर होता है। इसमें पत्तियों के टुकड़ों की दो से लेकर पांच तक क्रमिक परतें जोड़ी जाती हैं। टुकड़ों के सीमांत बड़े ढंग से अतिव्याप्त[2] होते हैं और कुशलता से लपेटे होते हैं ताकि वह खुल न जाएं। इस प्रकार जैसे ही एक कोष्ठिका बनाकर तैयार कर दी जाती है वैसे ही मक्खी इसे पराग और शहद के मिश्रण से लबालब भर देती है और इस मिश्रण के ऊपर अंडे देती है। तब कोष्ठिका को पत्तियों के ऐसे टुकड़ों से सील कर दिया जाता है जो एकदम कोष्ठिका-द्वार[3] के व्यास के बराबर काटे जाते हैं। इन टुकड़ों की संख्या प्रायः आठ तक होती है। इस ढक्कन के ऊपर दूसरी कोष्ठिका और फिर तीसरी बनाई जाती है और ऐसा तब तक किया जाता है जब तक कि लगभग एक दर्जन कोष्ठिकाएं निर्मित नहीं हो जातीं (चित्र 71)।
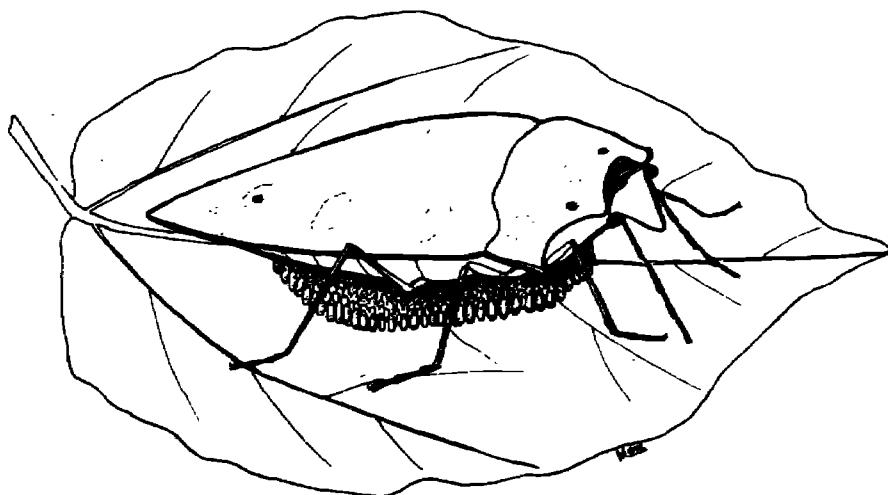
चित्र 73—मादा पेन्टाटोमिड बग, *कैन्टाओ ऑसीलेटा* पत्ती पर दिए गए अपने अंडों को से रही है।

1. नीड़ गुहिका : Nest cavity
2. अतिव्याप्त : Overlapping
3. कोष्ठिका-द्वार : Cell opening

एकल बर्र *ट्राइपोजाइलॉन* का शाव-नीड़ एक विभाजित मृत्तिका नलिका होती है जो लगभग 10 से. मी. लंबी और 2 से.मी. चौड़ी होती है। मादा बर्र मृत्तिका का एक गोला लाती है और बढ़ी नलिका के भीतर रेंग जाती है तथा मृत्तिका को अंदर की ओर से बाहरी घेरे पर लगा देती है। ऐसा करने के साथ साथ वह मृत्तिका के गोले को गोल गोल लुढ़काती रहती है। मृत्तिका चारों ओर एक समान रूप से लगाई जाती है और नलिका धीरे धीरे लंबी होती रहती है। अंत में इसे मृत्तिका के अनियमित लेप से ढक दिया जाता है ताकि निर्माण का असली आकार छिपा रहे।

अंड-नीड़ अथवा शाव-नीड़ निर्माताओं में शायद सामान्य राजमिस्त्री बर्र, *यूमेनीज* सबसे ज्यादा जाना-पहचाना है। मादा बर्र मृत्तिका के अनेक घटाकार कोष्ठिकाओं का समूह या संकुल (कॉम्प्लेक्स) बनाती है। भावी कोष्ठिका की भू योजना बनाने के लिए मादा नम मृत्तिका की गुटिकाएं लाती है और छांटी गई जमीन पर उसे पतले वलय के चौड़े वृत्त अथवा चक्र के रूप में फैला देती है। अधिकाधिक गुटिकाएं लाई जाती हैं और आपकी आंखों के सामने एक मेहराबी वृत्ताकार दीवार खड़ी होती है। ऐसा तब तक होता रहता है जब तक वृत्ताकार मुंह वाला शुद्ध ज्यामितीय सुंदर घट न बन जाए। इसके बाद मादा एक सूक्ष्म धागे से अंडे को घट की छत से लटका देती है और भावी लार्वे के खाने के लिए हरी इल्लियों के शिकार को निकल जाती है। घट के सुव्यवस्थित हो जाने पर उसके घेरे को तोड़कर अलग कर देती है और इस तरह जो मिट्टी मिलती है उससे घट का मुंह बंद कर देती है। उसके बाद दूसरे घट का निर्माण कार्य आरंभ हो जाता है। मकड़ी का शिकार करने वाली बर्र *सीलीप्रान* एक-दूसरे की बगल में रखी गई लगभग बारह दीर्घित पंक-कोष्ठिकाएं बनाती है। कुम्हार बर्र, *रिन्कियम* लगभग बीस अंडाकार घटों का एक समूह[1] बनाती है। ये घट एक-दूसरे की बगल में व्यवस्थित होते हैं और सभी घटों के सिर एक ही तरफ होते हैं। पूरे समूह के बाहरी भाग पर चिपचिपे गोंद का आलेप किया जाता है। घट बनाने में मादा को केवल तीन घंटे लगते हैं लेकिन इसकी सतह पर बड़ी चमकदार गोलिकाओं में रिसने वाले और चिपचिपे गोंद की मोटी परत का लेप करने में उसे बहुत परिश्रम करना पड़ता है और पूरे तीन दिन लग जाते हैं। हर सुबह मादा पेड़ों में जाती है और रिसने वाले, लसलसे और चिपचिपे श्लेष्मक की गोलिकाएं लेकर लौटती है तथा अंधेरा घिर आने तक बिना रुके लेप करती रहती है। गोंद एकत्रित करना और उसे काम में लाते समय संभालना विशेषरूप से थका देने वाला और गंदा काम है लेकिन वह न तो कभी थकान महसूस करती है और न ही अपने आपको गंदा करती है। इतने से ही संतोष न करके वह यहां-वहां विशेषरूप से बड़ी गोलिकाएं चिपका देती है जो घुसपैठिए के लिए बहुत बड़ा आकर्षण है। इन गोलिकाओं से आकर्षित होकर वह जैसे ही नीचे झपट्टा मारता

1. समूह : Complex
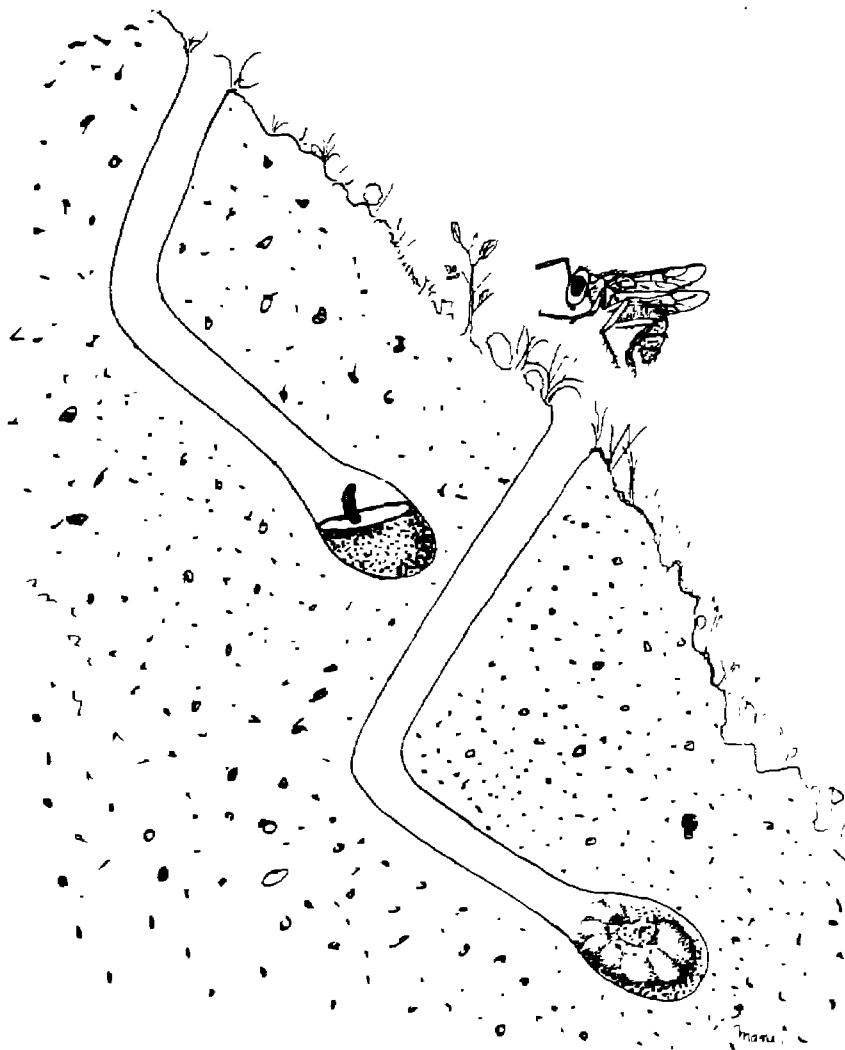
चित्र 74. भूमि में नीड़ बनाने वाली एकल मक्खी द्वारा पंक-शिखरों में जमीन के नीचे खोदकर बनाई गई दो अंड-कोष्ठिकाएं। प्रवेश के तले पर एक तीखे मोड़ वाली गैलरी है जो अंत में बने हुए एक बड़े अंडाकार कक्ष तक जाती है। इस कक्ष में शहद और लार्वा भरा होता है।

है वैसे ही अपने आपको मृत्यु के मुंह में फंसा पाता है जिससे निकलना नहीं हो सकता। सबसे असाधारण बात तो यह है कि सारा गोंद केवल बाहरी तरफ ही होता है और कभी भी घट के अंदर नहीं ले जाया जाता। गोंद को सूखने और कठोर बनने में लंबा समय लगता है और सप्ताहों तक बल्कि महीनों तक भी गीला और चिपचिपा होने के कारण यह उन परजीवियों के लिए अत्यधिक प्रभावी मृत्यु-पाश है जो बुरी नीयत से घट को छूने

का साहस करते हैं। जब तक नई निकली तरुण बर्र का घट को फोड़कर बाहर निकलने का समय आता है तब तक गोंद सूख चुका होता है।

एक समान पैटर्न कैसे बनाए जाते हैं? बिना किसी पूर्व अनुभव या प्रशिक्षण के मादा वास्तुकला संबंधी इतनी सारी समस्याओं को कैसे सुलझाती है? प्रतिष्ठित वैज्ञानिक नीड़ निर्माण का कारण जन्मजात क्षमता को मानते हैं लेकिन इस बात के असंदिग्ध प्रमाण हैं कि मादा वास्तव में ऊंचाई तो स्वयं अपने शरीर की लंबाई से नापती है और व्यास को अपनी शृंगिकाओं से नापती है। वह पक्के तौर पर एक निश्चित पैटर्न के अनुसार काम करती है जिसकी स्पष्ट कल्पना उसे शुरू से ही होती है। पंक कोष्ठिकाएं बनाने से पूर्व वह पंक की नीची डौलें बनाती है जिससे सभी कोष्ठिकाओं की नींव का पता चल सके। निर्माण की ऊंचाई का आकलन करने के लिए वह अपने शरीर को पूरी तरह से विस्तारित करके कोष्ठिका या घट में धकेलती है। जब उसकी शृंगिकाओं के सिरे तली को और उसके उदर का सिरा उठती दीवार के शीर्ष को छू जाता है तो वह समझ जाती है कि सही साइज की दीवार बन गई है तथा उसकी ऊंचाई और बढ़ाना फौरन बंद कर देती है। वास्तविक निर्माण मोहक रूप से नियमित और लयबद्ध होता है। मादा अपने शरीर को लोलक[1] की तरह दाएं और बाएं घुमाते हुए पंक गुटिका को पहले एक तरफ और फिर दूसरी तरफ लगाती है। कुछ समय तक वह बाहर से ही काम करती है लकिन जब दीवार को एक गुंबद के रूप में गोल मोड़ना होता है तब वह काम को पूरा करने के लिए अंदर घुस जाती है। वह नीड़ को एकदम से अपने शरीर के आकार का बनाती है क्योंकि यह संभावना नहीं है कि उसके बच्चे उससे बड़े आकार के हों।

तरुण के लिए भोजन की व्यवस्था

अंडों और भावी लार्वों की सुरक्षा के लिए पूर्वोपाय यानी एहतियाती उपाय करने के अतिरिक्त अनेक कीट नए नए निकले उस तरुण लार्वा के लिए खाने की व्यवस्था करने का कष्ट भी उठाते हैं जो कुछ समय के लिए खाने की तलाश में निकलने में असमर्थ है। बहुधा मादा स्वयं आवश्यक खाना तैयार करती है या लार्वा जिस विशेष खाद्य पौधे को खायेंगे उसकी खेती करती और संग्रह करती है।

भावी तरुणों के लिए भोजन की तलाश, उसके चयन, संचयन, परिवहन और भंडारण में बहुत परिश्रम लगता है। जो भोज्य पदार्थ एकत्रित और भंडारित किया जाता है उसमें ताजा सब्जियां, कवक, क्षय हो रही सब्जियां, अनेक शाकाहारियों की विष्ठा, परागकण, शहद, सड़ा-गला मांस और अनेक प्रकार के ताजा मारे गए या स्तंभित किए गए कीट, मकड़ियां तथा अन्य शिकार प्राणी हैं। अनेक एकल और सामाजिक बर्र अनेक किस्म की

1. लोलक : Pendulum
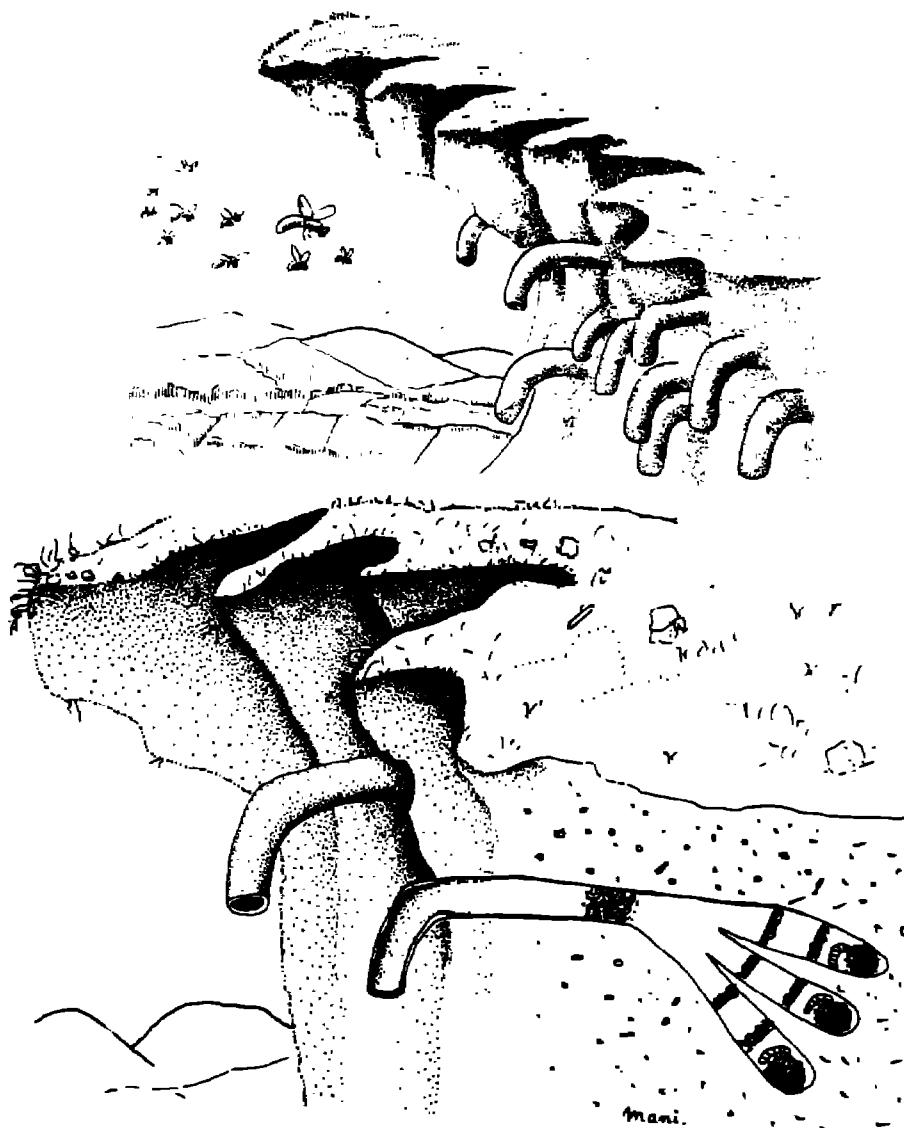
चित्र 75. प्रलंबी पंक शिखरों में बनाए गए कुछ खनक-बर्रों के शाव-नीड़। वर्षा और शत्रुओं के आक्रमण से प्रवेश द्वार की रक्षा के लिए पंक की एक नीचे की ओर मुड़ी हुई चिमनी के आकार की बनाई गई नलिका जो स्पष्ट रूप से बाहर निकली होती है। नीचे एक नीड़ का परिच्छेदी दृश्य दिया गया है। इसमे अंड-कोष्ठिकाओं के गुच्छे दिखाए गए हैं जिसमें खाने की सामग्री और परिवर्धी लार्वे हैं। मुख्य प्रवेश-गैलरी से प्रत्येक कोष्ठिका विभाजनों और प्लगों (डाट) द्वारा रक्षित होती है।

मकड़ियां, टिड्डों, झींगुरों, तिलचट्टों, भृंगों के लार्वे और प्यूपे, इल्लियां, मक्खियां, मत्कुण, चेलमक्खी लार्वे, मधुमक्खियां और दूसरे कीट शामिल हैं। *सीलीफ्रान* बर्र मकड़ियों विशेषकर

जमीन में नीड़ बनाने वाली बड़ी मकड़ियों का, *नोटोजेनिया* बर्र टिड्डों का और *ऐम्पुलेक्स* तिलचट्टों का भंडार जमा रखते हैं।

कुछ कीट स्वयं अधिक परिश्रम किए बिना ही भावी तरुण के लिए भोजन उपलब्ध कराने की युक्ति सीख गए हैं। मानव तुंदमक्खी[1] के लार्वे मनुष्य और कुछ अन्य नियततापी प्राणियों पर आक्रमण करते हैं लेकिन मादा उन पर अंडे नहीं देती। इसके बजाय वह एक मादा मच्छर को पकड़ लेती है और उसके ऊपर लगभग तीस या चालीस अंडे देकर चुपके से मच्छर को छोड़ देती है। जब मच्छर किसी मनुष्य या अन्य उपर्युक्त प्राणी पर बैठ जाता है तो उनके शरीर की ऊष्मा से अंडे स्फुटित हो जाते हैं। अंडों से नव स्फुटित लार्वे मच्छर द्वारा रक्त पीने के लिए मनुष्य या अन्य प्राणी के शरीर में बनाये गये घाव में फुर्ती से अंदर घुस जाते हैं। *मिल्टोग्रैमा* एक मक्खी है जिसके लार्वा प्रौढ़ घरेलू मक्खियों पर अशन करते हैं। इन घरेलू मक्खियों को खनक-बर्र, *बीम्बेक्स* बतौर भोजन अपने नीड़ में रखती है। चालाक *मिल्टोग्रैमा* मादा एक सुरक्षित दूरी पर जमकर बैठ जाती है और अपनी खतरनाक दुश्मन *बीम्बेक्स* मादा को अपना नीड़ पूरा करने और भंडारण के लिए पकड़ी घरेलू मक्खी को लाते देखती रहती है। *बीम्बेक्स* मादा गतिहीन की हुई घरेलू मक्खी को अपनी टांगों से पीछे की ओर पकड़े रखकर अपना सिर बिल में घुसेड़ती है। यही तो वह अवसर है जिसका चालाक *मिल्टोग्रैमा* धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी। वह क्षणमात्र में *बीम्बेक्स* द्वारा पकड़ी हुई निर्जीव घरेलू मक्खी के शरीर पर अपने अंडे या जरायुजतः[2] निकले हुए लार्वे डाल देती है। अपने पीछे घटी घटना से अनजान *बीम्बेक्स* अब मक्खी को नीड़ में ले जाती है। *मिल्टोग्रैमा* मादा अपने बच्चों के कल्याण के लिए अपने सबसे कट्टर शत्रु की सेवाओं का उपयोग करती है। आप इसे मात्र ढिठाई कहकर नहीं टाल सकते। *बीम्बेक्स* मादा द्वारा *बीम्बेक्स* तरुण के लिए लाई गई घरेलू मक्खी को *मिल्टोग्रैमा* का तरुण चट कर जाता है।

अंडे सेना और परिचर्या

न केवल सामाजिक कीटों में अपितु एकल जातियों में भी हमें ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं जिनमें मादा अपने अंडों और अभी हाल में ही निकले बच्चों के साथ रहना जारी रखती है। बच्चों की देखभाल करती है, अंडों को सेती है, उनकी सफाई करती है, शत्रुओं से उन्हें बचाती है और तरुण लार्वों को व्यक्तिगत रूप से खिलाती पिलाती है। प्रौढ़ संतति के आगमन के बाद भी उनका पारिवारिक जीवन चलता रहता है। सेने वाली मादा न केवल अपने अंडों के गुच्छे साथ रखती है बल्कि अक्सर जहां कहीं भी जाती है उन्हें अपने साथ ले जाती है। कुछ पेन्टाटोमिड मत्कुणें अपने अंडे पत्तियों और टहनियों पर देती हैं और

1. तुंदमक्खी : Botfly
2. जरायुजतः : Virparously

उनकी रखवाली करती हैं। किसी घुसपैठिए से उनका बचाव सावधानीपूर्वक करती हैं। *कैन्टाओ ऑसीलेटा* और *टेक्टाकोरिस* दो सामान्य भारतीय मत्कुण हैं जो अपने अंडों को सेती हैं और ताक-झांक करने वाली आंखों से उन्हें पूरी तरह छिपाए रखती हैं। वे तभी विदा होती हैं जब अंडों से सभी तरुण निकल आते हैं और भोजन के लिए तितर-बितर हो जाते हैं। मादा का ध्यान नए निकले लार्वों की तरफ भी लगा रहता है। *क्राइसोमेलिड* भृंग, *फाइटोडेक्टा* पत्तियों पर लगभग पचास अंडे देती है और चौकीदारी में उनके ऊपर खड़ी रहती है। तरुण लार्वे जल्दी ही निकल आते हैं और एक तरह से अर्ध-यूथी[1] जीवन बिताते हुए साथ साथ अशन करते हैं और हर समय अपनी मां के पास बने रहते हैं। मादा अपने स्वयं के खाने के लिए भी नहीं जाती। वह अपने स्वयं के लार्वों और दूसरी मादाओं के लार्वों में कोई भेद नहीं करती बल्कि जो भी उसके पास आ जाता है उसकी रक्षा और देखभाल करती है।

अनेक कीट-मां इस सीमा तक जाती हैं कि वे अपने अनमोल अंडे हमेशा अपने साथ ले जाती हैं। तिलचट्टों में भी यह विचित्र मातृ-चिंता देखने में आती है। एक असाधारण दक्षिण भारतीय जलीय तिलचट्टे की मादा जरायुज होती है और अनेक तरुण तिलचट्टों को जन्म देती है। वे पैदा होते ही झटपट अपनी मां की पीठ पर चढ़ जाते हैं और वहां उसके पंखों के नीचे सुरक्षित रहते हैं। तरुण तिलचट्टे एक या दो निर्मोक के बाद जब स्वयं अपना बचाव कर सकने लायक बन जाते हैं तभी मां को छोड़ते हैं। सामान्य छछुंद झींगुर *ग्राइलोटैल्पा* एक भूमिगत शिशुपालन कक्ष[2] बनाती है जिसमें वह अपने अंडे देती है। वह उन्हें सेती है, एक एक करके जब तब उन्हें उठाती है, चाटकर साफ करती है, अपनी श्रृंगिकाओं के द्वारा उनकी उपस्थिति का अनुभव करती है और एक बंद गुच्छे में उन्हें स्नेह से वापस जमीन पर रख देती है। जब तक सब अंडे स्फुटित नहीं हो जाते उसका ध्यान उधर ही बना रहता है। तरुण लार्वे अब एक-साथ इकट्ठे होकर मां के नीचे रेंग आते हैं बिल्कुल उसी तरह जैसे कि चूजे अपनी मुर्गी मां के नीचे रहते हैं। वे खाने की तलाश में तितर-बितर हो जाते हैं लेकिन पेट पूरी तरह भर जाने पर मां के पास लौट आते हैं। मादा कर्णकीट अपने अंडों के लिए सूराख खोदती है या अपने स्वयं के आवास को बड़ा बना लेती है। जिस क्षण से वह अपने शिशुपालन गृह को बनाना शुरू करती है उसी पल उग्र बन जाती है और जैसे ही अंडे दे चुकती है बड़ी निर्दयता से अपने पति को घर से बाहर निकाल देती है। हमने एक भी ऐसा उदाहरण नहीं देखा जब निरीह पति तत्क्षण तलाक के विरुद्ध अपना बचाव सफलतापूर्वक करता हो। वैसे वह है तलाक के लायक ही क्योंकि उसमें अंडे खाने की ऐसी प्रवृत्ति होती है जिसका कोई इलाज नहीं। उसकी पत्नी को इस घटिया और गंदी आदत का पता है तभी तो पत्नी से विदा लिए बिना ही वह निर्वासित हो जाता

1. अर्ध-यूथी : Semi-gregarious
2. शिशुपालन कक्ष : Nursery chamber

है। मादा अपने अंडों की रखवाली में जुट जाती है, उन्हें सेने बैठ जाती है, एक एक करके उन्हें उठाती है और विसंक्रमित[1] करने के लिए चाट कर साफ करती है। अगर वह अपने अंडों को चाटे नहीं तो उनमें से लार्वे न निकलें। अगर उसे किसी तरह से छेड़ दिया जाए तो अपने अंडों को लेकर किसी दूसरी सुरक्षित जगह चली जाती है। नए निकले तरुण कर्णकीट यूथी होते हैं और हमेशा अपनी मां के आसपास जमा रहते हैं। मां अपनी पीठ के बल लेट जाती है और अपने बच्चों को अपने ऊपर भाग-दौड़ तथा मौज मस्ती करने देती है। अगर कोई लार्वा भटक कर इधर उधर हो जाता है तो वह फौरन उसे अपने मुंह में पकड़ लेती है और वापस बाड़े में ले आती है। पहले कुछ दिनों के दौरान बच्चे अशन स्थल तक अपनी मां के पीछे पीछे जाते हैं और जिस समय वे स्वयं अपनी देखभाल करने में समर्थ बन जाते हैं तब तक मां थककर पूरी तरह चूर हो चुकी होती है और मर जाती है। उसका जीवन पूर्णतः अपने बच्चों के लिए समर्पित होता है।

मां द्वारा तरुण को सीधे ही भरण कराने के उदाहरण भी देखे गए हैं। सबसे अनोखा उदाहरण सेक्सटन भृंग *नेक्रोफोरस* का है। मादा भृंग जमीन पर पड़े हुए मृत चूहों, चिड़ियों या दूसरे छोटे प्राणियों के शवों को जमीन में गाड़ देती है। कब्र खोदने का ढंग विचित्र है। कोई लाश मिल जाने पर जब भृंग कब्र खोदना शुरू करती है तो पहले लाश के नीचे से थोड़ी-सी कीचड़ खुरचती है। अगली टांगें कीचड़ को पीछे की ओर बीच की टांगों (मध्यपाद) तक धकेलती हैं और ये टांगें उसे पिछली टांगों (पश्चपाद) तक धकेलती हैं। अंत में पिछली टांगें शव के नीचे से खोदी गई मिट्टी को बाहर कर देती हैं जिससे शव धीरे धीरे जमीन में धंसता जाता है। भृंग बिना रुके घंटों काम करती रहती है। जिसमें वह शव के चारों ओर घूमती हुई कीचड़ के कण, मैल, बाल और पंख आदि निकालती हुई अंततः उसे जमीन के नीचे दफन कर देती है। उसके बाद वह मुख्य शव-कक्ष के चारों ओर गुहिकाएं खोदती है और उनमें अंडे देती है। वह अंडों की ऊष्मायन अवधि तक और लार्वो के परिवर्धन तक शव-कक्ष में रहती है। अंडे देने के बाद वह शव-कक्ष के छेद को बंद कर देती है। जब अंडों से तरुण लार्वे निकल आते हैं तो मां सड़ रहे शव के ऊपर चढ़ जाती है और मांस खाना शुरू करती है। लेकिन वह अपना पेट नहीं भरती। वह तरुण लार्वो के भरण के लिए खाती है। तरुण लार्वे अब अंड-कक्षों को छोड़कर मुख्य शव-कक्ष में आ जाते हैं और मां के चारों ओर जमा हो जाते हैं। तब एक असाधारण बात होती है : एक तरुण लार्वा मां के नीचे सरक जाता है और मां के काफी खुले हुए जबड़ों के बीच सिर रखकर प्रतीक्षा करता है। मां बेचैन लार्वा के मुंह में पूर्व पचाए गए मांस के रस की चमकीली भूरी बूंदें टपका देती है। मां अपने बढ़ते हुए सदा-भूखे बच्चों के लिए ही अधिकाधिक मांस निगलती है। बच्चों को यह बताने के लिए कि भोजन का समय हो

1. विसंक्रमित : Disinfect

गया है, वह संकेत के रूप में अपनी टांगों से धीमी खुरचने जैसी आवाज भी निकालती है।

पिता भी हाथ बंटाता है

हमेशा ऐसा नहीं है कि पैतृक-रक्षण एकमात्र मां के ही जिम्मे हो। बहुधा पिता भी बच्चों के साथ बैठकर, अंडों को सेने के लिए उन पर बैठकर या दूसरे तरीकों से मां से सहयोग करके उसके काम में हाथ बंटाता है। कभी कभी वह अपनी पत्नी की सहायता के बिना या उससे प्रोत्साहन न मिलने पर सारा काम अकेले करता है। यह भी हो सकता है कि वह अनिच्छुक और गौण भूमिका निभाए और उसका काम खत्म हो जाने पर पत्नी उसको फौरन निकाल बाहर करे। उसके भाग्य पर किसी भी तरह से ईर्ष्या हो ही नहीं सकती। पिता के रूप में वह अपना क़र्तव्य पालन अनिच्छापूर्वक करता है और 'बड़बड़ाता' रहता है। वास्तव में उसकी पत्नी उसे बच्चों की देखभाल के लिए विवश करती है जबकि वह स्वयं सुख की तलाश में या दूसरे नरों के साथ रंगरलियां मनाने बाहर निकल जाती है। निरीह पति अपनी पत्नी के विरुद्ध विद्रोह नहीं करता और अगर करता भी है तो कभी कभार ही। जल नाविक मत्कुण[1] *बेलोस्टोमा* जो सभी टंकियों और धान के खेत में भी बहुत मिलता है, बड़बड़ाते पिता का सबसे दिलचस्प उदाहरण है। उसे अपनी पत्नी के अंडों का पूरा समूह अपनी पीठ पर तब तक ढोना पड़ता है जब तक कि तरुण मत्कुण (बग) निकलकर पानी में कूद न जाएं। मादा बलपूर्वक नर को जकड़ लेती है और उसे अपने अंडों के लिए जीता जागता ऊष्मायित्र[2] और बच्चा-गाड़ी बना देती है। नर को अपनी टांगों के नीचे कसकर पकड़ने के बाद वह उसकी पीठ पर चढ़ जाती है। वह जोरशोर से विरोध करता है और छूटने के लिए जी जान से संघर्ष करता है लेकिन अंत में मादा की श्रेष्ठ शक्ति के सामने हार मान लेता है। तब वह बिना प्रतिरोध किए लटक जाता है, पीठ ऊपर की ओर होती है और टांगें ढीली ढाली लटक जाती हैं। अपने भाग्य से समझौता करके वह भीगी बिल्ली की तरह खिसियाने लगता है।

माता अब शांत भाव से उसकी पीठ पर अंडे देती है और जल्दी सूखने वाली तथा जल्दी कठोर बन जाने वाली जल-सह सीमेंट से उसे मजबूती के साथ चिपका देती है। उसकी पीठ को लगभग पचास अंडों से ढक देने के बाद वह उसे मुक्त कर देती है। स्वाभाविक है कि अंडधारी नर इस बलात दासता को पसंद नहीं करता। वह अपने आपको न्याय देने के लिए दबंग पत्नी द्वारा जबरदस्ती लादे गए अनचाहे बोझ से छुटकारा पाने की जोरदार कोशिश करता है। समय समय पर वह अंडों को हटाने के लिए अपनी टांगें पीठ पर घुमाता है लेकिन उसका प्रयास सफल नहीं हो पाता। बिरले ही ऐसा होता है कि उसे बाहरी किनारे के कुछ अंडों को नीचे गिराने में सफलता मिल जाए और ऐसा हो जाने पर वह बदले की भावना से उन अंडों को सूखा ही निगल जाता है। लेकिन ऐसा लगता है कि उसे यह भान

1. जल नाविक मत्कुण : Water boatman bug 2. ऊष्मायित्र : Incubator
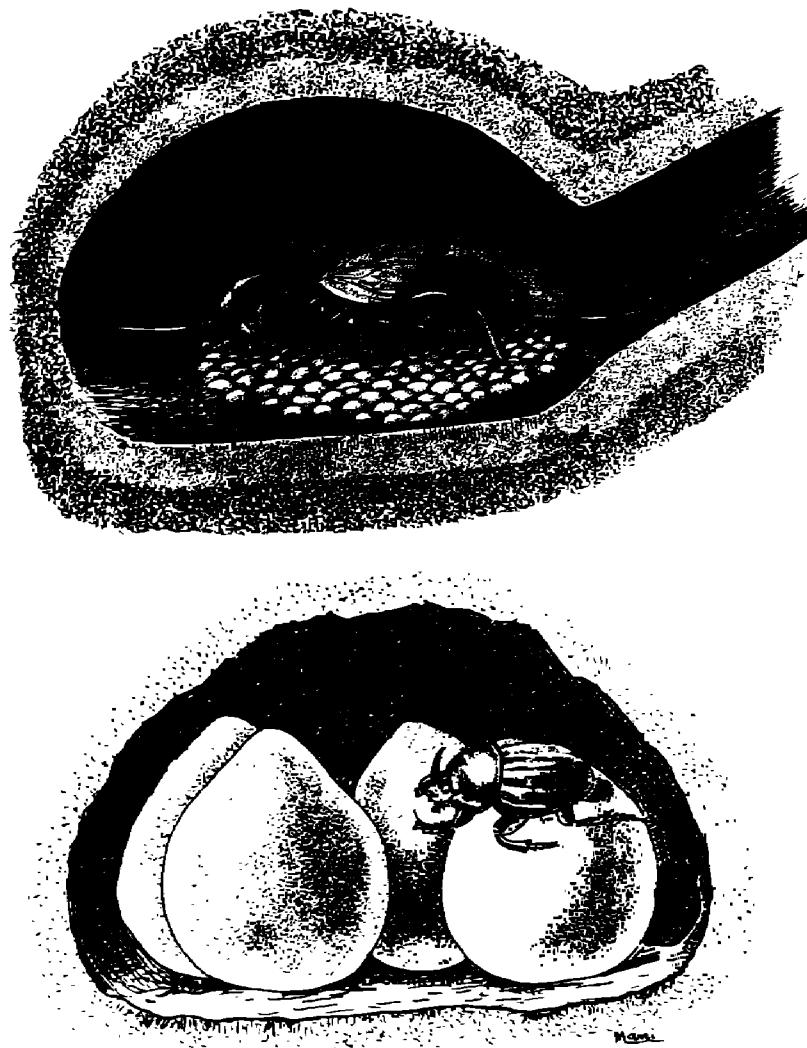
चित्र 76. अपने अनमोल अंडों के साथ दो कीट मादा। ऊपर सामान्य मादा छछुंद *(ग्राइलोटैल्पा)* झींगुर है जो अपने भूमिगत अंड-नीड़ अथवा शाव-नीड़ में अपने अंडों के गुच्छों को से रही है। नीचे एक शमल भृंग यानी गुबरैला अपनी शमल-गेंद की 'अंड-नाशपाती' के साथ जिसके भीतर उसने अपने अंडे दिए हैं। तरुण लार्वा के निकलने तक वह नीड़ में ही रहती है।

है कि जिस चीज का कोई ईलाज ही नहीं उसे सहन करने के अलावा कोई चारा नहीं अतः वह प्रायः शांतभाव से अंडों को लगभग पंद्रह दिन तक लादे रहता है। जब तरुण मत्कुण निकल आते हैं तब नर को पुनः आजादी और प्रतिष्ठा दिला देते हैं। अंडों को कमर पर धारण करके वह अनजाने ही एक बहुत अहम भूमिका निभाता है। ऐसा करके वह अंडों
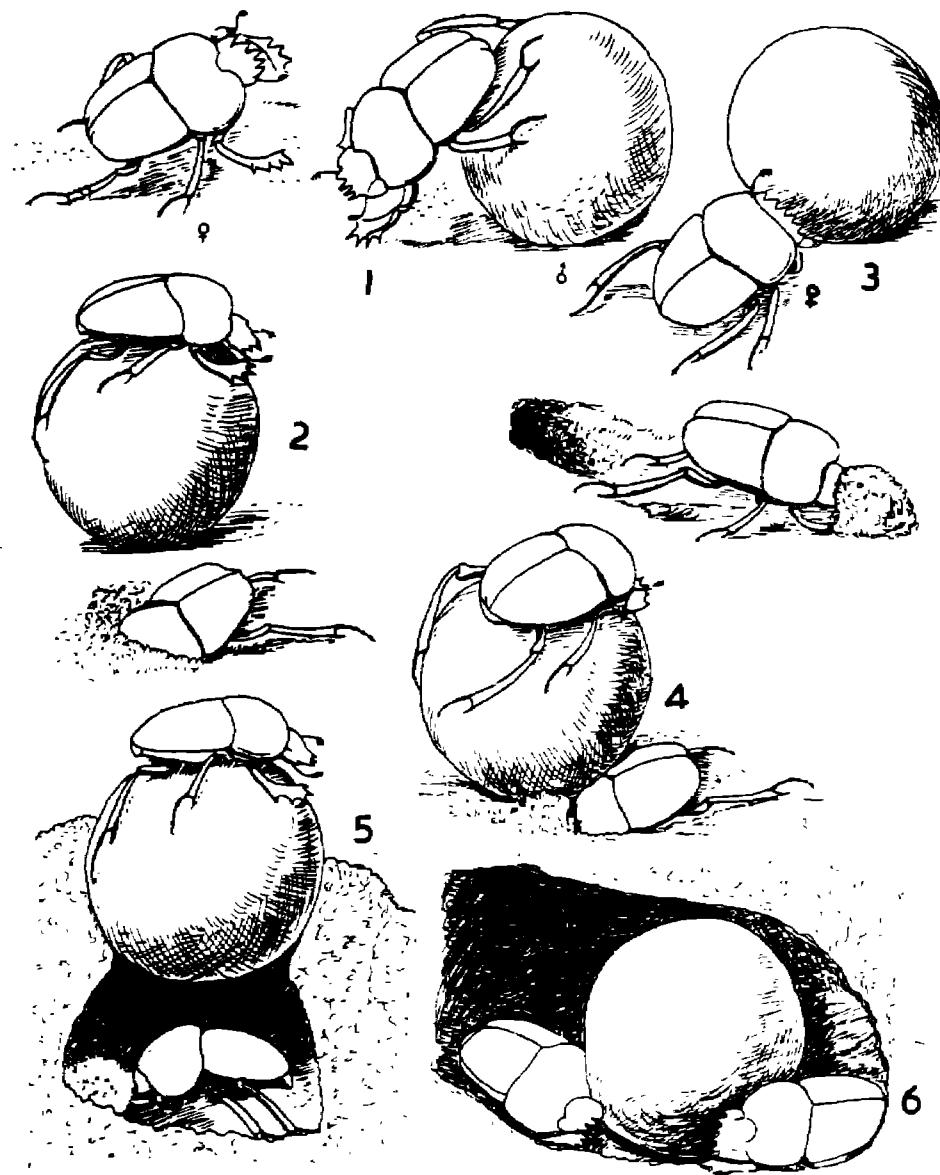
चित्र 77. शमल-गेंद को लुढ़काते हुए शमल लपेटने वाला गुबरैला भृंग।
1. पिता शमल-गेंद को लुढ़का रहा है और मां उसका अनुसरण कर रही है। 2-3. नीड़-स्थल पर पहुंचने के बाद वह अपने सिर से खोदना शुरू करती है और शमल-गेंद की रखवाली करती है। 4. जैसे जैसे खुदाई में प्रगति होती जाती है वह गेंद को गर्त में ले जाती है। 5. पिता जोरशोर से खुदाई कर रहा है और मादा शमल-गेंद को दक्षतापूर्वक गहरी होती सुरंग में सरकाती है। 6. अब अंड-कक्ष बनकर तैयार हो गया है और मां-बाप मिलकर शमल-गेंद को सफलतापूर्वक इसमें ले आए हैं तथा अंडे देने से पूर्व इसे सही स्थिति में रखने के लिए खुशी खुशी जुटे हैं।

को उचित रूप से वातित[1] और गीला रखता है क्योंकि वह सांस लेने के लिए पानी की सतह पर आता है। अगर बाप अंडों को उठाए न घूमे तो उनसे बच्चे नहीं निकलते। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि अगर अंडों को हटाकर किसी पानी भरी शीशे की द्रोणी[2] में रख दिया जाए तो वे बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। यह जरूरी है कि अंडे पानी में रहें लेकिन उन्हें समय समय पर हवा भी लगनी चाहिए। मां अपने नाकारा पति को इस काम के लिए विवश करने के सिवाय कौन-सा मार्ग सोच सकती थी? वह इस काम को करता भी अत्यधिक दक्षतापूर्वक है।

बड़बड़ाता *बेलोस्टोमा* पिता एक अपवाद है क्योंकि अधिकांश कीटों में बाप पैतृक कर्तव्यों के पालन में हाथ बंटाने में आनंद का अनुभव करते हैं। भले उसकी भूमिका छोटी-सी हो लेकिन वह स्वेच्छा से पत्नी के साथ सहयोग करता है। वह किसी दबाव में नहीं बल्कि अपनी पसंद से अपनी पत्नी की सहायता करता है। वह विविध प्रकार के काम दौड़ दौड़कर करता है जैसे कि अंड-नीड़ के लिए खुदाई करना, जब पत्नी खुदाई करती हो तो मलबे को हटाना, लार्वे का खाना लाना, और उसे अलमारी में व्यवस्थित करना, अंड-नीड़ के प्रवेश द्वार की चौकसी करना और कभी कभी बच्चे को स्वयं भोजन कराना। उसके इच्छापूर्ण सहयोग के कारण मां का ढेर सारा समय और ऊर्जा बच जाती है। मादा *ऑन्थोफेगस* अकेली लगी रहने पर अंड-नीड़ को पूरा करने और व्यवस्थित करने में पांच से छह घंटे लगाती है, लेकिन अपने पति की सहायता से वह इस काम को लगभग तीन घंटे में पूरा कर लेती है। हालांकि मां में सब कुछ स्वयं करने की सामर्थ्य होती है लेकिन नर अपना योगदान देने को उत्सुक रहता है। ऐसे भी उदाहरण हैं कि अंडों की सेवा करने के अपने अधिकार के लिए वह झगड़ता है। काम को लेकर बहुधा मां-बाप के बीच श्रम विभाजन होता है—वह घर से बाहर कमाऊ पिता बनकर काम करता है और खाद्य-सामग्री लाता है और मां शिशुपालन गृह में काम करती है तथा लार्वों के लिए भोजन तैयार करती है। मां शिशुपालन-कक्ष खोदती है और पिता इसकी निगरानी करता है। मृत्यु द्वारा बिछुड़े जाने से पहले वे अलग हुए बिना जीवन का आनंद उठाते हुए साथ साथ रहते और काम करते हैं।

उपजनक

अब तक हमने कीटों में अपनी संतति के लिए चिंता के बारे में चर्चा की लेकिन अनेक कीट ऐसे हैं जो अपने अंडों या लार्वों की रक्षा के लिए कोई कष्ट नहीं उठाते। वे भावी संतान के लिए न तो नीड़ बनाते हैं और ना खाना एकत्रित करते हैं बल्कि बच्चों की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए वे दूसरों की पैतृक चिंता का लाभ उठाते हैं। मादा दूसरे

1. वातित : Aerated 2. द्रोणी : Trough
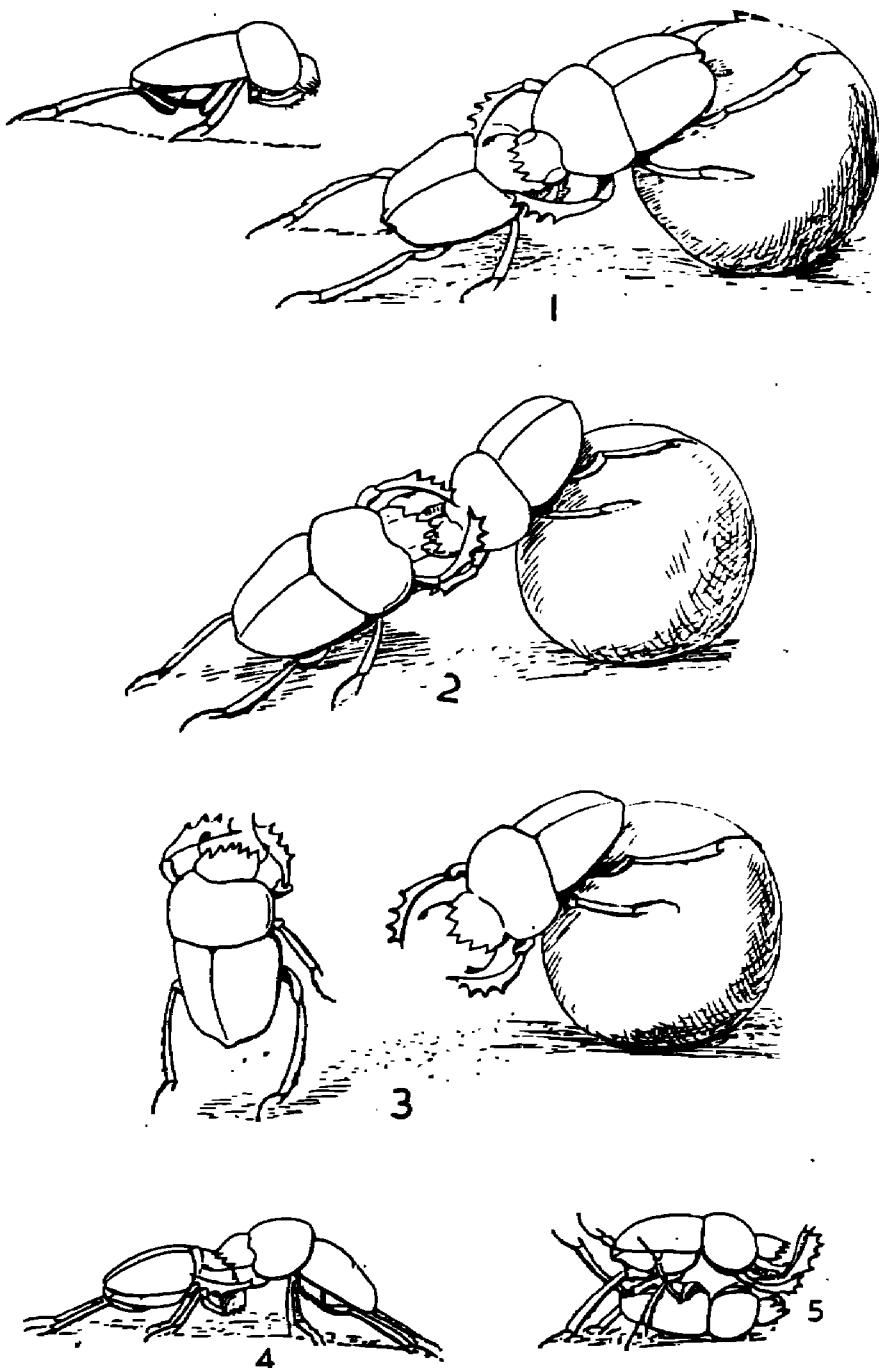
चित्र 78. दो नर शमल-भृंग अंड-नीड़ तक शमल-गेंद को लुढ़काकर ले जाने के अधिकार के लिए युद्धरत हैं।

कीट के सुभंडारित अंड-नीड़ में अपने अंडे चोरी छिपे पहुंचाने की योजना बनाती है। जब लार्वा निकलते हैं तो वे खाद्य-भंडार का उपभोग करने लगते हैं जो कि उस नीड़ की स्वामिनी ने अपने अंडों के लिए जमा किया हुआ था।

अनेक मामलों में जिस मादा ने अंड-नीड़ बनाया था वही धात्री के रूप में अपने और घुसपैठिए द्वारा चोरी से पहुंचाए गए दोनों लार्वों की देखभाल करती है। दस्यु-मक्खी *सीलियोजिस* अपने अंडे चोरी से पर्ण-कर्तक मक्खी *मेघाकाइल* के अंड-नीड़ में पहुंचा देती है। *स्टेलिस* नामक अन्य मक्खी यही काम करने के लिए *ऐन्थीडियम* मक्खी के नीड़ को निशाना बनाती है। *क्राइसिडिडी* कुल के स्वर्णिम पिक बर्र[1] की मादा किसी अन्य कीट के अंड-नीड़ के प्रवेश द्वार से जरा दूर किसी झाड़ी या पत्थर के पीछे सुविधाजनक स्थान पर छिपी रहती है और बिना हिले डुले लेकिन अत्यधिक सतर्क बनी रहकर प्रतीक्षा करती रहती है। जब दूसरा कीट बाहर जाता है तो उस स्थान को छोड़कर बने बनाए और सुभंडारित नीड़ में फुर्ती से अपने अंडे दे आती है।

पैतृक रक्षण : सर्वप्रेरक बल

हम पैतृक देखभाल को एकमात्र मानव का ही गुण समझने के इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि आमतौर पर यह सोचते भी नहीं हैं कि कीटों की तमाम गतिविधियों के पीछे बच्चों की चिंता रखना एक प्रेरक बल[2] है। लेकिन अब हम जान चुके हैं कि कीट किन किन तरीकों से अपने बच्चों की देखभाल करते हैं। वे न केवल अपने अंडों के उचित ऊष्मायन के लिए आवश्यक परिस्थितियों का भरपूर ध्यान रखते हैं बल्कि प्रतिकूल परिस्थितियों से उनकी तत्परता से रक्षा करते हैं और उन्हें शत्रुओं से बचाते हैं। अपने अंडों के लिए छद्मावस्था की व्यवस्था करने की उनकी कुछ विधियां कितने आश्चर्यजनक रूप से 'चतुराई' भरी हैं। यह देखने की बात है कि अपने अंड-नीड़ के निर्माण में उनमें कैसी अनोखी कुशलता और चतुरता है। जरा सोचिए तो वे अपनी भावी संतति के भोजन की कितने तरीकों से व्यवस्था करते हैं। एक बर्र को देखिए कि अपने अंड-नीड़ के निर्माण और प्रबंध में निरंतर परिश्रम करती रहेती है और काम में जुटे हुए ही दम तोड़ देती है। कैसी विडंबना है कि जिस बच्चे के लिए उसने अपना सारा जीवन झोंक दिया उसे देखने के लिए वह जीवित ही नहीं रहती। अनेक मादा कीट अपने अंडों और लार्वों की आवश्यकताओं का स्वयं ध्यान रखती हैं। वे उन्हें सूर्य के प्रचंड ताप से या घनघोर वर्षा से बचाती हैं, अपने शरीर-से उन्हें ढककर उनकी रक्षा करती हैं और शत्रुओं से बचाती हैं। सामान्यतया अपने उत्तरदायित्व से विमुख पिता भी कभी कभी शिशुपालन-गृह की देखभाल करता है। सामाजिक कीटों में बच्चों के प्रति बड़ी बहन का स्नेह-समर्पण मातृ चिंता भावना का ही दूसरा रूप है और इस नाते

1. स्वर्णिम पिक बर्र : Golden cuckoo wasp 2. प्रेरक बल : Driving force

वह हमारी प्रशंसा की पात्र बन जाती है। जिस समय मादा कीट लैंगिक रूप से परिपक्व हो जाती है तभी से उसके सारे क्रियाकलापों का एक ही लक्ष्य होता है : उसकी भावी संतति की कुशल-क्षेम। कुल निचोड़ यह निकलता है कि कीट व्यवहार मातृक होता है। संभवतया इसी में शाश्वत पहेली की कुंजी छिपी है : मानव के बारे में भी यह सच है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हमारे साहित्य में नारी को मां के रूप में आदर मान मिला है और मातृत्व को पूजा गया है।

कीटों में मातृ-चिंता उनके स्वभावों, सामाजिक जीवन और बुद्धि से संबद्ध है। फिर भी रूढ़िवादी जीववैज्ञानिकों के अनुसार उनके क्रियाकलापों से ऐसा कुछ भी दिखाई नहीं देता जिसकी तुलना मनुष्य की बुद्धि से की जा सके। वे कहते हैं कि चींटियां भी अविवेकी होती हैं और जटिल 'सहजवृत्तियों' की दास होती हैं जो कितनी भी प्रशंसा योग्य हों लेकिन 'बुद्धि' की अपेक्षा घटिया होती हैं। यूरोप के एक प्रतिष्ठित कीटवैज्ञानिक ने, जिसने भारतीय कीटों के बारे में बहुत ज्यादा लिखा है, अपनी निम्नलिखित टिप्पणी द्वारा वैज्ञानिकों की सामान्य मानवकेंद्रित प्रवृत्ति को संक्षेप में परिलक्षित किया है : 'उच्चतम कोटि के कीट की अपेक्षा कुत्ते में अधिक तर्क शक्ति और उच्च कोटि की मनोवृत्ति होती है लेकिन चींटी की नितांत मूर्खता और उसकी सहजवृत्ति की आश्चर्यजनक प्रकृति एक कौतुहलपूर्ण विरोध है।'

तब क्या कीट के क्रियाकलाप केवल सहजवृत्ति से प्रेरित होते हैं? क्या कीट व्यवहार में बुद्धि की कोई झलक देखने को नहीं मिलती? क्या उनमें पैतृक-रक्षण किसी स्तर पर संवेगात्मक[1] रंग नहीं अपनाता? क्या कीट भावना-शून्य नित्यचर्या की क्रूरता से अटल रूप में बंधा हुआ मात्र एक स्वचालन[2] है जैसा कि प्रसिद्ध फ्रांसीसी प्रकृतिविद फेबरे हमें समझाना चाहते हैं? दुर्भाग्य से इस संदर्भ में बहुत ज्यादा गलतफहमी है। फेबरे ने अपना जीवन कीटों के प्रेक्षण में बिताया और कुछ रूढ़िवादी प्रयोग किए। उसने, राजमिस्त्री मक्खी[3] *चैल्कोड्रोमा* द्वारा अपनी नलिका में संचित किया हुआ शहद निकाल लिया। उसने देखा कि लार्वा का भोजन गायब हो जाने से एकदम बेखबर मक्खी ने अंडे देना और नलिका को बंद करना जारी रखा। इस प्रेक्षण से उसने निष्कर्ष निकाला कि मक्खी सहजवृत्ति से इस तरह नियंत्रित है कि अंड-नीड़ में अपने ही द्वारा रखे हुए शहद की मात्रा का अनुमान नहीं लगा सकती। वह तब तक शहद संचित करती है जब तक कि उसके अंदर 'एकत्रीकरण सहजवृत्ति' रहती है। क्या वह ठीक था? चलिए हम देखते हैं। कुछ वर्ष पूर्व हमने एक पंक बर्र *यूमेनीज* को एक कमरे में अपना नीड़ बनाते देखा। जैसे ही वह अपने नीड़ में स्तंभित की हुई इल्लियां लाती हम तत्परता से उन्हें हटा देते। पहले तो उसने इस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया और

1. संवेगात्मक : Emotional
2. स्वचालन : Automation
3. राजमिस्त्री मक्खी : Masonbee

अधिक इल्लियां लाना तथा उन्हें खाली कोष्ठिकाओं में धकेलना जारी रखा। रात होने तक हमने उसकी पांच इल्लियां झटक लीं। यह संख्या कम से कम दो नीड़ों के लिए पर्याप्त है। अगली सुबह वह फिर से और इल्लियां ले आई लेकिन हमने फिर उन्हें हटा दिया। अब उसने चिंता दिखानी शुरू की। उसने बिना इल्लियां लाए थोड़े थोड़े अंतराल से अपनी कोष्ठिकाओं में केवल निरीक्षण के लिए आना शुरू किया। अब हमने उसे शांति से रहने दिया और वह दो इल्लियां ले आई तथा बाद में कोष्ठिका बंद कर दी। उस कोष्ठिका को भरने के लिए मात्र दो ही इल्लियों की जरूरत थी। अगर मात्र 'सहजवृत्ति' ही निर्देशक होती तो बर्र केवल एक या दो इल्लियां लाई होती जो कि सामान्यतया उसकी कोष्ठिका को भरने के लिए पर्याप्त होतीं। ऐसा करने के बाद उसकी 'सहजवृत्ति' की संतुष्टि हो गई होती और कोष्ठिका के खाली रहते हुए भी उसने इसे बंद कर लिया होता। लेकिन वह अधिक और अधिक इल्लियां लाने के लिए डटी रही। ऐसे प्रयोगों में यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि कीट का मुकाबला श्रेष्ठ-शक्ति (मानव) से है जिसके लिए कीट की क्षमता विकसित नहीं हुई है। हमें कैसा लगेगा अगर कोई ब्रह्मांडीय शक्ति हमारी मानसिक योग्यता के परीक्षण के लिए हमें किसी ऐसे प्रयोग का विषय बना ले?

दूसरे प्रयोग में फेबरे ने एक तरुण राजमिस्त्री मक्खी को दो रोधक लगाकर नरकुल गुहिका[1] से बाहर जाने से रोका। इस गुहिका में उसका नीड़ था और दो रोधकों में से भीतर वाला तो पंक का और बाहर वाला कागज का था। उसने प्रयोग के बाद निष्कर्ष निकाला कि मक्खी की सहजवृत्ति अपना रास्ता एक बार काटकर बनाने की है और एक बार ऐसा कर चुकने के बाद वह सहजवृत्ति संतुष्ट हो जाती है। मक्खी ने काटकर मार्ग बनाने की क्रिया नहीं दोहराई क्योंकि नित्यकर्म समाप्त हो चुका था और दूसरे रोधक के सामने वह असहाय थी। लेकिन मैंने यह पाया कि कमी मक्खी में नहीं बल्कि प्रयोग में थी। हमने एक राजमिस्त्री बर्र के लार्वो को एक शीशे की नलिका में स्थानांतरित किया। इस नलिका का मुंह तीन रोधकों से अवरोधित कर दिया गया। प्रत्येक रोधक की मोटाई मक्खी की प्राकृतिक पंक कोष्ठिका भित्ति (दीवार) से दोगुनी थी। फेबरे के प्रयोग के अनुसार तो यह आशा की जानी चाहिए कि तरुण बर्र केवल पहले विभाजन को ही काट पाएगी और क्योंकि उसकी सहजवृत्ति संतुष्ट हो जाएगी इसलिए वह दूसरे और तीसरे रोधक को नहीं काट पाएगी और कुछ ही दिनों में मर जाएगी। हमें वस्तुतया बहुत आश्चर्य हुआ जब हमने एक सुबह देखा कि बर्र ने तीनों ही रोधक तोड़ डाले हैं और निकल भागी है। मक्खी या बर्र सामान्यतया पंक विभाजन की आदी है और कागज उनके अनुभव से एकदम परे है। अगर वे विभाजन को न पहचाने तो हम उसे कैसे दोषी ठहरा सकते हैं? अगर दूसरी मंदाकिनी[2] के पराये सौर परिवार में सुदूर ग्रह का कोई वासी यदि मनुष्य को ऐसे

1. नरकुल गुहिका : Reed cavity 2. मंदाकिनी : Galaxy

पदार्थ में बंद कर दे जो पृथ्वी पर मिलता ही न हो तो क्या वह उसे पहचान पाएगा? अनेक वैज्ञानिकों के साथ कठिनाई यह है कि वे अपने प्रयोगों की योजना इस तरह बनाते हैं कि कीट ऐसी परिस्थितियों में रखे जाते हैं जो उनके सामान्य अनुभव और संसार से एकदम परे हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य समेत कोई भी प्राणी उतनी बुद्धि से ज्यादा प्रदर्शित नहीं कर सकता जितनी कि जीवन की परिस्थितियां उससे साधारणतया अपेक्षा रखती हैं। इस महत्वपूर्ण तथ्य का बोध न होने से प्रायः बहुत गलतफ़हमी हो जाती है। हमारा प्रयोगात्मक मनोविज्ञान इस कमी से पूर्णतया मुक्त नहीं है।

हालांकि खनक बर्र के लिए स्वयं ही अंड-नीड़ बनाना और उसमें स्तंभित शिकार को लाना कोई असामान्य बात नहीं है। हम पहले ही देख चुके हैं कि वह स्तंभित शिकार को वापस उसी के बिल में घसीट कर ले जाती है जिसमें से उसे कुछ मिनट पहले ही बाहर निकाला गया था। इस विचित्र व्यवहार का कारण ढूंढ़ना कठिन नहीं है। खनक-बर्र की तुलना में उसका शिकार, जो प्रायः झींगुर होता है, एक दैत्य है और इसलिए उसे विशेष रूप से बनाए गए नीड़ में ले जाना आसान काम नहीं है। दूसरी बात यह है कि बर्र एक कुशल खनक होते हुए भी अपने आकार से बड़ी सुरंग नहीं खोद सकती। ऐसा लगता है कि शिकार कहीं ज्यादा बड़ा होता है इसलिए बर्र यह जानती है कि उसे उसके बिल में ही ले जाना उचित होगा। अब हम कुछ झींगुर उस मादा खनक-बर्र के सामने फेंकते हैं जिसे हमने एक बार झींगुरों को तलाश करते देख लिया था। हमने जो शिकार उसे दिए थे उसने उन्हें पहचान लिया और अत्यधिक उत्तेजना दिखाई लेकिन उनमें से किसी को भी झपटने या उन्हें डंक मारने से अपने आपको दूर रखा। यह कुछ कुछ मूर्खतापूर्ण बात लगी कि हमारे द्वारा भेंट किए गए झींगुरों को उसने स्वीकार नहीं किया जबकि ऐसा करके वह झींगुरों का शिकार करने के परिश्रम से बच सकती थी। लेकिन मान लीजिए कि उसने ऐसा किया होता तो उसे कुछ भी लाभ नहीं हुआ होता। सुन्न झींगुर बर्र के डंक मारने से उत्पन्न मूर्च्छा से छुटकारा पा गया होता और उसे घसीटकर ले जाने के लिए जगह ही नहीं होती। डंक की अस्थायी प्रकृति से शिकार को जिस बिल में धकेलना है उसे ढूंढ़ने में लगने वाला समय बच जाता है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भले ही हमारी भेंट कितनी भी प्रलोभन भरी रही हो बर्र ने उसे स्वीकार करने से मना कर दिया। खनक-बर्र का यह व्यवहार भी मूर्खतापूर्ण लग सकता है कि झींगुर को उसी के बिल में पाकर भी उसे उसी वक्त और वहीं की वहीं डंक नहीं मारती बल्कि पहले उसे खदेड़कर खुले मैदान में बाहर निकालती है और उसका पीछा करने तथा उसके बच निकलने का जोखिम उठाती है। लेकिन इसमें मूर्खता की कोई बात नहीं है क्योंकि उस संकरी सुरंग में बर्र उसके चंगुल में आने से घबराता है और उसके शिकंजे जैसे जबड़ों से बहुत भयभीत होता है। बर्र हर कीमत पर सामने से होने वाले आक्रमण से बचता है और शिकार पर पीछे से ही उछलकर

काबू पाना चाहता है। सुरंग के भीतर यह संभव नहीं है क्योंकि वहां झींगुर और बर्र आमने-सामने होते हैं और इसीलिए बर्र के लिए यह जरूरी है कि वह झींगुर को बाहर खदेड़े। उसे परिस्थिति का पूरा पूरा भान होता है और बहुत उद्देश्यपूर्ण ढंग से अपने कार्य के लिए आगे बढ़ता है। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि झींगुर को भी बर्र के बुरे इरादों का पता रहता है इसलिए वह जोर जबरदस्ती करने पर ही सुरंग से बाहर भागता है।

मकड़ी का शिकार करने वाली कुछ *पॉम्पीलस* बर्रो को जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है उसका उन्हें बुद्धिसंगत ज्ञान होता है और इस तथ्य को वे त्रुटिहीन व्यवहार से प्रदर्शित करते हैं। भूमि में नीड़ बनाकर रहने वाली कुछ मकड़ियां अंग्रेजी के वाई के आकार की सुरंग के तले में छिपी रहती हैं। आकार के अनुसार सुरंग के दो पृथक प्रवेश द्वार होते हैं जो रेशमी दरवाजों से बंद होते हैं। ये दरवाजे एक-दूसरे से थोड़ी थोड़ी दूर पर होते हैं जो तले पर स्थित रहने वाले कक्ष की ओर जाते हैं। यह सबसे दिलचस्प परिस्थिति है : अगर बर्र किसी एक दरवाजे से घुसता है तो यह संभव है कि मकड़ी दूसरे आपात निकास दरवाजे से बच निकले। बर्र के सामने तीन विकल्प होते हैं। पहला : यह एक दरवाजा तोड़ दे और जब मकड़ी इसकी मरम्मत के लिए बाहर आए तो उसे पकड़ ले। दूसरा : मकड़ी को भयभीत करने की गरज से बर्र एक दरवाजे से अपने उदर की नोंक घुसेड़े और तब अचानक ही उसे वापस खींच ले और साथ ही दूसरे दरवाजे पर भी निगाह रखे कि कहीं मकड़ी उससे न भाग निकले। तीसरे : यह पहले एक दरवाजा और फिर दूसरा दरवाजा तब तक खटखटाए जब तक कि मकड़ी भ्रमित होकर बाहर न दौड़ पड़े। इसमें दिलचस्प बात यह है कि वह परिस्थितियों को देखते हुए उन्हीं के अनुसार सभी तीनों बातें करता है।

हमारे पास यह दर्शाने के लिए ढेरों प्रमाण हैं कि कीटों में शक्तिशाली सहजवृत्तियां होती हैं लेकिन वे उनसे अटल रूप से बंधे हुए नहीं होते और किसी भी प्रकार से नित्य चर्या के दास नहीं हैं। वे नई परिस्थितियों को पहचान सकते हैं और उसी के अनुसार अपने व्यवहार को बदल सकते हैं। उनका पैतृक रक्षण और व्यवहार अधिकतर सहजवृत्तिक होता है लेकिन कुछ मामलों में तो यह बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार समझदारी भरे बोध से निर्देशित होता है। कम से कम उन मामलों में यह सही है जहां माता-पिता अपने बच्चों के साथ रहना जारी रखते हैं वहां हमें उनको असली पैतृक भावना वाला होने का श्रेय देना चाहिए। कीटों में पैतृक रक्षण के सहजवृत्तीय आधार पर हमें जरूरत से ज्यादा जोर नहीं देना चाहिए क्योंकि मानव समेत उच्चकोटि के प्राणियों में मातृ देखभाल भी काफी हद तक सहजवृत्तीय है। यह हमारा सामान्य अनुभव है कि महिलाएं सहजवृत्तियों द्वारा नियंत्रित होती हैं और बच्चों के संबंध में वे अक्सर सही होती हैं।

4

भारतीय बाग में कीट जीवन

हालांकि हमारे घरों में कीटों का होना बहुत आम बात है फिर भी वे खुली हवा, चमकती धूप और हरी भरी वनस्पति में रहना पसंद करते हैं। बाग, घास के मैदान या जंगल उनके परंपरागत घर हैं जहां उनका जीवन और स्वभाव मानव के साहचर्य के कारण प्रभावित नहीं हुआ है। बहुत कम कीटों ने मानव आवासों के भीतर मिलने वाले आराम और विलास का लाभ उठाया है। उनकी बहुत बड़ी संख्या अपने प्राकृतिक आवासों से ही जुड़ी हुई है। हालांकि उन्हें उनके प्राकृतिक घर से निकाल बाहर करने में मनुष्य ने हर संभव प्रयास किया है, फिर भी कीट सफलतापूर्वक वहीं बने हुए हैं।

कीट का जीवन खुले वातावरण में मनोरंजक, अत्यधिक विविधतापूर्ण, रंगभरा, अनोखा, निश्चित रूप से ठेठ भारतीय, पुरातन तथा नूतन और प्रकृति के साथ पूर्णतया तालमेल वाला होता है। बड़े और छोटे, सुंदर और भद्दे टिड्डे, केटिडिड, छोटे और बड़े झींगुर हरी-भरी घास और छोटे पौधों पर कूदते हैं, दुर्गंधपूर्ण मत्कुण इधर उधर भागती हैं, रंगीन और भड़कीली तितलियां एक फूल से दूसरे फूल पर मंडराती हैं, व्यस्त मधुमक्खियां फूलों की महक के बीच गुंजन करती हैं जिससे आदमी को दोपहर बाद की गर्मी में स्वप्न भरी झपकी आ जाती है। यदा कदा कहीं से कोई बर्र अचानक नीचे आ झपटती है और पंख फड़फड़ाती फिर से जाने कहां गायब हो जाती है, वृक्षों में छिपे साइकैडा सारा दिन गाते हैं। मक्खियां और डांस लाखों की संख्या में आ जुटते हैं और शाम की गरम हवा में नाचते हैं, प्यारे प्यारे शलभ मीठी सुगंधभरी मंजरियों में देवदूतों की तरह चुपचाप उड़ते हैं और असंख्य टिमटिमाते जुगनू तथा खद्योत हमारी अंधेरी रातों में जादू-सा बिखेर देते हैं।

टिड्डे

टिड्डे हरी घास और छोटी छोटी वनस्पति के बीच प्रसन्न रहते हैं, वही उनके घर हैं। वे धीमी और ढीठभरी चाल के या जल्दी में दौड़ने के या रेंगने के आदी नहीं हैं। उन्हें लंबी और उंची कूद में रस आता है। आपातकाल में टिड्डा उड़ भी सकता है।

टिड्डे और झींगुर ऑर्थोप्टेरा गण में आते हैं। इस गण के कीटों में अग्रपंख संकरे, सीधे और चर्मिल होते हैं तथा पश्चपंख झिल्लीमय, बड़े और पंखे की तरह सिलवट लिये होते हैं जब उपयोग में नहीं आते तो अग्रपंख के नीचे स्थित रहते हैं। उनके जबड़े मजबूत होते हैं और उनमें तेज नोकीले कर्तक दंत होते हैं तथा पिसाई करने वाले बड़े बड़े चर्वणदंत (दाढ़ें) होते हैं जो कठोर घास और रूखी वनस्पति खाने के अनुकूल हैं। उनकी पिछली टांगें उन्हें दूसरे कीटों से एकदम भिन्न कर देती हैं। दूसरी टांगों की तुलना में ये बहुत लंबी और मजबूत होती हैं। इन पश्चपादों की सहायता से ही टिड्डा बिजली जैसी फुर्ती से कूदकर गायब हो जाता है। लगभग सभी टिड्डे चमकीले हरे, पीले, नारंगी, लाल, भूरे या धूसर रंग के होते हैं और जिस पर्णसमूह की पृष्ठभूमि में रहते हैं उससे इतनी अच्छी तरह मेल खा जाते हैं कि जब तक वे वास्तव में कूदकर गायब न हो जाएं आप उन्हें नजदीक से भी पहचान नहीं सकते।

अधिकांश टिड्डे ऐसे लाइलाज पेटू हैं जो प्रायः बहुत ही थोड़े समय में पूरी झाड़ियों को एकदम से नंगा कर देते हैं। हमारे देश में टिड्डे मानसून ऋतु में बहुत ज्यादा होते हैं लेकिन दूसरे मौसमों में एकदम से न पाए जाते हों ऐसा नहीं है। यह काफी दुख की बात है कि टिड्डों के ढेर सारे शत्रु होते हैं जिनमें हमारी सामान्य मैना विशेष है। इसका वैज्ञानिक नाम *एक्रिडोथिरीज़ ट्रिस्टिस* है (जो इसके भोजन के आधार पर दिया गया है)। मैना समझती है कि भगवान ने टिड्डे को एकमात्र उसी के आहार के लिए बनाया है। जिस झाड़ी में आपको एक भी टिड्डा नजर नहीं आता मैना उसी में से क्षण भर में ही दर्जनों टिड्डे निकाल लेती है।

टिड्डे दो प्रकार के होते हैं : लघु-शृंगी (छोटे सींग वाले) टिड्डे या एक्रिडिड और दीर्घ-शृंगी टिड्डे या *टेटिगोनिड* (केटिडिड भी कहलाते हैं), *एक्रिडिड* में शृंगिकाएं छोटी होती हैं और अंडे देने के लिए उनके उदर की नोक पर छोटा अंडनिक्षेपक[1] होता है। अंडे प्रायः भूमि में दिए जाते हैं। उनमें सुनने के लिए एक विचित्र अंग होता है जो कर्णपटह कहलाता है और उदर के आधार पर, पंखों के नीचे, दोनों बगलों में होता है। पंख की खुरदरी सतह को टांग से घर्षित करके या रगड़कर वे एक अजीब आवाज निकालते हैं बिल्कुल उसी तरह जैसे कि वायलिन तार पर खींचे जाने वाले गज[2] से संगीत निकलता है। मादाएं जमीन के भीतर प्रायः कई सेंटीमीटर की गहराई पर छोटे छोटे गड्ढों में अंडों के गुच्छे देती हैं। टेटिगोनिडों की शृंगिकाएं लंबी, धागे जैसी या बाल जैसी होती हैं जो प्रायः उनके स्वयं के शरीर से भी काफी लंबी होती हैं। मादाओं में तलवार के आकार का एक लंबा, संकरा अंडनिक्षेपक भी होता है जो अंडे देने के लिए पौधों की कोमल छाल को काटने के काम में आता है। उनका कर्णपटह अग्रपादों की अंतर्जंघिका[3] पर स्थित होता है।

---

1. अंडनिक्षेपक : Ovipositor
2. गज : Bow
3. अंतर्जंघिका : Tibia

लघु-शृंगी टिड्डे

लघु-शृंगी टिड्डों की मादाएं अपने अंडे मृदा में सघन गुच्छे में निक्षेपित करती हैं। ये अंडे गोंद जैसे पदार्थ में लिपटे होते हैं जो जल्दी से कठोर हो जाता है और अंडों को अत्यधिक नमी से बचाता है। अंडों का परिवर्धन अपेक्षाकृत धीमा होता है और इसमें पूरी शीत या शुष्क ग्रीष्म ऋतु लग जाती है। अधिकांश टिड्डों में अंड-अवस्था सामान्यतया अक्तूबर से जून तक रहती है लेकिन कुछ में यह जून से जुलाई तक रहती है। शीत-महीनों में परिवर्धन का मंद पड़ जाना शीतनिष्क्रियता कहलाता है और ग्रीष्म की गर्मी से होने वाला मंदन ग्रीष्मनिष्क्रियता कहलाता है। यह मंदन टिड्डे के सामान्य जीवन के लिए एक शरीरक्रियात्मक आवश्यकता है।

अंडों से निकलने पर तरुण टिड्डे प्रायः प्रौढ़ों जैसे होते हैं। बस एक अंतर होता है कि उनमें पंख नहीं होते हैं। उनका रंग भी प्रौढ़ से अलग पीला या हरा होता है। वे तीव्रता से खाते हैं, तेजी से वृद्धि करते हैं और अपनी त्वचा का पांच से सात बार निर्मोकन करते हैं। तीसरे या कभी कभी चौथे निर्मोक से पंख वृद्धि करती पालियों[1] की तरह दिखाई देते हैं। प्रौढ़ टिड्डे भूरे या लाल हो जाते हैं। अधिकांश टिड्डों में एक साल में केवल एक पीढ़ी होती है लेकिन दूसरों में दो होती हैं जो असमान अवधि की होती हैं। ऐसा विरले ही होता है कि कुछ किस्म के टिड्डों में एक साल में अनेक पीढ़ी होती हों।

भारत में टिड्डों की एक हजार से भी अधिक जातियां हैं। हमारे टिड्डों में सबसे ज्यादा ज्ञात और शायद सबसे सामान्य रंगीन टिड्डा *पोइसिलोसेरस पिक्टस* है। यह मदार के पौधे *कैलोट्रॉपिस* में बहुत प्रजनन करता है और हालांकि यह पूरे भारत में पाया जाता है लेकिन मुख्यतया अर्धशुष्क बस्तियों का निवासी है। पीले रंग के तरुणों में चमकीले काले और लाल धब्बे होते हैं लेकिन निर्मोचन होने पर रंग धीरे धीरे बदलकर नीला और चमकीला पीला हो जाता है। *औलार्केस मिलियेरिस* प्रायः पर्वतीय इलाकों और कॉफी बागानों में पाया जाता है। यह गहरे हरे से लेकर काला बड़ा टिड्डा होता है जिस पर पीले या लाल रंग के चितकबरे धब्बे होते हैं। *गैस्ट्रिमार्गस मार्मोरेटस* एक चमकदार नारंगी और काले रंग का टिड्डा होता है जो आमतौर पर मैदानी घास में पाया जाता है। *ऐक्रिडा ट्यूरीटा* शंकु जैसे सिर और ठूंठ जैसी तथा चिपटी शृंगिकाओं वाला पतला टिड्डा है। इसके रंग प्रायः परिवर्ती होते हैं जो चमकीले हरे से लेकर सूखी घास जैसे हरे होते हैं। विभिन्न प्रकार के पौधों को खाने वाले लेकिन तंबाकू की पत्तियों को ज्यादा पसंद करने वाले टिड्डे *अट्रैक्टोमार्फा क्रेनुलेटा* की खास बात यह है कि इसकी मादा हरे रंग की होती है लेकिन नर छोटा और भूरा होता है। *हायरोग्लाइफस बनियान* और *औक्सिया वेलोक्स* आमतौर पर घास पर पाए जाते हैं लेकिन विभिन्न फसलों, विशेषतया धान को बहुत क्षति पहुंचाते हैं। *टेराटोडीज*

1. पालियां : Lobes

मॉन्टिकोलिसि एक हरे या सूखी घास जैसे हरे रंग का दैत्य है जिसमें बड़ा-सा छत जैसा टोप (हुड) होता है जो सिर से नीचे की ओर मुड़कर शेष सारे शरीर के ऊपर प्रक्षेपित रहता है। यह दक्षिण और पश्चिमी भारत में बहुतायत में पाया जाता है।

दीर्घ-शृंगी टिड्डे

दीर्घ-शृंगी टिड्डे प्रायः बड़े और हरे, देखने में पत्ती जैसे होते हैं, बिरले ही कुछ टिड्डे भूरे रंग के होते हैं और पेड़ की छाल से मिलते जुलते हैं। लघु-शृंगी से भिन्न ये टिड्डे अधिकतर रात्रिचर होते हैं और दिन के समय छिपे रहते हैं। उनमें से बहुत से शाकाहारी होते हैं लेकिन कुछ परभक्षी होते हैं। मानसून की वर्षा के दौरान वे आमतौर पर रात में बिजली की ओर आकर्षित होते हैं तथा तीखी और कर्कश आवाज निकालते हैं। *मीकोपोडा* और *होलोक्लोरा* दो सामान्य दीर्घ-शृंगी टिड्डे हैं। *मीकोपोडा* का विचित्र, गहरा भूरा मृत-पत्ती जैसा रंग होता है और यह पेड़ों पर पाया जाता है। *फाइलिया* एक चपटा छाल जैसा प्राणी होता है जो दिन के समय पेड़ के तनों की छाल पर बिना हिले डुले आराम करता है। *कोनोसिफेलस* एक हरा, लंबा, पतला कीट है जो सामान्यतया घास में पाया जाता है। इसका नर लगातार तीक्ष्ण शोर करता है जो कर्णभेदी होता है और यह अचानक ही उसे बंद भी कर देता है।

झींगुर

झींगुर या *ग्राइलिड* बहुत चींचीं करते हैं और कुशल बिलकारी यानी बिल खोदने वाले होते हैं। हालांकि उनमें से कुछ जमीन की सतह पर ही रहते हैं। अधिकांश बिलकारी झींगुर शाकाहारी होते हैं और जड़ें खाते हैं लेकिन कुछ ऐसे हैं जो रात में रेंगकर जमीन पर आ जाते हैं और पत्तियां या कोमल कलियां कुतर कर खाते हैं।

झींगुर दाएं पंख के खुरदरे क्षेत्र को बाएं पंख के खुरदरे क्षेत्र से तेजी से रगड़ते हुए जोरदार और पैनी आवाज निकालने के लिए मशहूर है। आवाज कभी कभी इतनी तीखी होती है कि मानव के कान की पकड़ में नहीं आती (पराश्रव्यी)। क्रिकेट (झींगुर) नाम क्रिकेल से पड़ा है जो क्रिकेलिंग ध्वनि उत्पन्न करने के कारण है।

ब्रैकीट्राइपीज़ एकेटाइनस एक बड़ा भूरा झींगुर है जो मानसून में रात को होने वाली वर्षा से बिलों में पानी भर जाने के कारण बाहर जमीन पर निकल आता है। नर प्रायः शाम के झुटपुटे में बाहर आ जाता है और कान फाड़ देने वाली आवाज में गाने लगता है। बाग के झींगुरों में सबसे ज्यादा जाना-पहचाना छछुंद झींगुर *ग्राइलोटैल्पा* है जिसकी अगली टांगें खोदने के काम में आने के कारण दांतदार बेलचे जैसी होती हैं। ये भूरे रंग के बड़े प्राणी हैं जो भूमिगत कक्षों में रहते हैं और वहीं अपने बच्चों का पालन पोषण करते

हैं। कभी कभी रात में तेज सफेद रोशनी से आकर्षित होकर जमीन के ऊपर रेंगते हैं। जिस तरह दूसरे झींगुर कूदते हैं ये उस तरह नहीं कूद सकते।

मत्कुण (बग)

मत्कुण एक बहुत बदनाम शब्द भले ही हो लेकिन सच कहा जाए तो यह आनंद देने वाले कीटों का एक समूह है, जो बागों में पाया जाता है। यह ठोस भोजन खा ही नहीं सकता जैसे कि टिड्डे खाते हैं बल्कि केवल द्रव पीता है। इसमें 'जबड़े' नाम की कोई चीज नहीं होती और कठोर तथा ठोस खाद्यों को काटने तथा चबाने के लिए दांत भी नहीं होते। इसके बजाय उनके सिर की नोक पर एक संधियुक्त (जोड़वाली) चोंच या तुंड (रोस्ट्रम) होती है जो एक साथ बरमा (ड्रिल), पंप और पाइप सब कुछ होती है। तुंड के भीतर चार कोमल तेज नोक वाली लंबी सूई जैसी शूकिकाएं[1] होती हैं। शूकिकाओं को बरमे की तरह ऊपर नीचे किया जा सकता है और ये ढेर सारी लार से तर रहती हैं जो पौधों या प्राणी के घाव में पहुंचा दी जाती है। भूखा मत्कुण तुंड की अतिसंवेदी नोक की सहायता से पहले किसी उपयुक्त स्थल को चुन लेता है। तुंड की नोक मजबूती से बाह्यत्वचा[2] या त्वचा पर जमाते हुए चमड़ी में छेद करने के लिए मत्कुण शूकिकाओं को आगे सरकाता है और इसके साथ साथ पादप-रस या रक्त को जमने से रोकने के लिए थोड़ी-सी लार घाव में डाल देता है। उसके बाद रस-रक्त-लार के मिश्रण को तुंड के द्वारा चूसकर मुंह की गुहिका में ले आता है। ऐसा वह फुलाए हुए सिर के भीतर स्थित शक्तिशाली चूषण-पंप की सहायता से करता है।

कुछ अत्यधिक विशिष्ट पादप मत्कुणों और इक्का दुक्का प्राणी परजीवी मत्कुणों को छोड़कर मत्कुणों की बहुत बड़ी संख्या खुले में अधिकांशतया छोटे छोटे पौधों पर रहती है। कुछ मत्कुण पेड़ों पर रहते हैं। अनेक मत्कुणों का रंग चमकीला लाल, नारंगी, पीला, हरा, काला, नीली धातु जैसा या तांबे जैसा लाल होता है। अनेक पर सुंदर धब्बे होते हैं और पट्टियों तथा धारियों से अलंकृत होते हैं। कुछ तो सचमुच बहुत ही सुंदर होते हैं। छेड़ दिए जाने पर मत्कुण एक दुर्गंध छोड़ते हैं, जो मसले हुए खटमल की याद दिला देती है। यह दुर्गंध कुछ ग्रंथियों से निकाले गए अत्यधिक वाष्पशील तैलीय स्राव[3] के कारण आती है। बहुत-से मत्कुणों से एक मोमी लेप निकलता है जो सूखे मौसम में उनके शरीर से पानी की ज्यादा हानि नहीं होने देता। कुछ मत्कुणों जैसे कि लाख-कीट से एक रेजिनयुक्त मोम इतनी भारी मात्रा में निकलता है कि वे अपने ही मोम में पूरी तरह से ढक जाते हैं। टिड्डों की तरह मत्कुण भी सामान्यतया मानसून की वर्षा में संख्या में बहुत होते हैं और

1. शूकिकाएं : Stylets
2. बाह्य त्वचा : Epidermis
3. वाष्पशील तैलीय स्राव : Volatile oily secretion

बारिश खत्म हो जाने के बाद भी कुछ समय तक बने रहते हैं। मत्कुण दो तरह के होते हैं : सच्चे मत्कुण[1] या हेटेरॉप्टेरा (विषमपंखी) और साइकैडा, एफिड, चूर्णी मत्कुण आदि या *होमोप्टेरा* (समपंखी)।

हेटेरॉप्टेरा (विषमपंखी)

सच्चे मत्कुणों में अग्रपंखों के आधार चर्मीय होते हैं लेकिन सिरे पश्चपंखों की तरह हमेशा पतले और एकदम से झिल्लीमय होते हैं। पंख क्रमिक रूप से परिवर्धित होते हैं और प्रौढ़ अवस्था से पूर्व दो या तीन निर्मोचनों पर ठूंठ के रूप में दिखाई देने लगते हैं। कुछ मुक्तजीवी[2] और अधिकांश परजीवी मत्कुणों के पंख नहीं होते। हालांकि अधिकांश मत्कुण धीरे धीरे चल पाते हैं लेकिन कुछ बहुत जोर से भाग सकते हैं और कुछ तो टिड्डे की तरह कूद भी सकते हैं। कई मत्कुण जलीय या अर्द्धजलीय होते हैं तथा तालाबों में बिना लड़खड़ाए पानी पर चल सकते हैं, गोता लगा सकते हैं और अपनी चप्पू जैसी पिछली टांगों से तैर सकते हैं। एक या दो मत्कुण तो समुद्र पर भी रहने लगे हैं।

हेटेरॉप्टेरा कई कुलों[3] में विभाजित हैं जैसे कि *लाइजिडी* (लाइजिड मत्कुण), *पाइरोकॉरिडी* (जुगनू), *टिनजिडी* (फीता-मत्कुण), *रेडुविडी* (घातक मत्कुण[4]), *जेरिडी* (जल-स्केटर), *नौकॉरिडी* (पैर का अंगूठा काटने वाली जल-मत्कुण) *सीमीसिडी* (खटमल), *एन्थोकॉरिडी* (पुष्प मत्कुण) *नेपिडी* (जल बिच्छु मत्कुण), *बेलास्टोमेटिडी* (विशाल जल नाविक मत्कुण) आदि।

कुछ महत्वपूर्ण और सामान्य उद्यान-मत्कुण निम्नलिखित हैं/ *कैप्टोसोमा* कठोर-शरीर वाले मत्कुण हैं जो भृंग जैसे दिखते हैं। उनमें से कुछ चमकदार नारंगी, हरे, भूरे, काले, धात्विक हरे (हरी धातु जैसे) नीले और तांबे जैसे लाल रंग के होते हैं। एक ढाल या प्रढाल[5] उनके शरीर के सारे पृष्ठ भाग को ढके रहती है और प्रायः उनके पंखों को छिपाए रहती है। *क्राइसोकोरिस* बहुत ही सुंदर, बड़े और चमकदार धात्विक–हरे या धात्विक–नीले रंग का मत्कुण है जो सामान्यतया *जैट्रोफा* पौधे पर पाया जाता है। छेड़े जाने पर यह तुरंत जमीन पर गिरकर नीचे पड़ी पत्तियों और लकड़ियों में गायब हो जाता है। इन दोनों मत्कुणों की मादाएं पत्तियों या टहनियों पर अंडों के गुच्छे देती हैं और उनसे बच्चे निकलने तक उनकी रक्षा करती हैं। *नेज़ारा* कुछ छोटा होता है और घासों में बहुत होता है। इसका रंग हरा या कभी कभी पीला होता है। ये कुछ फसलों के ऊपर भी पाया जाता है। *लेप्टोकोरिक्सा* प्रायः घास का भोजन करता है पर धान की फसल इसको पसंद है और उसका रस पीकर

---

1. सच्चे मत्कुण : True bugs
2. मुक्तजीवी : Freeliving
3. कुल : Family
4. घातक मत्कुण : Assasin bug
5. प्रढाल : Scutellum

उसे अत्यधिक क्षति पहुंचाता है। सामान्यरूप से पाया जाने वाला तथा स्पष्ट लाल और काले धब्बे वाला पाइरोकॉरिड मत्कुण *डिस्डर्कस* कपास को भारी क्षति पहुंचाता है। *यूरेन्टियस* विचित्र-सा दिखने वाला फीता-मत्कुण है जो बैंगन की पत्तियों को खाता है और दूसरा फीता-मत्कुण *मोनेन्थस* सामान्य तुलसी पादप पर पाया जाता है। सभी रेडुवियस रक्त-चूसी मत्कुण हैं। *रेडुवियस* घास में जाता है और *हारपेक्टर* मत्कुण *डिस्डर्कस* का रक्त चूसता है। जेरिडी कुल के मत्कुण जल-स्केटर होते हैं जिनकी देह चपटी और शनील जैसे बालों वाली होती है। वे पानी के पृष्ठ तनाव[1] का लाभ उठाते हुए बिना पृष्ठीय फिल्म को तोड़े या बिना पानी के नीचे जाए तालाबों, टंकियों, कुओं और कुंडियों में चलते हैं लेकिन जब जी चाहे तब गोता भी लगा सकते हैं। वे छोटे छोटे शिकारों को पकड़ लेते हैं और उनका खून चूसते हैं। नेपिडी मत्कुणों को जल-बिच्छू इसलिए भी कहते हैं कि उनकी अगली टांगों में पंजे होते हैं और लंबी श्वास नली होती है जो बिच्छू की पूंछ जैसी लगती है। *नेपा* अपने शिकार को अगली टांगों से पकड़कर उसका रक्त चूस लेता है। *बेलोस्टोमा* मत्कुण चपटे, सख्त, चर्मीय, भूरे या काले और बड़े आकार के होते हैं जो कीटों, मछलियों, घोंघों और मेंढक आदि का रक्त चूसते हैं। नर द्वारा अंडों को ढोने के स्वभाव का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं।

होमोप्टेरा

हेटेरॉप्टेरा से होमोप्टेरा इस मायने में भिन्न हैं कि इनके दोनों जोड़ी पंख झिल्लीमय होते हैं। ये पादप-अशनी यानी पौधों का भोजन करनेवाले और रस पीनेवाले तथा मुक्तजीवी भी होते हैं। कुछ मत्कुण विभिन्न पौधों पर स्थायी, स्थानबद्ध परजीवी के रूप में रहते हैं और उनमें पंखों या गमन-शक्ति का कोई भी चिह्न नहीं होता। वे अंडों से निकलने के बाद पौधे पर भोजन के लिए उचित स्थान की खोज में केवल चंद घंटों के लिए ही मुक्त रूप से चल-फिर सकते हैं। उसके बाद वे अपने चुने हुए स्थान पर जम जाते हैं, अपनी भेदने वाली शूकिकाओं को पादप ऊतक[2] के भीतर गहराई तक घुसेड़ देते हैं जो पौधे के संवहनी ऊतकों[3] तक पहुंच जाते हैं। इसके बाद तो मत्कुण यह स्थान आजीवन नहीं छोड़ते। वे भारी मात्रा में रस चूसते हैं और अतिरिक्त पानी को रिसाव के द्वारा बाहर निकाल कर उस रस को सांद्रित[4] कर लेते हैं। रिसाव की यह प्रक्रिया निःस्रवण[5] कहलाती है। इस निःस्राव में निश्चित रूप से शर्करा जैसा पदार्थ अभी भी बच रहता है और चींटियां तथा अन्य कीट इसे मधुबिंदु के रूप में निगल जाते हैं। पौधे में रस की बहुत कमी हो जाती

1. पृष्ठ तनाव : Surface tension
2. पादप ऊतक : Plant tissue
3. संवहनी ऊतक : Vascular elements
4. सांद्रित : Concentrate
5. निःस्रवण : Exudation

है और यह मुरझा या सूख भी सकता है। रस चूसते समय वे अपनी लार के साथ विभिन्न रोगाणुओं[1] जैसे कि पादप विषाणु[2], जीवाणु[3] आदि को भी पौधे में डाल देते हैं जिससे फसलों में रोग फैल जाता है। सभी मत्कुणों में मोम-ग्रंथियां[4] होती हैं जिनसे भारी मात्रा में चूर्णी मोम या जानी पहचानी रेजिनयुक्त (राल) लाख निकलती है।

होमोप्टेरा गण निम्नलिखित महत्वपूर्ण कुलों में विभाजित हैं। फलगोरिडी या पात-फुदका मत्कुण जो चमकीले रंग के होते हैं और जो ढेरों ढेर मोमीय स्राव निकालते हैं। इसका उदाहरण *हिल्दा* है जो फाइकस वृक्ष पर पाया जाता है। *पाइरिला* मत्कुण गन्ने का रस चूसता है। स्पिटल मत्कुण के नाम से प्रसिद्ध सेरोपिडी झाग के ढेर में छिपा रहता है। जो मानव के थूक जैसा लगता है लेकिन वास्तव में मत्कुण की गुदा से रिसा अतिरिक्त रस होता है। जेसिड कूदने वाला पादप मत्कुण है जैसा कि सामान्य दीवाली मक्खी *नीफोटेटिक्स बाइपंक्टेटस* जो हरे और काले धब्बे वाला मत्कुण है और धान के पौधों समेत घासों का रस चूसता है। दीवाली के उत्सव में ये मत्कुण लाखों की संख्या में आ जाते हैं। आमफुदका *आइडियोसिरस* मत्कुण आम मंजरी को क्षति पहुंचाता है। साइकेडिडी या साइक्रेडा, जो प्रसिद्ध कीट संगीतज्ञ हैं होमोप्टेरा गण में आते हैं। वे मूलतया वन कीट होते हैं लेकिन दूसरी जगह भी पाए जाते हैं। साइक्रेडा अपने लंबे शैशव[5] के लिए विशिष्ट हैं। तरुण साइक्रेडा निम्फ मिट्टी में खुदाई करते हैं और जड़ों का रस पीते हैं। वे बहुत धीरे धीरे परिवर्धित होते हैं जिसमें तेरह, सत्रह या अधिक साल भी लग सकते हैं। लेकिन उनका प्रौढ़ जीवन कुछ सप्ताह का ही होता है। वे भोजन के लिए वृक्षों पर निर्भर करते हैं। तरुण अवस्था में जड़ों का रस और प्रौढ़ होने पर वृक्षों के तनों तथा शाखाओं का रस चूसते हैं। वे रंगीन और आमतौर पर जिन पेड़ों पर रहते हैं उनकी छाल जैसे चिह्नित होते हैं। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है केवल नर साइकैडा ही गा सकता है। मादा सिर्फ सुन ही सकती है, जवाब नहीं दे सकती क्योंकि उसमें ध्वनि उत्पन्न कर सकने की सामर्थ्य ही नहीं होती। कोई आश्चर्य नहीं कि किसी कवि ने साइकैडा के जीवन से ईर्ष्या करते हुए ये पंक्तियां गुनगुना दीं—

"साइकैडा जीवन दुखविहीन,
पत्नी उसकी ध्वनिविहीन।"

साइकैडा का मैदानी इलाकों में मिलना बहुत दुर्लभ है पर पहाड़ियों और हिमालय पर इनकी भरमार है। हमारा सबसे सामान्य साइकैडा प्लेटीप्लीयूरा है। यह संभव है कि साइकैडा सालों साल दिखाई न दे और फिर अचानक ही उनकी भारी भीड़ दिखाई पड़े

---

1. रोगाणु : Pathogens
2. पादप विषाणु : Plant virus
3. जीवाणु : Bacteria
4. मोम ग्रंथियां : Wax glands
5. शैशव : Infancy

तथा फिर से कई सालों के लिए उड़नछू हो जाए। वे वस्तुतया भूमिगत हो जाते हैं।

गोमत्कुण कहलाने वाले मेम्ब्रेसिडी मत्कुण अनोखी आकृति वाले, सुस्त कीट हैं जिनके शरीर पर विचित्र शृंग जैसी वृद्धियां, कांटे, घुंडियां आदि होती हैं जो सिर के ऊपर और बाकी शरीर पर भी बाहर की ओर निकली रहती हैं। वे प्रचुर मात्रा में मधुबिंदु स्रावित करते हैं जिससे चींटियां आकर्षित होती हैं। चींटियां गोमत्कुण की निगरानी और सुरक्षा करती हैं तथा मीठे स्राव के लिए उनका नियमपूर्वक दोहन करती हैं।

एफिडॉइडिया या एफिड या पाइप-जूंएं सूक्ष्म, कोमल शरीर वाली, बहुरूपी होती हैं जो फूले हुए उदर पर स्थित युग्मित (जोड़ीदार) नलिकाकार साइफन के कारण आसानी से पहचानी जाती हैं। वे फलियों, घास, सरसों, मूली, कपास, गुलाब तथा अन्य पौधों पर झुंडों में पाई जाती हैं। बहुत सारी चींटियां उनकी सेवा में जुटी रहती हैं। चींटियां इन मत्कुणों से रिसने वाले मधुबिंदु के कारण इन्हें नियमित रूप से दुहती हैं। चींटियां उनकी देखभाल करती हैं, प्राकृतिक शत्रुओं से उनकी रक्षा करती हैं और उन्हें अपने अशन स्थल तक ढोती हैं। इस सबके बदले में चींटियां मधुबिंदु का रसास्वादन करती हैं जिसे वे एफिडों को अपनी शृंगिकाओं से सहलाकर प्राप्त करती हैं। एफिड सामान्यतया कुंवारी रहकर ही जनन करती हैं क्योंकि अनेक पीढ़ियों तक उनमें नर होते ही नहीं। एफिड मां अंडे नहीं देती बल्कि जरायुज[1] होने के नाते तरुण एफिडों को जन्म देती है। जरायुज कुवांरियों की अनेक अनिषेकजननीय पीढ़ियों के बाद नर और मादा दोनों ही भारी संख्या में उत्पन्न हो सकते हैं। इनमें से कुछ नर और मादाएं सपंख होते हैं और वे दूसरे खाद्य पौधे पर चले जाते हैं जहां समागम करते हैं और मादा वहां पर एक अंडे को जन्म देती है। इस अंडे से एक पंखहीन मादा निकलती है जो अनेक पीढ़ियों तक अनिषेकजनन और जरायुजतः जनन करती है। एफिडों के अनेक शत्रु होते हैं जैसे कि सोनपंखी भृंग[2], पक्षी, मक्खियां, हाइमेनोप्टेरा गण के अंतर्गत आने वाले परजीवी आदि। मिल्कवीड पौधे पर पाई जाने वाली पीली *एफिस नेराई* सिट्रस पादप पर पाई जाने वाली काले रंग की *टॉक्सोप्टेरा* और सरसों, मूली, पत्तागोभी आदि पर पाई जाने वाली *ब्रेवीकोरिन* कुछ सामान्य एफिड हैं।

चूर्णी मत्कुण, शल्ककीट और कॉक्सिड आदि कोकॉइडिया में आते हैं जो बहुत विचित्र, एकदम से अपह्रासित[3], स्थानबद्ध, कोमल-शरीरवाले, मांसल पिंडी समूह हैं जिसमें शरीर के खंडों का कोई निशान नहीं होता। इनके पंख नहीं होते, और शरीर कोमल मोमीय या भारी मोमीय शल्क या मोमीय ढेर में छिपा रहता है। नया निकला लार्वा भरण स्थल की खोज में इधर उधर भटकता है और जब उसे उपयुक्त स्थान मिल जाता है तो अपनी तुंडीय शूकिकाएं पादप ऊतक में घुसा देता है, अपनी त्वचा निर्मोचित करता है और एक बेडौल

1. जरायुज : Viviparous
2. सोनपंखी भृंग : Ladybird beetle
3. अपह्रासित : Degenerate

पिंड बनकर स्थायी रूप से स्थानबद्ध हो जाता है। यह मोम और मीठे निस्राव की महीन बूंदों की अविच्छिन्न धारा भी स्रावित करता है। ये बूंदें अक्सर वर्षा की बूंदों की तरह टपकती हैं जिससे चींटियां और दूसरे कीट आकर्षित होते हैं। विशालकाय चूर्णी मत्कुण अनेक पौधों जैसे कि ऐकेशिया (बबूल, कत्था आदि), सिट्रस (नींबू, संतरा आदि) और आम आदि पर पाया जाता है। *लैक्सीफर लैका* एक सुप्रसिद्ध लाख-कीट है जिसकी खेती भारत में *ज़िज़ीफस* (बेर), *ब्यूटिया* (ढाक या पलाश), और *श्लाइकेरा* जैसे पौधों पर अनादि काल से की जा रही है। *स्यूडोकॉकस* सिट्रस पर पाया जाता है। *डैक्टिलोपियस* लाल रंग का चूर्णी मत्कुण है जो नागफनी के पौधे पर होता है। इस मत्कुण के शरीर से किरमिजी रंजक[1] निकाला जाता है।

भृंग

भृंग कठोर शरीर वाले कीट होते हैं जिनके अग्रपंख कठोर कवचों[2] में रूपांतरित हो जाते हैं जिन्हें पक्षवर्म या पंखवर्म[3] कहते हैं। पक्षवर्म पंख के रूप में कार्य नहीं करते लेकिन जब भृंग हवा में उड़ता है तो पक्षवर्म फैल जाते हैं और तब वास्तविक पंखों की बजाय एलेरॉन की तरह काम करते हैं, विश्राम की अवस्था में ये झिल्लीमय पश्चपंखों को ढके रहते हैं और उनकी रक्षा करते हैं। पश्चपंख जटिल ढंग से मुड़कर पक्षवर्म के नीचे सिमटे रहते हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर भृंग ठोस खाद्य पदार्थ काटते और चबाते हैं। यह खाद्य पदार्थ पत्तियां, कलियां, फूल, परागकण, फल, दृढ़ फल, बीज, तने और जीवित पौधे या लकड़ी का कोई अन्य भाग हो सकता है। सड़ रहा या मृत जैविक पदार्थ, कवक या जीवित प्राणी भी इस खाद्य में शामिल है। भृंगों का आकार 0.25 मि.मी. से लेकर 15 से.मी. तक होता है। जहां तक रंग का सवाल है, ये भूरे, काले, लाल या पीले या चटकीले और चमकीले धात्विक-नीले या तांबे जैसे लाल होते हैं। शरीर पर बहुधा सुंदर धब्बे या चिह्न होते हैं और या तो शरीर पर कुछ भी नहीं होता अथवा यह शल्क या ऊनी रोम और कंटकों से ढका रहता है। नर और मादा में इतना फर्क होता है कि उन्हें एक ही जाति मानने में मुश्किल होती है। कुछ नरों के जबड़े असाधारण रूप से लंबे, शरीर से भी अधिक लंबे होते हैं जबकि मादा के जबड़े सूक्ष्म होते हैं। कुछ कीटों के शरीर के विभिन्न भागों पर अनोखे आकार के शृंग, कांटे और गुलिकाएं होती हैं। अधिकांश भृंग बहुत तेज दौड़ते हैं, कुछ जमीन खोदकर भूमिगत रहते हैं लेकिन बहुत-से झाड़ियों और पेड़ों के तनों में रहते हैं। कुछ बहुत कुशल तैराक और गोताखोर होते हैं। इनमें पूर्ण कायांतरण होता है और प्रायः विभिन्न प्रकार के लार्वा होते हैं। भृंग भूमध्यरेखा से लेकर ध्रुवों तक, समुद्रतट से लेकर ऊंचे ऊंचे पर्वतों

1. किरमिजी रंजक : Cochineal dye
2. कवच : Shells
3. पंखवर्म : Alytra

तक, घासस्थलों, मरुस्थलों, घरों, भंडारघरों, कारखानों, पुस्तकालयों, संग्रहालयों आदि में यानी सभी जगह पाए जाते हैं।

भृंगों का गण *कोलियोप्टेरा* (वर्मपंखी) है जो इस समय पृथ्वी पर सबसे प्रमुख कीट गण है। व्यष्टि और जाति दोनों रूप से इनकी संख्या अन्य सभी समूहों से अधिक है। यह गण अत्यधिक आर्थिक महत्व का है क्योंकि ये खेतों में फसलों का सत्यानाश कर देते हैं, अन्न के भंडारों तथा अन्य कच्चे और तैयार माल को खराब कर देते हैं। कुछ भृंगों से कीमती दवाइयां मिलती हैं जैसे कि कैन्थेरिडीन और कुछ कीटों का जेवर बनाने में उपयोग किया जाता है। कुछ भृंगों को फलवृक्षों के हानिकारक कीटों के सफल नियंत्रण के लिए काम में लाया जाता है।

कोलियोप्टेरा गण को जटिल उपगणों अधिकुलों[1] और कुलों में विभाजित किया गया है जिनकी सूची इतनी लंबी है कि उन सबको यहां देना संभव नहीं है। कुछ महत्वपूर्ण कुल हैं : *सीसिन्डेलिडी, कैराबिडी, जाइरिनिडी, स्टैफीलिनिडी, हाइड्रोफिलिडी, लैम्पाइरिडी, कैन्थेरिडी, कॉक्सिनेलिडी इलेटेरिडी, बप्रेस्टिडी, टेनीब्रियोनिडी, सेरेम्बइसिडी, स्कैरेबिआइडी, कुरकुलियोनिडी* आदि।

सीसिन्डेलिडों को व्याघ्र भृंग कहते हैं क्योंकि ये जमीन पर रहकर बहुत शिकार करते हैं। ये उन भृंगों में से हैं जिन्हें बहुत आसानी से पहचाना जा सकता है और जो प्रायः चटकदार हरे, भूरे या काले रंग के होते हैं जिन पर सफेद पट्टियां होती हैं। उनकी टांगें लंबी और विसर्पी[2] होती हैं जिनकी वजह से ये बालू के मैदानों पर भी तेजी से दौड़ सकते हैं। इनकी आंखें उभरी हुई और दृष्टि पैनी होती है। हालांकि इनमें उड़ने की पर्याप्त क्षमता होती है लेकिन ये अपना अधिकांश समय नदी के पास, नम स्थानों में, धान के खेतों और समुद्र तटों पर अपने शिकार का पीछा करते हुए बिताते हैं। उनके लार्वा मिट्टी में बने सीधे गड्ढों में रहते हैं और एक या अधिक साल में धीरे धीरे बढ़ते हैं। प्रौढ़ों की भांति लार्वा भी परभक्षी होते हैं। वे अपने गड्ढों के प्रवेश द्वार पर रहते हैं और उनकी पहुंच के भीतर जाने वाले किसी भी असावधान कीट को झपट लेते हैं। *सिसिन्डेला प्रिंसेप्स* एक मखमली-काला भृंग है जिसकी बगलों में सेम की फली के दाने जैसे पीले धब्बे और बीच में एक चौड़ी पीली पट्टी होती है। *सिसिन्डेला सेक्समेकुलेटा* छह धब्बों वाला व्याघ्र भृंग है जो धान के खेतों के पास आप अपना घर बनाता है जहां यह धान-मत्कुण *लेप्टोकोरिक्सा वैरीकॉर्निस* का शिकार करता है। इस नाते यह भृंग किसानों का मित्र है। हमारे समुद्र तटों, विशेषतया पश्चिमी तट, पर चार धारियों वाला व्याघ्र भृंग *सिसिन्डेला क्वाड्रीलिनियेटा* पाया जाता है जो लौटती लहरों के कारण रेत में फंसी समुद्री मत्कुण *हैलोबेटस* का शिकार करता है।

कैरोबिडी भृंग स्थायी रूप से जमीन पर रहते हैं और यथासंभव उड़ने से बचते हैं।

---

1. अधिकुल : Super family
2. विसर्पी : Sprawling

उनमें से बहुत-से तो उड़ ही नहीं सकते क्योंकि उनके पक्षवर्म पूरी तरह से और मजबूती से पृष्ठ से चिपके रहते हैं और फैल नहीं सकते तथा उनमें पश्चपंख नहीं होते। वे जमीन पर ही शिकार करते हैं और विभिन्न प्रकार के कीट खाते हैं और विशेषतया इल्लियों, टिड्डों और घोंघों तथा अपादकों (मैगट) का भोजन करते हैं। *एन्थिया सेक्सगटेटा* एक बड़ा, छह धब्बे वाला काला भृंग है। यह असाधारण भृंग भारत का सामान्य जमीनी भृंग है। चिपके पक्षवर्मों के कारण यह पूरी तरह अपंखी होता है। यह देखा गया है कि यह रोज सौ या दो सौ टिड्डे चट कर जाता है। *कैलोसोमा* एक अन्य जाना पहचाना बड़े आकार का भू-भृंग है जो घोंघों और मक्खी के अपादकों को खाता है। इसे स्टील जैसी नीली या तांबे जैसी चमक के कारण फौरन पहचान लिया जाता है। सबसे असाधारण भू-भृंग निश्चित रूप से सुप्रसिद्ध बमबारी करने वाले भृंग *ब्रैकिनस* और *फेरोप्सोफस* हैं। छेड़े जाने या डराए जाने पर यह भृंग अपनी गुदा के सिरे से एक दुर्गंधयुक्त और दाहक वाष्पशील द्रव जोरदार धमाके से निकालता है और भाग निकलता है तथा पीछे रह जाता है तीखे धुएं से पराजित एकदम भ्रमित शत्रु। धुआं और द्रव दोनों ही बहुत ज्यादा दाहक यानी जलन पैदा करने वाले होते हैं जिससे मानव की चमड़ी पर फफोले पड़ जाते हैं। कैराबिड भृंग हिमालय पर अत्यधिक ऊंचाई पर पाए जाते हैं। ये हिमनदों और बर्फ में मिलते हैं। हिमालय पर्वत पर 5300 मीटर की ऊंचाई पर पाए जाने वाला भृंग अमारा ब्रूसी और 5000 मीटर की ऊंचाई पर पाए जाने वाला *बेम्बिडियॉन नाइवीकोला* ऐसे कीट हैं जो सबसे ज्यादा ऊंचाई पर पाए जाते हैं। सबसे विचित्र आकृति का स्थली भृंग *मॉरमोलाइस* है जिसके पक्षवर्म दोनों बगलों में पत्तियों की तरह फैले रहते हैं जबकि सिर लंबा होता है जिससे शरीर एक अजीब कुंजी जैसा दिखाई देता है। *सेलीना* की आकृति चींटी जैसी दिखाई देती है।

जाइरिनिडी जाने पहचाने चकई भृंग[1] हैं। ये छोटे, चमकीले काले, झुंड में रहने वाले भृंग हैं जो छायादार जगहों पर शांत जल के ऊपर समूह में आगे पीछे तैरते रहते हैं। इनके तैरने का तरीका भी बहुत विचित्र है। ये एक गोल घेरे में बहुत ही जटिल चक्रों में गोल गोल तैरते रहते हैं। छेड़े जाने पर ये फौरन पानी में गोता लगा देते हैं और अपने साथ एक चमकता बुलबुला साथ ले जाते हैं। इनकी आंखें भी असाधारण होती हैं। ऊपरी भाग हवा में देखने के लिए होता है और निचला भाग पानी में देखने के लिए होता है तथा एक क्षैतिज खांच इन दोनों भागों को अलग करती है। एक ही समय में यह देख सकता है कि ऊपर हवा में और नीचे पानी में क्या हो रहा है। एशियाई *पॉरोरिन्कस* एक महाकाय चकई भृंग है जो 15 मि. मी. तक लंबा होता है लेकिन *गाइरिनस* की अधिकांश जातियां 3 मि.मी. से ज्यादा लंबी नहीं होतीं।

पॉसिडी कुल में सबसे विचित्र दिखाई देने वाले भृंग हैं। इनका शरीर चपटा और पिचका

---

1. चकई भृंग : Whirligig

हुआ तथा शृंगिकाएं अनुपात से कहीं अधिक फूली हुई होती हैं। पक्षवर्म छोटे होते हैं जो पूरे उदर को नहीं ढकते। पॉसिड भृंग चींटियों के नीड़ में रहते हैं और उन्हें एक सुगंधित स्राव देते हैं जिसे चींटियां बड़े चाव से खाती हैं। *सेरैटोडेरस, प्लेटीरोपैलस* आदि हमारे देश में सामान्य रूप से मिलने वाले भृंग हैं।

कॉक्सीनेलिडी कुल का सोनपंखी भृंग हमारे देश में पाया जाने वाला सबसे सुंदर भृंग है। ये आमतौर पर झाड़ियों में रहते हैं। भारतवर्ष में कई प्रकार के सोनपंखी भृंग मिलते हैं लेकिन सभी गोल या अंडाकार होते हैं। इनके रंग लाल या भूरे और काले धब्बे वाले होते हैं तथा शरीर पर सूक्ष्म रोम होते हैं। इनके लार्वा चमकदार पीले और अजीब तरह के कांटेदार होते हैं। ये पत्तियों पर पाए जाते हैं। सात धब्बों वाले सुंदर सोनपंखी भृंग *कॉक्सीनेला सेप्टेम्पंक्टेटा* पूरे भारत में व्यापक रूप से पाया जाता है। यह चमकीले लाल रंग का भृंग है। जिस पर विभिन्न आकार वाले सात सुस्पष्ट काले धब्बे होते हैं। लार्वे और प्रौढ़ दोनों ही विभिन्न प्रकार के एफिड खाते हैं और इस प्रकार ये लाभकारी कीट हैं। इन भृंगों का बहुत भारी जमघट हिमालय की संरक्षी बर्फीली परत के नीचे पाया जाता है। एक बार ऐसा जमघट मिला जिसमें बीस लाख भृंग थे। *चिलोमेनीज* मैदानों में पाया जाने वाला दूसरा सामान्य सोनपंखी भृंग है। इसे कभी कभी *मेनोचिलीज* भी कहते हैं। यह छोटे साइज का पीला या लाल रंग जैसा भृंग होता है जिसके शरीर पर 6 काली लहरदार धारियां होती हैं। यह भी परभक्षी भृंग है जो एफिडों (माहू) को खाता है। बंदी बनाकर रखे गए एक भृंग ने एक दिन में लगभग दो सौ एफिड खाए। बैंगन के पौधे की पत्तियों पर पाए जाने वाला अपेक्षाकृत बडा सोनपंखी भृंग *एपीलैक्ना* फीके लाल-भूरे रंग का और काले धब्बे वाला होता है। *एपीलैक्ना* की दो जातियां आम हैं। एक है *इ. ड्यूओडेसिस्टिग्मा* जिस पर बारह धब्बे होते हैं और दूसरा है *इ. विजिन्शिऑक्टोपंक्टेटा* जिस पर छोटे छोटे 28 धब्बे होते हैं। दोनों ही जातियां पत्तियों पर पीले रंग के अंडों के गुच्छे देती हैं। तरुण पीले लार्वे खाने के लिए पत्ती के कोमल ऊतक को खुरच डालते हैं। ये दो सोनपंखी भृंग प्रायः आलू और कुकरबिटों के लिए हानिकारक हैं।

लैम्पाइरिडी या जाने पहचाने जुगनू और दीप्तकीट[1] भी भृंग हैं। दीप्तकीट एक पंखहीन कृमि जैसी प्रौढ़ मादा या लार्वे होते हैं। जुगनू बहुत छोटे और पंखयुक्त नर होते हैं। हालांकि ये दोनों सारे भारत में पाए जाते हैं लेकिन नम ऋतु में मैदानों में और विशेषरूप से छोटी छोटी पहाड़ियों वाले नम क्षेत्रों में बहुत होते हैं। दीप्तकीट लगभग 3 से.मी. लंबा, चपटा और स्पष्ट रूप से पटित होता है तथा आठवें उदर खंड[2] पर नीचे की ओर एक सफेद अंडाकार धब्बा होता है। यह धब्बा दीप्त अंग[3] है जिससे कीट की इच्छा होने पर प्रकाश

1. दीप्तकीट : Glow worm
2. उदर खंड : Abdominal segment
3. दीप्त अंग : Luminous organ

निकलता है। दीप्तकीट से निकलने वाला प्रकाश फीका, हरापन लिए हुए सफेद रंग का और ठंडा होता है। स्विच खोलते ही प्रकाश तेजी से फैल जाता है लेकिन स्विच बंद किए जाने पर अपेक्षाकृत धीरे धीरे मंद होता हुआ मिटता है। दीप्तकीट रात्रिचर प्राणी है। यह मृदु घोंघों को खाता है और प्रतिदिन लगभग आधा दर्जन घोंघे चट कर जाता है। घोंघे को अपनी टांगों से मजबूती से पकड़कर दीप्तकीट इसके पृष्ठ (पीठ) पर चढ़ बैठता है और इसके मांस का टुकड़े टुकड़े करके भक्षण करता है। ऐसा करते समय वह अपनी रोशनी को बंद रखता है। दीप्तकीट जमीन पर होते हैं जबकि जुगनू पेड़ों पर इस प्रकार उड़ते हैं जैसे रात को आकाश में असंख्य तारे जगमगाते हैं।

हमारे वनों में बड़े और काष्ठीय वृक्षों में *ब्यूप्रेस्टिडी* कुल के प्यारे प्यारे रत्न भृंग[1] होते हैं। ये आकार में बड़े, रंग में लाल परावर्तनों[2] वाले धात्विक-हरे कीट हैं। इन भृंगों के लार्वे पेड़ के तनों के भीतर सुरंग बना लेते हैं और इन्हें प्रौढ़ बनने में लगभग एक साल लग जाता है। सबसे सामान्य भृंग *क्राइसोक्रोआ* है जिसकी लगभग बीस जातियों का पता है। इन भृंगों के रंगदीप्त[3] पक्षवर्म को रत्न कार्य में जड़त[4] के लिए उपयोग किया जाता है।

टकटक भृंग[5] इलेटरिडी कुल का वह सुंदर रंगों से भरपूर भृंग है जो प्रायः वनों में पाया जाता है या बरसात के दौरान रोशनी पर मंडराता है। अधिकांश टकटक भृंग लगभग एक से.मी. लंबे होते हैं लेकिन कुछ तिगुने लंबे होते हैं। इन सभी का अभिलक्षण यह है कि उनकी अगली टांगों के बीच में एक विशेष मजबूत कंटक जैसा टेढ़ा प्रबर्ध होता है जो पीछे एक छोटे-से गर्त में फिट रहता है। जब कोई भृंग गिर जाता है तो वह दूसरे भृंगों की तरह असहाय-सा लात चटकाते हुए संघर्ष नहीं करता। यह तो बस अपने सिर की नोक और उदर पर अपने शरीर को धनुष की तरह बना लेता है और तब अपने कांटे को गर्त से बाहर निकाल लेता है और शरीर को ऊपर की ओर पटकता है जिससे टकटक की आकस्मिक आवाज निकलती है। उसके बाद भृंग जरा-सा आगे सरक कर एक बार फिर अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है। लार्वे लंबे और क्षीणकाय प्राणी होते हैं जिन्हें तारकृमि[6] कहते हैं और जो विभिन्न पौधों की जड़ें खाते हैं।

मानसून ऋतु के दौरान अत्यधिक संख्या में पाए जाने वाले विशिष्ट भृंग फफोला-भृंग[7] हैं जिन्हें कैन्थेरिड भी कहते हैं। ये आमतौर पर बड़े कीट होते हैं और तेज धूप के शौकीन होते हैं। पहली बारिश के साथ ही ये अचानक रहस्यमय ढंग से बहुत बड़ी संख्या में प्रकट

---

1. रत्न भृंग : Jewel beetle
2. परावर्तन : Reflection
3. रंगदीप्त : Iridescent
4. जड़त : Inlays
5. टकटक भृंग : Click beetle
6. तारकृमि : Wire worm
7. फफोला भृंग : Blester beetle

हो जाते हैं और अगली वर्षा तक पूरी तरह गायब हो जाते हैं। कुछ काले रंग और लाल पट्टियों वाले तथा कुछ धात्विक-नीले या हरे रंग के होते हैं। प्रौढ़ भृंग फूल की पंखुड़ियों, विशेषतया पीली पंखुड़ियों, पराग और घास, धान तथा ज्वार-बाजरे की बालियों को खाते हैं। अंडे मिट्टी में एक पुंज में दिए जाते हैं। नया निकला त्रिनख[1] लार्वा टिड्डों या जमीन में नीड़ बनाने वाली मक्खियों के अंडों की तलाश में इधर उधर घूमता है। वे इस प्रकार घूमते तो हैं लेकिन उनमें से कुछ मक्खियों के शरीर के बालों से चिपक जाते हैं और इस तरह बिना परिश्रम के ही मक्खियों के नीड़ों तक पहुंच जाते हैं। नीड़ में घुस जाने के बाद उनका पहला काम टिड्डे या मक्खी के अंडों को सूखे ही निगल जाने का होता है। इस पहले आकार के बाद लार्वा निर्मोक के बाद एक बिना पांव वाला सुस्त अपादक बन जाता है और प्रायः एक तीसरे प्रकार के लार्वा का रूप धारण कर लेता है। इसके बाद यह मक्खी द्वारा संचित शहद खाता है और प्यूपा बन जाने के बाद प्रौढ़ फफोला भृंग बनकर निकल जाता है। हमारे देश में फफोला भृंगों की अनेक जातियां हैं। *माइलेब्रिस पश्चुलेटा* उनमें सबसे बड़ी है। यह लगभग ढाई से.मी. लंबी, काली और लाल धारियों वाला भृंग है। इसे पीले फूल पसंद हैं और यह पंखुडियां तथा परागकण खाता है। *माइलेब्रिस फेलेरेटा* जाति के भृंग की लंबाई लगभग सवा से.मी. होती है और इसका स्वभाव बिल्कुल *मा. पश्चुलेटा* जैसा होता है। *एपीकॉटा एक्टीआ* नीले रंग का, *एपीकॉटा टेनुईकॉलिस* धात्विक-हरे रंग का और *नैथोस्पैठा रुक्सी* भूरे रंग वाला और कुछ लंबा भृंग होता है। ये सब परागकणों, पंखुड़ियों और धान, ज्वार, बाजरा तथा घासों की कोमल बालियों का आहार करते हैं। छेड़े जाने पर सभी फफोला भृंगों के पांवों के जोड़ से एक तैलीय पीले या नारंगी द्रव की सूक्ष्म बूंदें निकलती हैं। इस द्रव से मानव की त्वचा पर दर्दभरे फफोले पड़ जाते हैं। सुखाए गए फफोला-भृंगों का पाउडर दवाइयां और केश-तेल के निर्माण में काम आता है। मादा फफोला भृंग सर्दी आने से पहले मिट्टी में अंडे देती है और लार्वे टिड्डों तथा मक्खी जैसे हाइमनोप्टेरा के अंडे खाते हुए धीरे धीरे बढ़ते हैं।

घुन या थूथन भृंगों[2] की अनेक जातियां हैं जिनका सिर आगे की ओर चोंच के रूप में निकला रहता है। अधिकांश घुन छोटे आकार के होते हैं लेकिन नारियल भृंग *रिंकोफोरस फेरुजीनियस* काफी बड़ा होता है। मादा नारियल के पेड़ों की पत्तियों के आच्छद पर और विशेषतया ताड़ी निकालने वालों द्वारा बनाए गए कट में अंडे देती है। अंडों से निकलने के बाद लार्वा मृदु ऊतक में सुरंग बनाकर प्यूपावस्था में पतले नारियल के रेशों से एक कोया बनाता है। ऐसा करते हुए यह पेड़ को मार डालता है। कभी कभी पेड़ को अत्यधिक क्षति पहुंचती है। हमारे घुनों में सबसे लंबा और सबसे असाधारण घुन *सिर्टोट्रेकिलस लांजीमेनस* है। इस जाति के नर की अगली टांगें बहुत लंबी यहां तक कि शरीर से अधिक

1. त्रिनख : Triungulin

2. थूथन भृंग : Snout beetles

लंबी होती हैं। यह घुन बांस के प्ररोहों[1] का रस पीता है और लार्वा बांस के पेड़ में सुरंगें बना लेता है।

सबसे दिलचस्प कोलियोप्टेरा गुबरैले या स्कैरब भृंग हैं जिनकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। स्कैरब सामान्यतया हट्टे-कट्टे शरीर वाला भू-भृंग है। इसका रंग काला या भूरा और चमकदार होता है और सिर चौड़े बेलचे जैसा होता है। सिर के ऊपर आगे की ओर प्रायः एक विचित्र आकार का सींग होता है। हालांकि स्कैरब भृंग उड़ सकता है पर यह बहुत तेज चलता है और प्रायः थोड़े से समय में ही काफी दूरी तय कर लेता है। मादा अधिकांश कीटों की तरह सैकड़ों या हजारों की संख्या में अंडे नहीं देती बल्कि एक या दो अंडे ही देती है। लेकिन इसका अत्यधिक विकसित मातृ और पितृ भाव इसकी संतति की रक्षा करता है। स्कैरब का लोकप्रिय नाम गुबरैला है क्योंकि बकरी और गाय के गोबर की गेंद बनाकर यह उसको लुढ़काता है।

शाकाहारी ढोर के ताजा शमल[2] को यह अपनी तेज घ्राण शक्ति से दूर से ही सूंघ लेता है और उसकी ओर खिंचा चला जाता है। जाने कहां से आकर यह अपने बेलचे जैसे सिर से शमल का कुछ हिस्सा अलग कर लेता है और अपने चिबुकों[3] तथा टांगों की सहायता से इसे गोल गोल घुमाकर गेंद की शक्ल का बना देता है। इसके बाद गेंद को पिछली टांगों से पीछे की ओर धकेलते हुए भृंग भी उल्टा चलता रहता है। कभी कभी दो भृंग साथ मिलकर गेंद को ले जाते हैं—एक उसे पीछे धकेलता है और दूसरा आगे खींचता है। गेंद को काफी दूर तक प्रायः आधा किलोमीटर, लुढ़काकर ले जाया जाता है। कभी कभी कई भृंगों में गेंद पाने के लिए कड़ी प्रतियोगिता होती है। प्रत्येक भृंग को यही आशा रहती है कि अकेला वही गेंद पा लेगा। सबसे शक्तिशाली, सबसे परिश्रमी या सबसे भाग्यशाली ही अंततः गेंद को ले भागने में सफल होता है। गेंद आश्चर्यजनक रूप से बड़ी होती है। प्रायः जो भृंग इसे लुढ़काता है उससे यह साइज में तीन गुना बड़ी होती है। शमल गेंद को अकेले हथियाने के लिए बहुत भीषण युद्ध होता है जिसने गेंद हासिल कर ली है अगर उसका ध्यान एक मिनट के लिए भी गेंद से इधर-उधर हो जाता है तो गेंद चुरा ली जाती है। तलाशते तलाशते जब उपयुक्त स्थल मिल जाता है तो भृंग गेंद को लुढ़काना बंद कर देता है और उसके नीचे की जमीन में जोर शोर से खुदाई शुरू कर देता है और धीरे धीरे गेंद को पूरी तरह से जमीन में गाड़ देता है। खोदने में अगली टांगों का और खोदी गई मिट्टी को हटाने में पिछली टांगों का उपयोग किया जाता है। गेंद जमीन में प्रायः डेढ़ मीटर गहराई पर गाड़ दी जाती है। छोटे-से प्राणी को यह काम करने के लिए बेहद धैर्य रखना पड़ता है और ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। गाड़ी गई शमल गेंद अंड-नाशपाती की

1. प्ररोह : Shoot
2. शमल : Dung
3. चिबुक : Mandibles

तरह काम में लाई जाती है। इसके ऊपर अंडे दिए जाते हैं और उनसे निकलने वाले लार्वे शमल को खाते हैं। प्यूपा बनने से पूर्व लार्वा पूरे साल या उससे भी अधिक समय तक परिवर्धित होता है। एक या दो शृंगवाले चमकीले विशाल भृंग *हेलियोकॉप्रिस ब्यूसिफेलस* और *हेलियोकॉप्रिस जीगेस* गुबरैले हैं। *स्कैरेबीयस गैजेटिक्स* और *सिसिफस* ऐसे भृंग हैं जिनकी टांगें बहुत लंबी होती हैं। आमतौर पर भूरे या काले रंग वाला गैंडा भृंग एक दिलचस्प गुबरैला है। इसके नर के सिर पर गैंडे जैसा सींग होता है। यह सभी मैदानी इलाकों में पाया जाता है और नारियल उगाए जाने वाले क्षेत्र में तो विशेष रूप से मिलता है। प्रौढ़ भृंग रात के समय उड़ते हैं और ताड़ के तहबने प्रपर्णों[1] से होकर कोमल वर्धी स्थल[2] को खाते हैं। जब नारियल के प्रपर्ण खुलते हैं तो इनमें उलटे-सीधे छेद होते हैं। प्रायः एकमात्र वर्धी स्थल नष्ट हो जाता है और वृक्ष की वृद्धि पूरी तरह रुक जाती है और आखिर में पेड़ मर जाता है। लार्वा खाद गर्तों में और दूसरे सड़ते, वनस्पति पदार्थ में प्रजनन करता है। सेटोनिड या चेफर भृंग स्कैरबों का एक सुंदर समूह है। ये मध्यम आकार और चमकदार धात्विक रंगों वाले होते हैं। ये दिवाचर होते हैं और परागकण तथा कोमल पंखुड़ियां खाने के लिए फूलों पर जाते हैं। इनके लार्वे सड़ रही सब्जियों और जड़ों में प्रजनन करते हैं या चींटियों के नीड़ में रहते हैं। *नारिसियस* और *रॉम्बोराइनस* दो सामान्य धात्विक हरे रंग के सेटोनिड हैं जो वन क्षेत्रों के पास बहुत ज्यादा मिलते हैं।

बर्र और बरट

बर्रों और बरटों का नाम लेते ही हमारे दिमाग में दुष्ट कीटों के कष्टदायक डंकों और उनकी क्रोध भरी भनभनाहट कौंध जाती है। हमारा भय निराधार भले ही न हो पर है अतिरंजित क्योंकि सच्चाई यह है कि बर्रें और बरटें एकदम से अहानिकर प्राणी हैं जो आत्मरक्षा को छोड़कर मनुष्य पर विरले ही आक्रमण करते हैं। अगर उन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया जाए तो वे मनुष्य की ओर ध्यान भी नहीं देते और अंड-नीड़ बनाने, सामान जुटाने और अपने बच्चों की देखरेख के काम में जुटे रहते हैं। लेकिन किसी बर्र या बरट को जरा-सा छेड़कर देखिए, सैकड़ों एकदम आप पर हमला बोल देंगे और आपके शरीर में दर्द-भरे डंक घुसेड़ देंगे। कई मामलों में ये उन सभी दूसरे कीटों से भिन्न हैं जिनके बारे में हम बता चुके हैं। दूसरे मामलों में बच्चे स्वयं खाना खाते हैं और प्रौढ़ आमतौर पर उतने समय तक जीवित रहते हैं जब तक अंडे देने के लिए उनका जिंदा रहना जरूरी है। लेकिन बर्रों और बरटों के मामले में प्रौढ़ ही जीवन के सारे कार्य करते हैं और लार्वे एकदम असहाय और पूरी तरह से प्रौढ़ों पर निर्भर करते हैं। लार्वे न तो शिकार करते हैं और न आहार जुटाते हैं और न ही कोया बनाते हैं। यहां तक कि वे बाहर भी नहीं जाते। प्रौढ़ ही उनके लिए

1. प्रपर्ण : Frond
2. वर्धी स्थल : Growing point

ये सारे काम करते हैं।

बर्रों और बरटों का गण *हायमनोप्टेरा* है। हमारे देश में बर्रों और बरटों की अनेक भिन्न भिन्न किस्में हैं। उनमें से कुछ एकाकी जीवन बिताते हैं लेकिन दूसरे सामाजिक कीट हैं। सामाजिक बर्रों में रानियां, श्रमिक और पुमक्खियां[1] होती हैं। कुछ बर्र जमीन खोदने में बहुत कुशल होते हैं, दूसरे पत्थरों में सुरंग बनाने में माहिर होते हैं तो कुछ पंक, दुमट मिट्टी, काष्ठ रेशा, कागज की लुगदी और अन्य सामग्री लेकर नीड़ का निर्माण करते हैं।

भारत में पाए जाने वाले सामाजिक बर्रों में *वेस्पा ओरियन्टेलिस* और *पॉलिस्टीज हेब्रीयस* को सामान्य उदाहरण के तौर पर लिया जा सकता है। *वे. ओरियन्टियेलिस* बड़ी, पीली और लाल जैसी जाति है जबकि *पॉ. हेब्रीयस* अधिकतर शहद जैसी पीली और अपेक्षाकृत छोटी जाति है। दोनों जातियां बहुरूपी हैं और उनकी कॉलोनी में अपूर्ण मादाएं या श्रमिक, पूर्ण मादाएं या रानियां और नर भी होते हैं। उनकी उग्रता और उनके डंक की विषालुता के कारण भारत में इनका समुचित अध्ययन नहीं हुआ है। वे वृक्षों, प्रलंबी चट्टानों या त्याग दिए गए मकानों में शुद्ध कागज के बड़े बड़े छत्ते बनाते हैं। सूखे पेड़ों के तनों और लकड़ी के लट्ठों के उस स्थल को लार से गीला कर लेते हैं जहां नीड़ बनाना होता है और फिर सारे दिन कड़ी मेहनत से लकड़ी तथा रेशे के टुकड़े निकालते हैं। उसके बाद रेशों को अच्छी तरह चबा चबाकर महीन लुगदी बना ली जाती है। लुगदी से ज्यामितीयतः सही सही षटकोणीय कोष्ठिकाएं बनाते हैं जो लटकी हुई और नीचे से खुली होती हैं। ये कोष्ठिकाएं क्षैतिज छत्ते के रूप में और एक के नीचे एक करके बनाई जाती हैं। *वेस्पा* अपने सभी छत्ते एक कागज के आवरण से ढक देता है और चारों ओर एक गलियारा छोड़ देता है जो चलने फिरने के लिए पर्याप्त होता है और उसकी वजह से श्रमिक नीड़ के हर भाग में आसानी से आ जा सकते हैं। नीड़ों का व्यास तीन-चौथाई मीटर होता है और इनके बड़े आकार के भार के कारण मजबूत शाखाएं भी मुड़ जाती हैं। बर्रें इल्लियों, प्रार्थी मेन्टिडों, मत्कुणों, टिड्डों, भृंगों, मरे हुए सांप और अन्य दूसरा मांस खाते हैं। वे फलों के रस, मिसरी, चीनी आदि के भी बहुत ज्यादा शौकीन होते हैं और इन्हें बाजारों में मिठाइयों की दुकानों में झुंड के रूप में मंडराते हुए देखा जा सकता है।

मक्खियां (मक्षिकाएं)

भारत में मक्खियां अतिप्राचीन काल से सुप्रसिद्ध रही हैं। मधुमक्खियां सामाजिक कीट हैं लेकिन सभी मक्खियां सामाजिक कीट नहीं होतीं। भारत में अनेक एकल मक्खियां पाई जाती हैं। ऐसा नहीं है कि सभी मक्खियां मकरंद एकत्रित करती हों और शहद बनाती हों लेकिन सभी परागकणों को एकत्रित और भंडारित करती हैं। तक्ष मक्खियां और गुंज

1. पुमक्खियां : Drone

मक्खियां भारत की सर्वाधिक सामान्य मधुमक्खियां हैं।

हमारे देश में मधुमक्खियों की जो तीन जातियां पाई जाती हैं उनमें *एपिस डॉर्सेटा* सबसे बड़ी है। यह पेड़ों, प्रलंबी चट्टानों के कगारों और ऊंची ऊंची छत वाले भवनों में छत्ते बनाती है जो सबसे बड़े होते हैं। यही वह जाति है जिसका शहद इकट्ठा करके वन कर्मचारी बाजारों में बेचते हैं। *एपिस इंडिका* मध्यम आकार की जाति है जिसे आंशिक रूप से पालतू बनाया गया है। यह मधुमक्खीशालाओं[1] में लकड़ी के ढांचों में अपने छत्ते बनाती है। *एपिस फ्लोरिया* सबसे छोटी जाति है जो झाड़ियों में छोटे छोटे छत्ते बनाती है। मधुमक्खियां फूलों से मकरंद और परागकण एकत्रित करती हैं, मकरंद श्रमिक मक्खी की आंत्र में आंशिक रूप से पचता है और निर्जम-परिरक्षकों[2] के मिलने से गाढ़ा बन जाता है। पाचन प्रक्रिया के दौरान मकरंद में मौजूद विभिन्न प्रकार की शर्कराएं ग्लूकोस में बदल जाती हैं। इसके बाद शहद मोम कोष्ठिकाओं में उगल दिया जाता है। बाद में इन कोष्ठिकाओं को मोम की टोपी से बंद कर दिया जाता है। मक्खियां और लार्वे शहद और पराग खाते हैं।

जानी पहचानी महाकाय तक्ष मक्खी *जाइलोकोपा* कठोर और सूखी लकड़ी में सुरंग बनाती है। यह सामाजिक कीट नहीं है। यह एक चमकदार काले रंग वाली जाति है जिसके नर का वक्ष[3] कोमल पीले रोमों से ढका रहता है। तक्ष मक्खी लकड़ी के लट्ठों और बीमों[4] में नीड़ बनाती है। यह लंबी जीभ वाली मक्खी है जो मुख्यतया पराग एकत्रित करती है मकरंद नहीं। फूलों के पर-परागण[5] में इसकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। यह सारा दिन और पूर्णमासी की रात में भी एक फूल से दूसरे पर सक्रिय रूप से आती जाती रहती है। यह हर मिनट तीस से लेकर चालीस फूलों पर जाती है।

गुंज मक्खियां हिमालय तक सीमित हैं और भूमिगत नीड़ बनाकर परागकण जमा करती हैं। ये स्थूलकाय और घने बालों वाली मक्खियां हैं। इनका रंग चमकीला लाल या पीला होता है।

---

1. मधुमक्खीशाला : Apiaries
2. निर्जम-परिरक्षक : Antiseptic preservative
3. वक्ष : Thorax
4. बीम : Beam
5. पर-परागण : Cross pollination

5

तितलियां और शलभ

भारत सुंदर तितलियों और प्यारे प्यारे शलभों का देश है। तितलियां इस देश के प्राकृतिक सौंदर्य में चार चांद लगा देती हैं और शलभ शाम के शांत वातावरण में एक फूल से दूसरे फूल तक देवदूतों की तरह चुपचाप उड़ते हैं। तितलियों और शलभों की हमारी धरोहर सचमुच महान और विविधतापूर्ण है। अधिकांश तितलियां और शलभ न केवल अहानिकर हैं बल्कि प्रकृति के अपरिहार्य जीव हैं। अधिकांश फूलों का पर-परागण[1] इन्हीं के द्वारा होता है। अगर यह कहा जाए कि फूलों का विकास या उनका सृजन निश्चित रूप से तितलियों और शलभों को विशेष आनंद तथा लाभ पहुंचाने के लिए ही हुआ है तो यह गलत न होगा।

तितलियों और शलभों के रंग-बिरंगे पंख और लंबा कुंडलित शुंड[2] उन्हें अन्य कीटों से अलग पहचान देते हैं। उनके शरीर और पंखों के रंग सूक्ष्म, सपाट, पतले और कोमल शल्कों[3] के कारण होते हैं जो एक निश्चित पैटर्न में व्यवस्थित होते हैं। तितलियों और शलभों का गण लेपिडॉप्टेरा (शल्क-पंखी गण) है, जो टिड्डों और तिलचट्टों के प्राचीन गणों की तुलना में बहुत ही नया है।

लेपिडॉप्टेरा में पूर्ण कायांतरण होता है। छोटे आकार वाले और प्रायः उत्तमरूप से गढ़े गए अंडे लार्वा के खाने योग्य पौधे पर दिए जाते हैं। लार्वा पंखहीन होता है जिसे इल्ली[4] कहते हैं। ये चिकने या रोमयुक्त, हरे या भूरे या काले होते हैं। इल्ली पत्तियों और कलियों को दनादन खाती है और तेजी से बढ़ती है। अपनी वृद्धि के दौरान यह अपनी त्वचा का कई बार निर्मोचन करती है। पूरी तरह बढ़ जाने के बाद यह सुस्त पड़ जाती है, खाना-पीना बंद कर देती है और किसी आश्रय स्थल की तलाश करके वहां जाती है तथा रेशमी धागों का कोया[5] बुनती है। वस्तुतया इल्ली की ठोस बन जाने वाली लार ही

---

1. पर-परागण : Cross pollination
2. शुंड : Proboscis
3. शल्क : Scale
4. इल्ली : Caterpillar
5. कोया : Cocoon

रेशम होती है। कोया तैयार हो जाने पर इल्ली उसके भीतर एक बार और अपनी त्वचा का निर्मोचन करती है और एक चिकनी, गतिहीन, ममी-जैसी अवस्था में आ जाती है जिसे प्यूपा कहते हैं। प्यूपा कुछ नहीं खाता। उसकी सतह पर भावी तितली की टांगों, पंखों आदि के चिह्न दिखाई देते हैं। प्यूपा की निष्क्रियता केवल दिखावटी होती है। बाहर से देखने पर इस बात का जरा भी आभास नहीं होता कि भीतर अंगों और ऊतकों का पुनर्निर्माण जोरों पर है। एक निरीह, कीड़े जैसी इल्ली का सुंदर तितली के रूप में रूपांतरण प्यूपा के भीतर ही होता है, जो एक चमत्कार है। उसके बाद बिना किसी चेतावनी के प्यूपा की त्वचा फटकर खुल जाती है और आप यह देखकर रोमांचित हो उठते हैं कि उस जगह से एक तितली धीरे धीरे सरक कर बाहर आती है, और अपने शानदार पंख फैलाती हुई फुर्र से उड़कर पास वाले फूल पर जा बैठती है।

तितलियों और शलभों में भेद कर पाना प्रायः कठिन है लेकिन जरा-सी सावधानी से दोनों को आसानी से पहचाना जा सकता है। अधिकांश तितलियां दिनचर और अधिकांश शलभ रात्रिचर होते हैं। तितलियों की शृंगिकाएं सामान्यतया लंबी और उनके सिरे कुछ कुछ घुंडीदार होते हैं जबकि अधिकांश शलभों की शृंगिकाएं छोटी, पिच्छकी[1] या शाखित होती हैं लेकिन घुंडीदार नहीं होतीं। अधिकांश तितलियां जब बैठी होती हैं, तो उनके पंख उनके शरीर के ऊपर सीधे खड़े रहते हैं या वे उन्हें बगलों में बाहर की ओर फैलाए रहते हैं जबकि शलभ अपने पंख शरीर के ऊपर छत की तरह ढलावदार रखते हैं। अधिकांश तितलियों में उड़ान के समय पश्चपंखों का आधार अग्रपंखों के नीचे मजबूती से जुड़े रहने के लिए फैला होता है। शलभों में पश्चपंख और अग्रपंख उड़ान के समय दृढ़ शूकों या छड़ों से जुड़े रहते हैं।

तितलियां

भारत में तितलियों की लगभग 1500 जातियां पाई जाती हैं। हमारे यहां की सबसे बड़ी तितली जो सबसे सुंदर भी है *ट्रोयडीज हेलेना मीनोस* है जिसका लोकप्रिय नाम पक्षीपंखी तितली भी है। इसका पंख-विस्तार 190 मि.मी. होता है। सबसे छोटी तितली *जिजीरिया ट्रोकिलस* है जिसका पंख-विस्तार 12 मि.मी. है। एक ही जाति की तितलियां विभिन्न जलवायु और विभिन्न ऋतुओं में लार्वा द्वारा खाए जाने वाले पौधों में परिवर्तन होने के कारण प्रायः देखने में एकदम भिन्न और बहुत भिन्न रंगों और चिह्नों वाली दिखाई देती हैं। लिंग के अनुसार इल्लियों के भोजन पादपों में भिन्नताएं, ऋतुओं और भौगौलिक आधार पर तितलियों के रंग, आकार और चिह्नों में पर्याप्त विभिन्नता देखने में आती है इसलिए मानसून या नम-मौसम की कुछ तितलियों के रूप प्रायः शुष्क-मौसम वाली तितलियों के

1. पिच्छकी : Plumose

रूप से भिन्न होते हैं और इसलिए पहले दोनों को गलती से दो जातियां मान लिया गया। निकट रूप से संबंधित जातियों के बीच बार बार संकरण के कारण हमें कभी कभी मध्यवर्ती रूप देखने को मिलते हैं। कभी कभी आधे नर और आधी मादा[1] या स्त्रीपुरुष देखने में आते हैं। भारी वायुमंडलीय प्रदूषण वाले बड़े और भीड़भरे शहरी क्षेत्रों में प्रजनन करने वाली तितलियों में *'औद्योगिक मेलानाइजेशन'* या पंखों की पृष्ठभूमि रंग में असाधारण कृष्णता और धब्बे या चिह्न दिखाई देते हैं।

तितलियां नियमित रूप से बड़े बड़े झुंडों में दूर दूर तक प्रवास करती हैं। उत्तरी अमरीका की मिल्कवीड तितली *डेनॉस प्लेक्सिपस* का आवर्ती प्रवास[2] सामान्यतया पतझड़ या शरद ऋतु में शुरू होता है। उस समय बड़े बड़े झुंड उत्तरी इलाकों से दक्षिणी इलाकों में जाते हैं। अगली बसंत ऋतु में उनकी वापसी उड़ान होती है। भारत में कुछ जातियां स्वभाववश ग्रीष्म ऋतु में मैदानी इलाकों से पहाड़ी इलाकों को प्रवास करती हैं और शीत ऋतु में पुनः मैदानों में लौट आती हैं। उदाहरण के लिए *पियरिस* तितली सर्दियों में हिमालय से उत्तरी भारत के मैदानों में आ जाती है और गर्मियों में वापस हिमालय क्षेत्र में लौट जाती है। हमारे देश की कुछ प्रवासी तितलियां—*एपियास एल्बीना यूप्लीआ कोर, डेनॉस लिम्निएस, डेनॉस जेनुशिया, डेनॉस क्राइसिपस, पैपिलियो डिमोलियस, हाइपोलिमस बोलिना, लैम्पीडेस बीटिक्स* आदि हैं। हालांकि यह बात एकदम स्पष्ट है कि लार्वा के भोजन की प्रचुरता या उसका अभाव तितली के प्रवास का प्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण कारण नहीं है लेकिन फिर भी वास्तविक कारण अब तक अज्ञात है और प्रवासों का महत्व अभी भी पूरी तरह रहस्य बना हुआ है।

प्रवास से मिलता जुलता तितलियों का एक और विचित्र व्यवहार है। सैकड़ों प्रौढ़ डेनेइड नम और रक्षित तथा छायादार इलाकों में किसी झाड़ी के शीर्ष या निचली शाखा पर अक्सर सामूहिक रूप से जमा हो जाती हैं। वे कई कई दिन तक झुंड में रहकर पूरी तरह से पौधे को ढके रहती हैं और फिर किसी दिन तितर-बितर हो जाती हैं।

हेस्पेरिड, डेनेइड, पैपिलियोनिड, पीरिड, निम्फेलिड, सेटिरिड और लाइसेनिड भारत की सामान्य तितलियां हैं।

हेस्पेरिड (Hesperid)

हेस्पेरिडों का लोक-प्रचलित नाम स्किपर है। ये आमतौर पर हृष्ट-पुष्ट और फीके रंग की तितलियां हैं जिनकी शृंगिकाएं मुदगराकार[3] और सिरे पर अजीब तरह से हुक वाली होती हैं। इनके लार्वे मुख्यतया घास, अदरक, हल्दी और अन्य संबंधित पौधों को खाते हैं। *बेओरिस*

---

1. आधा नर और आधी मादा : Gynandromorph
2. आवर्ती प्रवास : Periodic migration
3. मुदगराकार : Clavate

मेथियास सुप्रसिद्ध धान-स्कीपर है जो कई दूसरी घासों में भी प्रजनन करती है। *यूडेस्पिस फोलियस* अदरक और हल्दी की पत्तियों को उदरस्थ करके इन फसलों को कुछ क्षति पहुंचाती हैं।

डेनेइड (Danaid)

ये बड़ी बड़ी और चमकदार रंगों वाली तितलियां हैं जिनकी अगली टांगें गदाकार होती हैं। इनकी इल्लियां चिकनी, आमतौर पर पीलापन लिए हरी और विशिष्ट काली पट्टियों वाली होती हैं। कुछ तितलियों में छोटी मांसल गुलिकाएं[1] या शृंग होते हैं। ये ज्यादातर मिल्कवीड पौधे की पत्तियां खाती हैं। प्यूपे चिकने, स्थूलकाय, चमकीले होते हैं जिन पर रजताभ या स्वर्णिम-पीली चित्तियां होती हैं जिनकी वजह से ये सुंदर दिखाई देते हैं। ये रेशमी पैड द्वारा पत्तियों से सिर नीचे की तरफ किए लटके रहते हैं। भारत में सबसे सामान्य तितली *डेनॉस क्राइसिपस* है जिसका प्रचलित नाम साधारण-व्याघ्र[2] है। यह दक्षिण अफ्रीका, भारत, नेपाल, बर्मा तथा अन्य पड़ोसी देशों में पाई जाती है। यह प्रायः नारंगी-भूरे रंग की होती है और पंखों पर सफेद चित्तियां होती हैं जो काले धब्बों से घिरी रहती हैं। इल्ली धूसर रंग की होती है जिसके प्रत्येक देह खंड पर एक पीली धारी के अलावा पांच पांच काली और पीली पट्टियां होती हैं। इसके तीन जोड़ी मांसल प्रवर्ध[3] होते हैं जिनमें से पहली जोड़ी सबसे बड़ी होती है। यह मुख्यतया भारत के सामान्य *आककैलोट्रॉपिस* की पत्तियों पर प्रजनन करती है लेकिन प्रायः दूसरे एस्क्लेपियडों और *नेरियम ओडोरम* पर भी प्रजनन करती है। *डेनॉस जेनुशिया* कुछ कुछ बड़ी और काली तितली है और इसके पंख की शिराएं मोटे तौर पर काली होती हैं। इल्ली काली होती है जिसके खंडों पर सफेद और पीली रेखाएं तथा चित्तियां होती हैं एवं तीन मांसल प्रवर्ध होते हैं। यह भी कैलोट्रॉपिस खाती है। प्यूपा सुंदर हरा और चमकीला होता है जिस पर रजताभ या स्वर्णिम रंग की चित्तियां होती हैं। यह लार्वा खाद्य पादप की पत्ती की निचली सतह से एक छोटे रेशमी लंगर द्वारा सिर नीचे की ओर किए लटका रहता है। मैदानों की दूसरी सामान्य तितली *डेनॉस लिम्निएस* है जिसके काले पंखों पर नीलाभ-सफेद रेखाएं होती हैं। पीताभ-श्वेत इल्ली पर केवल दो जोड़ी मांसल प्रवर्ध और काली क्रास-छड़ें तथा पीली पार्श्व रेखा होती है। हरे प्यूपा में सामने स्वर्णिम चित्तियां और पीछे दांतेदार धात्विक रंग की पट्टी होती है। इसका भोज्य पादप भी *कैलोट्रॉपिस* है। *आइडिया* नीलगिरि पहाड़ियों पर पाई जाने वाली एक बड़ी तितली है। इसके पंखों पर लंबी पट्टियों की बजाय बड़े बड़े, नियमित, लगभग गोल काले चित्तीदार क्षेत्र होते हैं। दूसरे महत्वपूर्ण डेनेइड *यूप्लीया* जातियां हैं जो काली या बहुत काली से लेकर कालापन लिए

1. गुलिकाएं : Tubercles
2. साधारण-व्याघ्र : Plain-tiger
3. प्रवर्ध : Processes

भूरी तितलियां हैं जिन पर सफेद चित्तियां और रेखाएं होती हैं। लाइलैक वर्णी इल्लियों में चार जोड़ी मांसल प्रवर्ध होते हैं और अधिकतर *फाइकस बंगालेन्सि, फाइकस ग्लोमेरेटा, नेरियम* आदि पर प्रजनन करती हैं। *यूप्लीया कोर कोर* पूरे भारत में पाई जाने वाली सबसे सामान्य जाति है। *यूप्लीया कोर मल्स्बि* के पंखों की सफेद चित्तियों में नीले रंग की छाया होती है।

पैपिलियोनिड (Papilionid)

पैपिलियोनिड सुप्रसिद्ध पुच्छ-पंख तितलियां[1] हैं। वे हमारे देश के कीटों में सबसे बड़ी और सबसे सुंदर हैं। हालांकि अधिकांश तितलियां काली या भूरी होती हैं लेकिन चमकदार लाल और पीले रंग के विविधतापूर्ण चिह्नों से उनकी सुंदरता और भी बढ़ जाती है। पश्चपंखों में प्रायः एक लंबी पूंछ होती है जिसकी वजह से इनका नाम पुच्छ-पंख तितली पड़ा है। ये तितलियां प्रायः वनों, घासस्थलों, मैदानों और पहाड़ियों पर पाई जाती हैं और बारिश के दिनों में बहुत ज्यादा होती हैं। इल्लियों पर कभी भी रोम नहीं होते और मांसल प्रवर्ध या गुलिकाएं भी नहीं होतीं। वे आमतौर पर *एरिस्टोलोकिया*, अम्बेलीफरी, रुटेसी आदि के पत्ते खाती हैं। प्यूपा सिर नीचे किए लटका नहीं रहता बल्कि लार्वा भोज्य पादप की किसी कोमल शाखा पर पत्ती पर सिर ऊपर उठाए विचित्र तिरछी हालत में तना हुआ रहता है। उसके शरीर के बीच में एक सूक्ष्म रेशमी मेखला 'करधनी' होती है जिसके दो छोर पौधे की शाखा से संलग्न होते हैं। इसी मेखला द्वारा वह सीधा खड़ा होता है।

पैपिलियो, प्लाइडोरस, ग्रेफियम, ट्रोयडीज, चिलासा आदि सामान्य पैपिलियोनिड हैं। *पैपिलियो डिमोलियस* सामान्य नींबू की तितली है जिसके काले शरीर और पंखों पर फीकी पीली पट्टियां और चित्तियां होती हैं। इसके पश्चपंखों पर सुंदर लाल दृक्-बिंदु[2] होता है। इल्ली चिकनी और शुरू में भूरी होती है। इस पर कुछ अनियमित धब्बे होते हैं और यह चिड़िया की बीट[3] जैसी लगती है। लेकिन बाद में यह तिरछी सफेद पट्टियों वाले सुंदर हरे लार्वा में परिवर्तित हो जाती है। लार्वा मुख्य रूप से '*सिट्रस*' की पत्तियां खाता है लेकिन '*मुरैया*', '*ईगल मार्मेलॉस*', '*फरोनिया एलीफेन्टम*' आदि रुटेसी कुल के पौधों की पत्तियां भी खाता है। *पॉलिडोरस एरिस्टोलोकी* एक बड़ी काली तितली है। जिस पर लाल और सफेद निशान बने होते हैं। मखमली भूरी इल्ली के उदर पर क्रीम-रंग की क्रास-पट्टियां होती हैं। यह *एरिस्टोलोकिया* की पत्तियां खाती है। *ग्रेफियम सार्पेडॉन* बागों की सामान्य तितली है जिसके दोनों ही पंखों पर चमकीली नीली अनुदैर्घ्य[4] पट्टियों के कारण इसे आसानी से पहचाना जा सकता है। इसकी इल्ली *पॉलीएल्थिया लांगीफोलिया* की पत्तियां खाती है।

---

1. पुच्छ-पंख तितलियां : Swallow-tail butterflies
2. दृक्-बिंदु : Eye-spot
3. बीट : Droppings
4. अनुदैर्घ्य : Longitudinal

ट्रोयडीज हेलेना प्रसिद्ध पक्षी-पंख तितली (ऑर्नियोप्टेरा) है। यह सबसे बड़ी और सबसे सुंदर तितली है जिसके पंख चमकीले काले और पीले होते हैं। यह दक्षिण भारत की पहाड़ियों पर पाई जाने वाली आम तितली है जो उड़ीसा की पहाड़ियों, असम, पूर्वी हिमालय के कुछ भागों और बर्मा में भी दिखाई पड़ती है। *पैपिलियो पॉलिम्नेस्टर पैपिलियो बूटीस* और *पैपिलियो पॉलिटीस* कुछ अन्य पैपिलियोनिडे हैं। *टीनोपैल्पस इम्पीरियलिस* नामक तितली *'केसर-ए-हिंद'* कहलाती है और सुप्रसिद्ध तथा अत्यधिक मूल्यवान है और पूर्वी हिमालय, असम के कुछ भागों और बर्मा तक सीमित है। यह लगभग 10 से.मी. लंबी, एकदम हरी होती है जिस पर काली और पीली रेखाएं होती हैं।

पाईरिड (Pierid)

पाईरिड अधिकतर सफेद होती हैं जिनमें पीले या नारंगी रंग की आभा होती है। ये मध्यम आकार की तितलियां हैं। *पाईरिस* की इल्लियां पत्ता गोभी, सरसों तथा अन्य क्रूसीफेरी और कभी कभी कैपेरिडेसी की पत्तियों पर प्रजनन करती हैं। *पियरिस ब्रैसिकी* पत्ता गोभी की प्रसिद्ध सफेद तितली है। पीले रंग वाली *कोलियास* की इल्लियां लेग्युमिनोसी की पत्तियों पर प्रजनन करती हैं। *डेलियास यूकैरिस* तितली भारत, श्रीलंका और उत्तरी बर्मा में आम हैं। यह तितली 8 से.मी. लंबी, सफेद होती है जिस पर काली रेखाएं होती हैं। *इक्सियस पाइरीन* पीली और काली तितली है जो श्रीलंका, दक्षिण भारत, बंगाल, हिमालय क्षेत्र और बर्मा में पाई जाती है। *कैटोप्सिला क्रोकेल* और *के. पोमोना* फीके पीले और सफेद रंग की तितलियां हैं जो सारे भारत, श्रीलंका और बर्मा में पाई जाती हैं। इनकी इल्लियां *कैसिया, सेस्बेनिया* आदि की पत्तियों पर प्रजनन करती हैं। *यूरेमा हेकाबे* एक छोटी सुंदर पीले रंग की तितली है जिसके पंखों के ऊपरी तरफ के किनारे काले होते हैं।

निम्फेलिड (Nymphalid)

निम्फेलिड बड़े आकार की चमकदार रंग वाली तितलियां हैं। ये पिंगल और काली चित्तीदार या धारीवाली तितलियां हैं जिनके पिछले पंखों में पूंछें होती हैं। ये धूप-प्रिय और उड़ने में शक्तिशाली होती हैं। ये फूलों पर बैठती हैं हालांकि कुछ सीलन भरी जमीन, शमल, ताड़ी या सड़ रहे फलों पर भी बैठती हैं। *चैरेक्सेज* और *एरिओबीया* सबसे तेज उड़ने वाली तितलियां हैं। सभी निम्फेलिडों को पेड़ों या झाड़ियों पर बैठकर धूप सेंकना बहुत आता है। उनकी इल्लियां विभिन्न किस्म के पौधों की पत्तियां खाती हैं।

चैरेक्सेज का प्रचलित नाम *'राजा'* और *एरिओबीया* का *'नवाब'* है। ये दोनों हमारे देश की बहुत ही सुंदर तितलियों में से हैं। राजा का रंग सामान्यतया पिंगल या चेस्टनट-भूरा होता है और उस पर चिह्न बने होते हैं। नवाब का रंग ऊपर की ओर से काला होता है

और एक फीके या पीले या पीताभ-हरे रंग की चौड़ी पट्टी होती है। इन तितलियों की उत्तरपूर्व में भरमार है और ये सचमुच गहरे नम वनों की निवासी हैं। ये आमतौर पर फूलों पर नहीं बैठतीं बल्कि खाद और अत्यधिक पके या गले हुए फलों की ओर बहुत ज्यादा आकर्षित होती हैं। *चैरेक्सेज पॉलिक्जेना* दक्षिण भारत और श्रीलंका का पिंगल राजा है और यह हिमालय क्षेत्र में कुमाऊं से असम तक पाया जाता है तथा बर्मा में भी देखने को मिलता है। *ऐरिओबीया श्रीबेरी* पश्चिमी घाट, असम और बर्मा का नीला नवाब है। *ऐपैट्युरा* हट्टी-कट्टी, मध्यम या छोटे आकार की सम्राट तितलियां हैं जिनमें से कुछ गहरे भूरे रंग की होती हैं जिस पर सफेद या पिंगल निशान बने होते हैं। *प्रेसिस* एक छोटी लेकिन सुंदर तितली है। यह नीले, पीले, पिंगल या भूरे रंग की और सुस्पष्ट दृक्-बिंदु वाली होती है। चटख पीले रंग की *प्रेसिस हायर्टा*, नीले रंग की *प्रेसिस ओरिथिया* और *वैनेसा* तितलियां अन्य सामान्य निम्फेलिड हैं। *वैनेसा* का लोकप्रिय नाम 'चित्रित मादा' है। यह काले, गहरे भूरे और सिंदूरी रंग की तितली है। जिसके ऊपर लालिमायुक्त-भूरी या काली चित्तियां होती हैं। यह खुले वातावरण और धूप की शौकीन है तथा सुंदर फूलों की ओर तेजी से खिंची चली जाती है। *वैनेसा कार्डुइ* सबसे सामान्य जाति है और एशिया, यूरोप, उत्तरी अफ्रीका तथा उत्तरी-ध्रुवीय वृत्त तक व्यापक रूप से वितरित है। भारत में यह मैदानी इलाकों और हिमालय पर पाई जाती है। यह गुलाबी-लाल रंग की सुंदर तितली है जिस पर काले निशान होते हैं। इसकी इल्ली थिसल और कम्पोजिटी के दूसरे पौधों की पत्तियां खाती है लेकिन बोरैगो *ऑफिसिनेलिस* पौधे की पत्तियों को कभी कभार ही खाती है। यह रेशमी जाल और तह किए हुए पर्ण फलक[1] के नीड़ में छिपी रहती है। यह तितली अपने प्रवास के लिए प्रसिद्ध है। भारतीय लाल-एडमिरल तितली *वैनेसा इंडिका* दक्षिण भारत की पहाड़ियों, हिमालय और उत्तरी बर्मा में पाई जाती है। हालांकि यह एक छोटी तितली है लेकिन सामान्य गहरे भूरे रंग और लाल केंद्रीय पट्टी तथा काले दृक्-बिंदु के कारण यह विशिष्ट लगती है शायद इसीलिए इसे लाल नौसेनाध्यक्ष कहते हैं। हालांकि मुख्यतया यह वन में रहने वाली तितली है लेकिन खुले क्षेत्रों में आम पाई जाती है। पहाड़ियों और पर्वतों और विशेषतया हिमालय पर हमें *आर्गाइनिस* तितली मिलती है जो घास के मैदानों की निवासी है। यह आमतौर पर पिंगल वर्णी तितली है जिसके ऊपर काली चित्तियों की आड़ी रेखाएं, उसके नीचे रजताभ चित्तियां और सबसे नीचे धारियां होती हैं। *आर्गाइनिस हाइपरबियस* श्रीलंका, दक्षिण भारत, हिमालय और उत्तरी बर्मा में पाई जाती है। यह मूलतया एक पर्वतीय जाति है जो जाड़ों में मैदानों में चली जाती है।

---

1. पर्ण फलक : Leaf blade

सैटाइरिड (Satyrid)

सैटाइरिडों का रंग आमतौर पर फीका भूरा होता है और इनके पंखों पर विशिष्ट दृक्-बिंदु होता है। इन तितलियों की इल्लियां हरी, भूरी, गुलाबी या पीली होती हैं। ये प्रायः घास खाती हैं। प्रौढ़ तितलियां जमीन के पास ही झटके दे देकर मंडराती हैं और ये फूलों पर बैठने की शौकीन नहीं हैं। ये सामान्यतया ताड़ी, गल रहे फल और किण्वित[1] हो रहे अन्य पदार्थों की ओर आकर्षित होती हैं। भारत की सामान्य सैटाइरिड तितलियों के नाम हैं—*माइकैलेसिस, लेथे, मैनिओला, इरेबिया* और *मेलानाइटिस*।

लाइसीनिड (Lycaevid)

लाइसीनिड तितलियां आमतौर पर छोटी होती हैं। ये मुख्यतया नीली होती हैं और इनके चित्तियां तथा कोमल पूंछें भी होती हैं। इल्लियां वल्मरागिता के कारण विशिष्ट होती हैं। ये चींटियों के नीड़ों में नियमित रूप से पाई जाती हैं। चींटियां ही इनकी देखभाल करती हैं और बदले में उन्हें खाने के लिए एक मीठा स्राव मिलता है। तितली प्रायः अंडे देने के लिए चींटियों का नीड़ तलाशती है या चींटियां इल्लियों को अपने नीड़ों में उठा ले जाती हैं और उन्हें न केवल वहां रखती हैं बल्कि उनके लिए सुरक्षात्मक आश्रयस्थलों का निर्माण भी करती हैं। सबसे सामान्य लाइसीनिड तितली *यूक्राइसॉप्स नेज़स* है जो समूचे भारत, बर्मा और श्रीलंका में पाई जाती है। यह बागों के अनेक फूलों पर जाती है और सीलभरी जगहों पर पानी पीना पसंद करती है। *वाइराकोला आइसॉक्रेटीज* एक अन्य फीकी बैंगनी-नीली लाइसीनिड तितली है जिसकी इल्लियां अनारों में और इमली की फलियों में प्रजनन करती हैं।

अन्य तितलियां

हिमालय की सुंदर तितली *पारनैसियस* बर्फ में रहती है और 3000 मी. से कम ऊंचाई पर इसका मिलना दुर्लभ है। यह तितली यूरोप, उत्तर एशिया, उत्तर अमरीका और उत्तर ध्रुवीय क्षेत्रों में भी पाई जाती है। अमैथ्युसिड तितलियां प्रायः बड़ी, फीके रंग की और दृक्-बिंदु वाली होती हैं। इल्लियां ताड़ और बांस की पत्तियों पर प्रजनन करती हैं और प्रौढ़ ताड़ी और किण्वित होने वाले अन्य पदार्थों की ओर आकर्षित होती हैं। दक्षिण भारत और श्रीलंका में पाई जाने वाली एक दुर्लभ जाति है *डिस्कोफोरा लेपिडा* जिसके गहरे भूरे पंखों पर नीलाभ-श्वेत चित्तियां होती हैं। दक्षिण अमरीका की [illegible] महत्वपूर्ण है। इसके पंख रत्न जड़ाई के काम में आते हैं। *नेप्टिस* एक [illegible] है जो जमीन से सटी हुई उड़ती है।

---

1. किण्वित : Fermenting

शलभ

हमारे देश के अधिकांश शलभ आकार में छोटे होते हैं और हालांकि बहुत से शलभ काफी सुंदर होते हैं, वे आमतौर पर हमारी नजर में नहीं आते और बहुत-से कीटवैज्ञानिकों तक को उनके बारे में पता नहीं है। इसका आंशिक कारण यह भी है कि वे रात्रिचर हैं। कुछ शलभ हमारे लिए बहुत जाने पहचाने हैं तो इसलिए कि वे हमारे घरों में होते हैं। उदाहरण के लिए *टाइनिया पैकीस्पाइला, टाइनिया टेपिट्ज़ेला* और *सेटोमॉर्फा रूटेला* लगभग हर घर में मिलते हैं। उनकी इल्लियां हमारी अलमारियों में रखे ऊनी कपड़ों को खा जाती हैं। दूसरे शलभ हालांकि बाहर के पौधों पर प्रजनन करते हैं वे तेज सफेद रोशनी से आकर्षित होकर रात को नियमित रूप से आते हैं। इनमें से प्रमुख शलभ हैं नॉक्टुइड, श्येन-शलभ, सैटरनिड शलभ और बॉम्बेसिड शलभ।

श्येन-शलभ अपने मजबूत, तारपीडो-आकार के शरीर, नुकीले पंखों और उड़ान के समय बहुत तेज गति पकड़ लेने के कारण बहुत ही आसानी से पहचाने जा सकते हैं। उनमें से कुछ का पंख-विस्तार लगभग 10 से.मी. होता है। सभी श्येन-शलभों की शुंड असाधारण रूप से लंबी होती है जो मकरंद-कोषों[1] तक पहुंच सकती है। ये कोष उन लंबे नलिकाकार मीठी-सुगंध वाले पुष्पों के पेंदे में गहराई पर चतुराई से छिपे रहते हैं जो रात को खुलते हैं। इनकी इल्लियां गोल-मटोल चिकनी, हरी या भूरी और सुस्पष्ट दृक्-बिंदु तथा धारियों वाली होती हैं। इन दृक्-बिंदुओं और धारियों को वास्तव में त्वचा के बलनों यानी तहों में आकुंचित करके छिपाया जा सकता है। कुछ श्येन-शलभों के पीछे मांसल शृंग भी होते हैं। ये पूर्णतया हानिरहित होते हैं और छेड़े जाने पर अपने शरीर के अगले सिरे को उठा लेते हैं और स्फिंक्स की तरह पूर्णतया निश्चल हो जाते हैं इसलिए इसका नाम स्फिंजिड शलभ पड़ गया। *हर्स कॉनवॉल्वुली* की गिनती अधिक सामान्य और सुंदर शलभों में होती है जो धूसर रंग और उदर पर गुलाबी पट्टियों वाला बड़ा शलभ है। *एकेरॉन्शिया स्टाइक्स* एक और सामान्य तथा सुंदर जाति है जिसे मृत्युशीर्षी[2] शलभ कहते हैं। इसके वक्ष पर एक निशान होता है जो काल्पनिक रूप से परंपरागत खोपड़ी और क्रास हड्डी वाले चिह्न से मिलता जुलता है और इसीलिए इसका नाम मृत्युशीर्षी शलभ पड़ गया। यह लाल रंग का होता है जिसके उदर पर पीली तथा नीली चित्तियां होती हैं। बड़ी गोल मटोल इल्ली तिल और सेम की पत्तियां खाती है। *डीलफिला नेराई* गहरे जैतूनहरित[3] और गुलाबी रंग का शलभ है और यहां जिन तीन भारतीय जातियों का उल्लेख किया गया है यह उनमें संभवतया सबसे बड़ा है। इसकी इल्ली कनेर के पौधे की पत्तियां खाती है। *मैक्रोग्लोसम* एक गहरे रंग का गुंजन-पक्षी शलभ है जो पहाड़ियों पर फूलों पर बैठता है और बीच हवा में उनके

1. मकरंद कोष : Nectaries
2. मृत्युशीर्षी : Death's head
3. जैतूनहरित : Dive green

ऊपर मंडराते हुए विशिष्ट गुंजन भरी आवाज निकालता है। *हिपोटियॉन* मैदानों का सामान्य श्येन-शलभ है।

नॉक्टुइड शलभ अत्यधिक सामान्य हैं और इनमें से अनेक शलभों की कृषि में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है लेकिन अधिकांश जातियां छोटे आकार वाली और गोपनीय रंग वाली होने के कारण नजरों से छिपी रहती हैं। इनकी इल्लियां विविध प्रकार के पौधों की पत्तियां खाती हैं और प्यूपे आमतौर पर मिट्टी में पाए जाते हैं। फल-चूषी शलभ *ओफिडेरिस* विशेषतया अपने बड़े आकार और आकर्षक रंगों के कारण बहुत जाने पहचाने हैं। इल्लियां विभिन्न किस्म के वन्य पौधों का भोजन करती हैं। रात को प्रौढ़ शलभ संतरे, नींबू और आम के पक रहे फलों पर जाते हैं उनकी त्वचा में छेद करते हैं और रस चूसते हैं।

सैटर्निड वन्य रेशम शलभ हैं। ये चटखदार रंग के और बहुत बड़े होते हैं। प्रसिद्ध एटलस शलभ का पंख-विस्तार 25 से.मी. तक होता है। शुंड न होने के कारण प्रौढ़ अवस्था में रस नहीं पी सकते। अधिकांश शलभ रात्रिचर और अल्पायु होते हैं। ये सभी घने जंगल के विशेषतया नम उष्ण-कटिबंधी वनों के निवासी हैं। इन शलभों का एक विचित्र लक्षण यह है कि वनों में मादा संभवतया अपनी गंध के कारण नरों के झुंडों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। अरंड-पादप (*रिसिनस*) का वन्य रेशम शलभ *अटैकस सिन्थिया* असम में आम पाया जाता है। *एक्टियस सिलीन* और टसर रेशम शलभ *ऐन्थरीआ पैफिया* भारत के सबसे ज्यादा ज्ञात सैटर्निड शलभ हैं। *एक्टियस सिलीन* अपने पश्चपंख की लंबी मुड़ी हुई पुच्छ और कोमल फीके हरे रंग तथा लाल नवचंद्राकार दृक-बिंदु के कारण बहुत विशिष्ट दिखाई पड़ता है। भारतीय शलभों में एटलस शलभ सबसे बड़ा है। टसर रेशम शलभ पालतू नहीं बनाया गया है। वनों में वन्य पौधों से एकत्रित किए गए इसके कोयों से रेशम निकाला जाता है।

6

हमारे घरों में कीट जीवन

हमारे घरों में कीट जीवन पूर्णरूपेण स्वयं मनुष्य के द्वारा किया गया सृजन है। कीट के लिए तो यह कृत्रिम जीवन है क्योंकि खुला वातावरण ही उसका मूल निवासस्थान है। हमारे सभी घरेलू कीटों के निकटतम संबंधी, जिसमें खटमल जैसे अति विशिष्टीकृत मानवसंगी[1] जातियां शामिल हैं, आज भी पूरी तरह से घर से बाहर रहते हैं। हालांकि ऐसा लगता है कि झुंड के झुंड कीट घरों के भीतर रहते हैं लेकिन सच्चाई यह है कि केवल कुछ जातियों ने ही मनुष्य के साथ उसके घर में रहते हुए इस अतिरिक्त आश्रय का, एकसमान अनुकूल परिस्थितियों का और विलासिता का लाभ उठाना सीखा है। फिर भी जिन जातियों ने ऐसा करना चुना है उन्हें अनेक तरीकों से अपरिहार्य अपह्रासन[2] झेलना पड़ा है। उनका यह साहसिक कार्य न तो स्वयं कीटों के लिए और न ही मनुष्य के लिए वरदान साबित हुआ।

हालांकि यह विरोधाभासी लग सकता है लेकिन है सत्य कि भारत में घरेलू कीटों में शहरी घरों के प्रति निश्चित रूप से रुझान होता है जिसका परिणाम यह है कि गांव के घरों की तुलना में शहर के घर कीटों से अधिक ग्रस्त हैं। भारतीय गांव की साधारण झोपड़ी में कीट को ऐसा कोई आकर्षण नहीं दिखाई देता जो उसे उस खेत या बाग से खींचकर उस झोपड़ी में ले आए। उस खेत और बाग से जहां कि कीट अपने जीवन के प्रारंभ से रहता आया है। दरअसल वह झोपड़ी उसे खेत का ही एक अंश लगती है जिसके भीतर उसे कुछ भी तो विशेष नहीं लगता। लेकिन शहरों में मामला अलग है। शहरी समूहों में हमारे 'आधुनिक' घर सब प्रकार के कीटों के लिए एक खुला और स्थायी निमंत्रण हैं कि आइए और नई आदतें सीखिए तथा अजनबी और असामान्य भोज्य पदार्थों के प्रति रुचि जाग्रत कीजिए। कुछ कीटों ने तो भुगतान न करने वाले अतिथि के रूप में इस निमंत्रण को सदा सर्वदा के लिए स्वीकार कर लिया है जबकि दूसरों ने ऐसा स्वभाव बना लिया है कि जब जी चाहे तभी घर में पधार तो गए लेकिन वहां स्थायी तौर पर ठहरे नहीं और चले गए। हमारे कहने का यह अर्थ नहीं है कि हमारे गांवों में कीट हैं ही नहीं। जो थोड़े

---

1. मानवसंगी : Synanthropous   2. अपह्रासन : Degeneration

बहुत हैं वे वास्तव में बाहरी कीट हैं जो भूल से घर में आ जाते हैं लेकिन वहां के वाशिंदे नहीं हैं। इसलिए यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि पूरा जीवन गांव के घरों में बिताने के लिए केवल कुछ ही जातियों ने विशिष्टता प्राप्त की है। दूसरी ओर हमारे शहरी घरों में ऐसे कीट पाए जाते हैं जो वास्तव में और यथार्थ में विकसित[1] नहीं हुए हैं और शहरों में मनुष्य के साथ रहने के लिए अति विशिष्टीकृत और अनुकूलित हैं। वे सुस्थापित रूप हैं जो इतनी अच्छी तरह से अनुकूलित हो गए हैं कि अपने ग्रामीण संबंधियों के पास आकस्मिक रूप से जाने का न तो प्रयास करते हैं और न जा ही सकते हैं।

मनुष्य के साथ पूरी तरह से उसके शहरी मकान में रहने वाले कीटों के विशेष लक्षण क्या हैं? यह फिर से बता दें कि वर्ग कीट खुली हवा, धूप और हरी वनस्पति के प्रेमी हैं। लेकिन घर में रहने वाले कीट धूप से बचते हैं, खुलेपन से डरते हैं, हरी वनस्पति के प्रति उनमें कोई विशेष लगाव नहीं होता बल्कि उन्हें अंधेरा और गंदगी पसंद है। बाहर रहने वाले कीटों की तुलना में इनकी चलन शक्ति सीमित होती है, उनके पंख और टांगें कुल मिलाकर कम परिवर्धित होती हैं। इनकी ज्ञानेंद्रियां अधिक शक्तिशाली और कुशल नहीं होतीं। मनुष्य और इनका साथ इतना लंबा रहा है कि उनमें से बहुत से कीटों ने तो वास्तव में मनुष्य के गुणों को अपना लिया है। वस्तुतया घर के कीटों का अध्ययन करके प्रायः यह बताना संभव है कि उस घर में किस तरह के लोग रहते हैं।

हालांकि घरेलू कीटों की सूची लंबी और विविधापूर्ण है लेकिन हम अपना वर्णन मानवसंगी घरेलू मक्खियों, तिलचट्टों और खटमलों तक सीमित रखेंगे। ये मानव सभ्यता और प्रौद्योगिक विकास के अपरिहार्य उपोत्पाद[2] हैं। आपको शायद इस बात का आश्चर्य होगा कि हमने इस सूची में मच्छर को क्यों शामिल नहीं किया जो रात को हमें सताता है। वस्तुतया मच्छर घरेलू कीट नहीं है। जब तक इसे रक्त चूसने को मिलता रहता है यह बाहर रहना ही पंसद करता है, घर में तो यह रात में ही आता है।

घरेलू मक्खी

"घरेलू मक्खी को देखिए—यह घिनौनी, गंदी, महामूर्ख और जिन रोगाणुओं का वहन करती है उनके कारण यह हत्यारिन है" ऐसे विचार एक अत्याधुनिक और व्यापकरूप से पढ़ी जाने वाली अंतर्राष्ट्रीय स्तर की मासिक पत्रिका में अभी हाल ही में प्रकाशित हुए थे। ये अत्यधिक कठोर शब्द हैं जो अपनी कल्पित श्रेष्ठ बुद्धिमत्ता के मद में चूर आधुनिक शिक्षित मनुष्य की अज्ञानता को ही दर्शाते हैं।

हमारे फैशन प्रिय शहरी नागरिकों में विशेषतया एक प्रचलित धारणा है कि मक्खियां गंदे प्राणी हैं। यह पूरी तरह से गलत है। आप चाहे विश्वास करें या न करें लेकिन यह

---

1. विकसित : Evolved
2. उपोत्पाद : By-product

एकदम सत्य है कि घरेलू मक्खी इस पृथ्वी पर सबसे साफ प्राणियों में से एक है। यह अपने शरीर को मैल तथा अन्य बाहरी पदार्थों से नियमपूर्वक और मेहनत से साफ करती हैं और हममें से किसी की भी तुलना में अपने प्रसाधन में अधिक समय लगाती है। जब यह भिनभिना न रही तो या भोजन न कर रही हो तो इसका प्रमुख काम अपनी टांगों से अपने पंखों, आंखों और सिर तथा शरीर के प्रत्येक भाग को रगड़ रगड़कर साफ करना है भले ही धूल का एक कण भी उसके शरीर से न चिपका हो। अपने शरीर को साफ रखना घरेलू मक्खी की सनक है।

घरेलू मक्खी निश्चित रूप से घिनौनी नहीं है। इसे किसी छोटे और सस्ते आवर्धक लेंस[1] से देखने पर भी आपको इसकी पूर्ण सममिति[2] का चमत्कार, इसके पैटर्नों का सौंदर्य, बेजोड़ संयुक्त नेत्र और इसके कोमल पंखों की रंग-दीप्ति[3] दिखाई देगी। आपको दिखाई देगा रूप, आकार, रंग और गति का सामंजस्य, उसकी लय और आप इसमें देखेंगे ज्यामिति[4] का संगीत। मक्खी को नितांत मूर्ख बताना तो अपनी ही अज्ञानता का ढिंढोरा पीटना है। घरेलू मक्खी में इतना दिमाग और विशेष ज्ञानेंद्रियां हैं कि अत्यंत चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भी सफल बनकर निकले। इसे एकदम सही सही जानकारी होती है कि कैसे उड़ा जाए, कैसे सीधे या औंधे उतरा जाए, कहां खाना तलाशा जाए, अंडे कहां दिए जाएं और आप इसे मारने का जो भी प्रयास करें उसे कैसे विफल किया जाए। इन सब बातों को सीखने के लिए इसे किसी विश्वविद्यालय जाने की आवश्यकता नहीं है। यह घंटों तक हवा में उड़ती रह सकती है और जैसे वायुयान को उतरने के लिए हवाई पट्टी की जरूरत पड़ती है वैसी कोई पट्टी घरेलू मक्खी को नहीं चाहिए। घरेलू मक्खी को उड़ान के बाद अपने कमरे की छत पर बैठते हुए देखिए। कैसे बैठ पाती है वह? ऐसा करते समय क्या वह बीच हवा में आधी घूमती या परिक्रमा करती है अथवा भीतरी पाश[5] बनाती है? अगर आप वायुयान चालक हैं तो इसका उत्तर खोजिए—यह अभी भी एक अनसुलझा रहस्य है। इसकी सुरक्षा पूर्णतया इसकी सतर्कता, दृष्टि के पैनेपन, बिजली की चपलता की तरह भाग जाने की इसकी शक्ति पर निर्भर है।

घरेलू मक्खी न तो टिड्डे की तरह ठोस भोजन कर सकती है और न खटमल या तितली की तरह द्रव चूस सकती हैं। यह नम सतहों से पोषक द्रवों का केवल स्पंज कर सकती है या कहिए उन्हें सोख सकती है। अगर खाना सूखा है तो मक्खी पहले इसे अपने थूक से गीला करती है और तब नम क्षेत्र को चाटते हुए घुल गए पोषकों को सोख लेती है। घरेलू मक्खी का मूल और प्राकृतिक आहार किण्वित हो रही सब्जियां और शाकाहारियों

1. आवर्धक लैंस : Magnifying glass
2. सममिति : Symmetry
3. रंग-दीप्ति : Iridescence
4. ज्यामिति : Geometry
5. पाश : Loop

का शमल है। अंडे गल रहे जैव पदार्थ में दिए जाते हैं जिनसे एक या दो दिन में फीके पीले बिना टांगों वाले अपादक (मैगट) निकलते हैं। अपादक अपघटित[1] हो रहे पदार्थ खाते हैं। वे महत्वपूर्ण अपमार्जक[2] हैं, जो गंदगी को जल्दी निबटाने में सहायता करते हैं। वे चार या पांच दिन में पूरी तरह बढ़ जाते हैं और जमीन के 5-7 से.मी. बेलनाकार भूरे प्यूपा बन जाते हैं। अगले तीन या चार दिनों में इन प्यूपों से प्रौढ़ मक्खी निकल आती हैं। इस प्रकार घरेलू मक्खी का कुल जीवन चक्र लगभग एक सप्ताह में पूरा हो जाता है। लेकिन यह वायुमंडलीय तापमान पर निर्भर करता है। सबसे अनुकूल तापमान 33 से.मी. है। ग्रीष्म ऋतु में प्रौढ़ मक्खी लगभग एक माह और शीत ऋतु में लगभग तीन महीने जीवित रहती है।

प्रौढ़ मक्खियां मानव आबादी के आसपास जमा होने वाले कचरे और मानव के सब प्रकार के खुले पड़े खाने की ओर बहुत ज्यादा आकर्षित होती हैं। यहीं वह तरीका है जिसके द्वारा मक्खियां हैजा, टायफाइड और पेचिश के रोगाणु फैलाती हैं। यह विडंबनापूर्ण लगता है कि जो मक्खी अपने शरीर को सदा साफ रखने के प्रयास में जुटी रहती है वही मानव खाद्य पदार्थों को लगातार संदूषित[4] करती हो। लेकिन इसके लिए आंशिक रूप से स्वयं मनुष्य ही उत्तरदायी है। वह अस्वच्छ परिस्थितियों का निर्माण करता है जो मक्खी के लिए संदूषित पदार्थों का वहन करने के लिए अनुकूल होती हैं। वह जितनी ज्यादा भीड़ में रहता है, उसकी बस्तियां जितनी सभ्य होती हैं उतनी ही ज्यादा गंदगी और अस्वच्छता वह प्रकृति में फैलाता है। इससे मक्खियों को उनके प्राकृतिक आवासों से खदेड़ दिए जाने के अवसर बंद हो जाते हैं और साथ ही संदूषण तथा रोग फैलने के संयोग भी बढ़ जाते हैं।

मस्का डोमेस्टिका सभ्य जगत की विश्वव्यापी घरेलू मक्खी है। भारतवर्ष में तो सर्वत्र पाई ही जाती है। दूसरी जातियों में *मस्का नेबुलो* है जो भारत की सबसे सामान्य घरेलू मक्खी है और *मस्का विसिना* है जो हमारे घरों में आने वाली छोटी-सी मक्खी है।

घरेलू मक्खी के अनेक शत्रु हैं जैसे कि चिड़ियां, छिपकलियां आदि। कवक परजीवी द्वारा होने वाली महामारी से मक्खियां बहुत मरती हैं। परजीवी चिंचड़ियां[5] और सूत्रकृमि भी इनपर आक्रमण करते हैं। घरेलू मक्खी में वार्षिक मृत्यु-दर अविश्वसनीय है—96.6%। फिर भी मानव द्वारा चलाए जा रहे 'मक्खी की सहायता कीजिए' कार्यक्रम की मेहरबानी से मक्खियां अरबों की संख्या में फैल रही हैं।

---

1. अपघटित : Decomposing
2. अपमार्जक : Scavengers
8. संदूषित : Contaminate
5. चिंचड़ी : Mite

तिलचट्टे

तिलचट्टे कीटों के प्राचीन समूह में आते हैं। सबसे पुराना तिलचट्टा जीवाश्म[1] दो हजार लाख साल से भी पुराने भूवैज्ञानिक काल[2] का है। उस सुदूर काल (जब हमारे कोयले के अधिकांश निक्षेप तैयार हुए थे) के नम और उष्ण आदिम वनों की सतह सचमुच महाकाय तिलचट्टों से आबाद थी। आज भी नम उष्णकटिबंधीय वनों में अधिकांश तिलचिट्टे गिरी हुई पत्तियों के नीचे रहते हैं लेकिन कुछ जातियां मानव आवासों में आ घुसी हैं और वहां से जहाजों, रेलों आदि से समूचे विश्व में फैल गई हैं।

अमरीकी तिलचट्टा *पेरीप्लेनिया अमेरीकाना* विश्व का नागरिक है और प्रत्येक घर, कारखाने, भंडारगृह, रेल और जहाज आदि में पाया जाता है। यह बड़ा, चपटा, गहरे लाल-भूरे रंग का चमकदार प्राणी है जो अत्यंत तेजी से दौड़ता है, धूप से कतराता है और खुलेपन से बचता है, गरमाई, नमी और संपर्क पसंद करता है और जो कुछ भी खाया जा सकता है वह सब कुछ खाता है। यह जलनिकास, नलों, शौचालयों, रसोईघरों में, अनाज और आटे के थैलों में, किताबों की पुरानी और प्रयोग में न लाई गई अल्मारियों में, लकड़ी के संदूकों आदि में छिपा रहता है। किसी गरम और उमसभरी रात में आसन्न वर्षा से पहले यह झुंडों में उड़ान भरता है। शीतोष्ण[3] और ठंडे देशों में तिलचट्टा उड़ने से एकदम बचता है। तिलचट्टा एक अंडकवच[4] के अंदर लगभग दो दर्जन अंडे देता है। अंडकवच का आकार ग्लैडस्टोन-थैले जैसा होता है। तरुण अर्भक (निम्फ) सक्रिय प्राणी होते हैं और प्रायः प्रौढ़ से मिलते-जुलते होते हैं। *ब्लाटा ओरिएन्टैलिस* कुछ छोटा होता है लेकिन स्वभाव एक जैसा होता है। हालांकि तिलचट्टे गंदगी में रहते हैं लेकिन घरेलू-मक्खी की तरह अपने शरीर को मैल से नितांत मुक्त रखते हैं और अपने फालतू समय को प्रसाधन में लगाते हैं।

हालांकि वे आमतौर पर मनुष्य पर हमला नहीं करते और प्रायः अपने आपको मनुष्य की आंखों से ओझल रखते हैं फिर भी जिस किसी भी वस्तु के संपर्क में आते हैं उसे अपनी अप्रिय गंध से बिगाड़ देते हैं। वे मनुष्य के खाद्य पदार्थों को अनेक रोगों के रोगाणुओं से संदूषित कर देते हैं। कभी कभी तिलचट्टा सोए हुए शिशु के सिर के बालों या कोमल त्वचा को कुतर कर कष्टदायक घाव बना देते हैं। तिलचट्टों के अनेक शत्रु होते हैं जिनमें छछुंदर, छिपकलियां और चिड़ियां मुख्य हैं। उनके अनेक परजीवी भी हैं जिनमें प्रोटोजोआ, कृमि का कीट विशेष हैं। संकेतकमक्खी[5] *इवानिया अपेन्डीगैस्टर* एक काला चमकीला कीट है जो अपने उदर को संकेतक (सिग्नल) की झंडी की तरह ऊपर नीचे करता रहता है। यह कीट तिलचट्टे के अंडों का परजीवी है।

---

1. जीवाश्म : Fossil
2. भूवैज्ञानिक काल : Geological ages
3. शीतोष्ण : Temperate
4. अंडकवच : Ootheca
5. संकेतकमक्खी : Ensignfly

झींगुर

झींगुर वैसे तो निश्चित रूप से बागों और खेतों के बिलकारी कीट हैं लेकिन एक सर्वदेशीय जाति घरेलू झींगुर *ग्राइलस डोमेस्टिकस* की है जो मनुष्य के साथ उसके घर में स्थायी मेहमान बनकर रहती है। यह मध्यम आकार का, फीका भूरा फुर्तीला कीट है जो धूप से कतराता है और सारे दिन रसोई और खाद्यकक्ष की दरारों और तरेड़ों में गर्म चूल्हों के पीछे छिपा रहता है। खाने, अपने मित्रों से मिलने और खुशी से चींचीं करने के लिए रात को अपनी छिपी जगह से बाहर निकल आता है। आमतौर पर यह बचे खुचे खाद्य कणों या टुकड़ों को खाकर ही संतुष्ट हो जाता है लेकिन पूरी की पूरी रोटी, केक, आलू या किसी भी दूसरे, खाद्य पदार्थ को कुतर कर खाने में इसे कोई परहेज नहीं है। तिलचट्टे की तरह झींगुर भी नवजात शिशुओं के बाल और त्वचा को कुतरता है। वायु का तापमान अनुकूल होने पर झींगुर अपने विशिष्ट अंदाज में घंटों तक चींचीं की झंकार निकाल सकता है जिससे हम भलीभांति परिचित हैं। सर्वव्यापी तिलचट्टे की तरह घरेलू झींगुर को व्यापक रूप से फैलाने में मनुष्य का बहुत हाथ रहा है।

खटमल

अपहासित कीटों में सबसे घृणित प्राणी जिसने मनुष्य के संग रहना चुना है वह असंदिग्ध रूप से शैतान खटमल *सिमेक्स* है।

खटमल एक पंखहीन, चपटा, लालिमायुक्त भूरा कीट है जिसकी रूपरेखा गोलाकार होती है और दूर से यह छिलके वाले मसूर जैसा दिखाई देता है। यह धूप से दूर रहता है, गरमाई, नमी और संपर्क को पसंद करता है और दिन के समय दीवारों और फर्नीचर की दरारों और तरेड़ों में छिपा रहता है। रात होने पर यह मनुष्य की त्वचा में छेद करने और उसका खून पीने के लिए धावा बोलता है। पूरी तरह पेट भर जाने पर यह मनुष्य को अस्थायी शांति में छोड़कर अपने छिपने की जगह चला जाता है ताकि वहां आराम से अपने खूनी भोजन को पचा सके।

खटमल मानव शरीर की गरमाहट और उसके पसीने की गंध से बहुत आकर्षित होते हैं। वे दिन के समय भी मनुष्य को काटने से परहेज नहीं करते और इस बात की तसदीक रेल के डिब्बों में सफर करने वाला हर व्यक्ति अपने अनुभव के आधार पर कर सकता है। यह ऐसा कीट है जो शहर या गांव के घरों के लिए कोई पक्षपात नहीं करता बल्कि दोनों ही में समान रूप से प्रसन्न रहता है बशर्ते कि खून पीने के लिए आदमी उपलब्ध हो। खटमल की सबसे घृणित चीज उसकी अजीब और तेज बदबू है।

हमने चालाक खटमल की चमत्कारिक क्षमता के बारे में अनेक अविश्वसनीय कहानियां सुनी हैं। दुर्भाग्यवश उनमें से सभी नहीं तो कुछ तो एकदम से सच हैं। खटमल तीन से

छह महीने तक भूखे रहकर भी जीवित रहता है। यह आबाद घर में पहुंचने के लिए उसके बगल वाले खाली घर से, पार न की जा सकने वाली बाधाओं को लांघते हुए, गुजर जाता है। चारपाई के चारों पायों को पानी या मिट्टी के तेल की द्रोणिकाओं[1] में रखकर अगर खटमल के रास्ते बंद कर दिए जाएं तो वह कमरे की दीवार पर चढ़ जाता है और वहां से छत पर रेंगते हुए खाट के बिल्कुल ऊपर पहुंचकर छत से गिर पड़ता है। इस प्रकार वह बेखबर सोए हुए मनुष्य तक पहुंचकर उसका खून चूस लेता है।

लेकिन खटमल के सिर सारा दोष मढ़ देना ठीक नहीं है क्योंकि यह मनुष्य ही है जो खटमल को अपने वाहनों में, रेलों और जहाजों में एक शहर से दूसरे शहर, गांव गांव और पूरे विश्व भर में ले जाता है। खटमल और मनुष्य का साथ उतना ही पुराना है जितना पुराना मनुष्य स्वयं है। हमें यह बात शुरू में ही जान लेनी चाहिए कि जब तक मानव अपनी दोनों टांगों पर खड़ा नहीं हुआ तब तक खटमल ने मानव का रक्तपान करना नहीं सीखा था। अपने निकटतम बंधु-बांधवों की तरह खटमल मूलतया और मुख्यतया गुफाओं में रहने वाले चमगादड़ों पर बाह्यपरजीवी[2] थे अर्थात उनके बाहरी शरीर पर परजीवी की तौर पर रहते थे। जब आदि मानव ने ठंड और खुलेपन से बचने के लिए प्राकृतिक गुफाओं के भीतर शरण ली तो गुफा के फर्श पर और दीवारों पर रेंग रहे और चमगादड़ों के शरीर से चिपके ढेरों रक्त-चूषी चमगादड़-मत्कुणों को मनुष्य के रूप में एक और सुलभ शिकार मिल गया। यह शिकार उन्हें उस समय और अच्छा लगा जब चमगादड़ रात में अपने खाने की तलाश में निकल जाते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि गुफाओं की छत से उलटे लटके चमगादड़ के मुकाबले आदमी के रक्त का स्वाद भी अच्छा था। इस प्रकार बिना किसी विशेष समारोह के 'चमगादड़' मत्कुण खटमल बन गया। बाद में जब मनुष्य ने अपने लिए घर बनाना सीख लिया तो मनुष्य स्वयं अपने नए हम-बिस्तर को नए घर में ले आया। इस प्रकार खटमल का विकास मनुष्य के साथ कदम से कदम मिलाकर हुआ। गुफाएं चमगादड़ों और चमगादड़ मत्कुणों के प्राकृतिक घर थे। इनमें शरण लेने के बाद अगर चमगादड़ मत्कुण खटमल बन बैठा तो मनुष्य उसे क्योंकर दोषी ठहरा सकता है? चमगादड़ से मनुष्य तक का सफर एकदम प्राकृतिक था। दिन में चमगादड़ तो अंदर रहते थे और मनुष्य बाहर, सो खटमल दिन में तो चमगादड़ का खून पीते थे लेकिन जब रात में चमगादड़ धावा बोलने के लिए बाहर चले जाते थे तो मनुष्य का खून उपलब्ध होता था और चमगादड़ मत्कुण, मनुष्य मत्कुण बन जाते थे—सही कहा जाए तो खटमल बन जाते थे।

हमारे घरों में खटमलों की दो ऐसी जातियां हैं जिनमें अंतर करना लगभग असंभव है। एक तो *सिमेक्स लेक्टुलेरियस* है जो पूरे भारत में और विदेशों में पाई जाती है और दूसरी है *सिमेक्स रोटन्डेटस* जो यूरोप और उत्तरी भारत में पाई जाती है। इन दोनों की

---

1. द्रोणिका : Trough
2. बाह्यपरजीवी : Ectoparasite

प्रकृति और जीवन-वृत्त लगभग एक जैसे हैं। ये अपने अंडे तरेड़ों में देते हैं और इनमें से लगभग एक सप्ताह में निकलने वाले छोटे फीके रंग के तरुण अंडकवच से बाहर निकलकर फौरन खून पी सकते हैं। वे उन पुराने खटमलों का खून भी चूस सकते हैं जो मानव रक्त पी पी कर फूल जाते हैं। जैसे जैसे इन तरुणों की वृद्धि होती है वैसे वैसे ये पांच बार निर्मोचन करते हैं और अंत में ये लगभग आठ सप्ताह में लैंगिक रूप से परिपक्व प्रौढ़ बन जाते हैं। खून चूसते समय खटमल मानव त्वचा में बने घाव में लार डाल देता है। लार के कारण रक्त के थक्के नहीं बनते और यह द्रव बना रहता है तथा इसका आंशिक रूप से एन्ज़ाइमी पाचन हो जाता है। खटमल खून और लार के मिश्रण को चूसता है। खटमल के काटने से उस समय पीड़ा नहीं होती जब वह त्वचा को भेदता है। पीड़ा केवल तब होती है जब लार भीतर डालता है। लार की रासायनिक क्रिया से ही वास्तव में उत्तेजना और पीड़ा होती है। अगर खटमल को चूसने के लिए रक्त नहीं मिलता तो इसका परिवर्धन धीमा हो जाता है। खून मिल जाने के बाद परिवर्धन पुनः शुरू हो जाता है। भूखे रहने से इसकी आयु वास्तव में लंबी हो जाती है।

खटमल किसी मानव रोग का संचरण करता है ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। भविष्य में यह रोग के रोगाणुओं का वाहक बन सकता है। यह भी विचित्र बात है कि खटमल का कोई प्राकृतिक शत्रु नहीं होता। कोई छिपकली या कीटाहारी प्राणी इसको नहीं खाता।

7

अंतःस्थलीय जलराशियों में कीट जीवन

प्राचीन कीट उभयजीवीय[1] थे—उनका शैशव लंबे समय तक पानी में बीतता था और संक्षिप्त लैंगिकता परिपक्व सपंख प्रौढ़ जीवन हवा में या आंशिक रूप से जमीन पर भी बीतती थी। आधुनिक कीट मुख्य रूप से हवा में सांस लेने वाले और स्थलचर हैं। लेकिन बहुत से कीटों ने अलवण-जल[2] और समुद्रों पर भी हमला बोल दिया है और रहने के लिए जलीय कॉलोनियां बना ली हैं। द्वितीयक या गौणरूप से ये जलीय कीट हैं जो पानी के भीतर डूबे रहने पर भी हवा में सांस लेते हैं यानी वायु-श्वासी हैं।

भारत में अंतःस्थली जलराशियों की भरमार है—नदियां, नाले, तालाब, झीलें, टंकियां, झरने आदि सब कुछ तो हैं। ये सब अत्यंत विविधापूर्ण और अत्यधिक दिलचस्प जलीय कीटों से खूब आबाद हैं। इनमें अश्ममक्खी[3], व्याध पतंग[4], तिलचट्टे, मत्कुण, भृंग, सियालिड, चेलमक्खी[5], मच्छर और डांस, शलभ, कुंडलपुच्छ[6] आदि शामिल हैं। इनमें से कुछ कीट लार्वा और प्यूपा अवस्था में ही जलीय होते हैं लेकिन प्रौढ़ हो जाने पर स्थलीय जीवन बिताने लगते हैं जबकि कुछ ऐसे कीट भी हैं जो लार्वा और प्रौढ़ दोनों ही रूप में जलीय होते हैं।

अगर वायु-श्वासी स्थलीय कीटों को जलीय कीट बनना पड़े तो उन्हें अनेक अप्रत्याशित कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। इन कठिनाइयों और समस्याओं में कुछ तो जटिल हैं और पानी में चलने तथा निमज्जित रहने यानी डूबे रहने पर श्वसन से संबंधित हैं। सभी जलीय कीटों ने इन समस्याओं का समाधान कई तरीकों से बहुत दक्षतापूर्वक कर लिया है। इनमें से अधिकांश कीट पतवार का कार्य करने के लिए विशिष्ट बन गई पिछली टांगों की सहायता से तैरते हैं। अनेक कीट जेट-नोदन क्रियाविधि द्वारा तैरते हैं। वे गुदा से पानी की शक्तिशाली धार बलपूर्वक पीछे की ओर निकालते हैं और उनका शरीर आगे की ओर भागता है। हालांकि ये पानी में रहते हैं और पानी की सतह

---

1. उभयजीवीय : Amphibiotic
2. अलवण-जल : Fresh water
3. अश्ममक्षी : Stonefly
4. व्याध भृंग : Dragonfly
5. चेलमक्षी : Caddisfly
6. कुंडलपुच्छ : Spring tail

से नीचे तले की ओर गोता लगाते हैं, अनेक जलीय कीट वास्तव में श्वसन के लिए वायुमंडलीय हवा पर निर्भर करते हैं। जब वे गोता लगाते हैं तो आवश्यक हवा अपने साथ ले जाते हैं और समय समय पर सतह पर आकर वायु की मात्रा की पूर्ति करने के बाद ही दुबारा गोता लगाते हैं। वायुमंडलीय हवा को बांध रखने के लिए इनमें विशेष अंग होते हैं जो वायु की इस सप्लाई को पानी के भीतर भी ले जाते हैं। अधिकांश जलीय कीट क्लोमों (गिलों) द्वारा सांस लेते हैं। वे ऐसा लगभग मछलियों की तरह ही करते हैं जो पानी में घुली हुई हवा को काम में लाती हैं। इस प्रकार वे वायुमंडलीय हवा पर निर्भर नहीं हैं। लेकिन कीटों और मछलियों के क्लोमों में एक अंतर है। मछलियों के क्लोमों में रक्त भरा होता है जबकि जलीय कीटों के क्लोमों में ताजा हवा होती है। पानी में घुली हुई ऑक्सीजन परासरण[1] द्वारा रक्त की कार्बन डाइआक्साइड से बदल ली जाती है।

अनेक जलीय जीवों में अत्यधिक परिवर्धित दृष्टि होती है और उनके संयुक्त नेत्रों में स्पष्टतया दो अलग अलग भाग होते हैं। ऊपरी भाग तो पानी की सतह से ऊपर हवा में देखने के लिए विशिष्टीकृत होता है और निचला भाग पानी के भीतर देखने के लिए अनुकूलित होता है। हालांकि ये पानी के भीतर रहते हैं लेकिन इनके शरीर गीले नहीं होते क्योंकि शरीर के ऊपर जल-सह मोमीय परत का लेप होता है। जलीय कीट जल-पादपों, पानी में क्षय हो रहे जैव पदार्थ या पानी में रहने वाले अन्य जीवों का आहार करते हैं। कुछ तो ऐसे हैं जो पानी के लिए आने वाले स्थलीय प्राणियों का शिकार करते हैं।

अधिकांश कीट अंशजलीय[2] है और तालाबों, झीलों तथा नदियों के तटों पर जल के किनारे रहते हैं। समय समय पर वे शिकार के लिए पानी में धावा बोलकर उसे बाहर खींचकर उदरस्थ कर जाते हैं। अनेक कीट तालाब या झील की सतह पर कुशलता से चल सकते हैं या स्केटिंग कर सकते हैं। ऐसा करते समय वे न तो लड़खड़ाते हैं और न पानी की सतह को तोड़ते हैं। वे पानी के पृष्ठ तनाव[3] के बलों का उपयोग करके इस काम को सफलतापूर्वक करते हैं। अन्य कीटों की बहुत बड़ी संख्या इस मायने में सचमुच जलीय है कि वे पानी के नीचे गोता लगाकर बड़ी दूर तक तैरकर निकल जाते हैं। अनेक अपने स्वभाववश तली में छिपे रहते हैं और भूले बिसरे ही सतह तक आते हैं।

नियम के तौर पर सतह पर रहने वाले बंधे पानी पर डेरा डालते हैं और गोताखोर बंधे तथा बहते दोनों प्रकार के पानी पर डेरा जमाए रहते हैं। प्रवाही पानी में रहने वाले कीट अत्यधिक विशिष्टीकृत होते हैं। जिस अधःस्तर[4] पर वे रेंगते, चलते या दौड़ते हैं उस पर तेज जल धारा के कारण बह न जाएं इसलिए उनमें अनेक प्रकार के जटिल अंग होते हैं। ताकि वे अधःस्तर पर स्थिर रूप से बने रह सकें। धारा के साथ आने वाली ताजा

---

1. परासरण : Osmosis
2. अंशजलीय : Semiaquatic
3. पृष्ठ तनाव : Surface tension
4. अधःस्तर : Substratum

ऑक्सीजन और खाद्य कणों का वे बहुत खूबी से उपयोग करते हैं और इसलिए उन्हें एक जगह से दूसरी जगह बहुत ही कम जाना पड़ता है। बहते पानी पर रहने वाले कुछ कीट पत्थरों, रेत के कणों, छोटी छोटी सींकों और अन्य उपयुक्त सामग्री के सुरक्षा कोश बनाते हैं और उनके भीतर रहते हैं। वे जहां भी जाते हैं कोश को साथ ले जाते हैं। भारत के जलीय कीट हमारे सामने अनेक अनसुलझी गुत्थियां प्रस्तुत करते हैं जो जीवविज्ञान की दृष्टि से मूलभूत महत्व की हैं। मात्र शौक के रूप में भी ये गुत्थियां बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन कीटों को लेकर हम छोटी छोटी जलजीवशालाएं बनाकर अपने घर के कमरों को सुंदर ढंग से सजा सकते हैं।

तालाबों और झीलों में कीट जीवन

जल-कीटों के दो बड़े समूह—सतह पर शिकार करने वाले और गोताखोर तालाबों, झीलों और अन्य बंधे हुए जलाशयों में रहते हैं।

सतह-शिकारी

जल-द्रुतगामी, जल-स्केटर और चकई-भृंग सामान्य सतह-शिकारी हैं जो विरले ही पानी में गोता लगाते हैं। ये पानी की सतह पर बहुत तेज गति से चलते और दौड़ते हैं। अधिकांश सतह-शिकारी झुंडप्रिय होते हैं ओर खुले जल में रहना पसंद करते हैं विशेषकर तट के किनारे उगे छायादार वृक्षों के नीचे।

जल-द्रुतगामी और स्केटर सच्चे परभक्षी मत्कुण हैं जिनके पंख सुपरिवर्धित होते हैं और ये कभी कभी उड़ भी सकते हैं। इनकी शृंगिकाएं लंबी होती हैं और संयुक्त नेत्र सुपरिवर्धित होते हैं। इनकी टांगें लंबी और रोमयुक्त होती हैं जिन पर जल-सह स्राव का लेप चढ़ा होता है ताकि पानी की सतह न टूटे। *हाइड्रोमेट्रा वाइटेटा* एक असाधारण रूप से लंबा कीट है जो अधिकांश तालाबों में आम है। दूसरा सतह-मत्कुण *गेरिस* है जिसकी पिछली टांगें दूसरी टांगों से बड़ी होती हैं। ये दोनों मत्कुण धूप रहने तक तालाब की सतह पर साथ साथ आनंदपूर्वक दौड़ते और स्केटिंग करते हैं।

सतह-शिकारी कीटों में शायद सबसे दिलचस्प उदाहरण चकई भृंगों (गाइरिनिडी) का है। जिस तरह से ये पानी की सतह पर तेजी से जटिल चक्कर काटते हैं उससे इन्हें फौरन पहचाना जा सकता है। ये छोटे, चमकीले, काले, गठीले भृंग हैं। इनकी शृंगिकाएं छोटी होती हैं और संयुक्त नेत्र के दो भाग होते हैं। ऊपरी भाग हवा में देखने और निचला भाग पानी में देखने के लिए होता है। इनकी अगली टांगें लंबी होती हैं और नर की टांगों में फूले हुए पैड लगे होते हैं। बीच की ओर पिछली टांगें छोटी और चपटी होती हैं जो तैरने के लिए पैडल का काम करती हैं। जो भाग आंशिक रूप से जल में डूबा रहता है वह कोमल

रोमों से ढका रहता है। लार्वा तल में रहते हैं और क्लोमों द्वारा सांस लेते हैं। *ऑरिक्टोचीलम गैंजेटिकम* मैदानों में पाया जाने वाला सामान्य चकई भृंग है और *डाइन्यूटस इंडिकस* एक बड़ी जाति है जो मैदानों और पहाड़ों दोनों जगह पाई जाती है।

गोताखोर

हमारे तालाबों, झीलों और टंकियों में विविध प्रकार के गोताखोर कीट पाए जाते हैं। इनमें हवा में रहने वाले कीट जैसे कि मई मक्खी, अश्म मक्खी, व्याध पतंग, चेलमक्खी और मच्छरों के लार्वे हैं तो अनेक ऐसे कीट भी हैं जो जीवन पर्यंत पानी ही में रहते हैं जैसे कि जलनाविक मत्कुण[1], जलवृश्चिकाय शलभ[2], कोरिरिक्सड, नोटोनेक्टिड और नौकोरिड मत्कुण।

मई मक्खी के लार्वे वास्तव में जलीय कीट हैं, जो प्रत्येक उदरीय खंड के दोनों ओर स्थित वातक-क्लोम[3] द्वारा सांस लेते हैं। ये पूरी तरह पानी में निमज्जित रहते हैं और शैवालों, डायटमों तथा अन्य जल-पादपों का भोजन करते हैं। ये कई महीनों बल्कि दो या तीन सालों में धीरे धीरे परिवर्धित होते हैं। प्रौढ़ एक नाजुक कीट होता है जो खा-पी नहीं सकता और कुछ घंटे जीवित रहता है। इसके आमाशय और आंत में हवा भरी होती है ताकि कामद उड़ान के दौरान इसके शरीर की सामान्य उत्प्लावकता[4] बढ़ जाए। जैसे ही प्रौढ़ पानी से निकलते हैं वे बड़े भारी झुंड में हवा में ऊपर उठते हैं, हवा में कलाबाजी करते हुए कामद नृत्य करते हैं, जोड़े बनाकर संग संग उड़ते हैं और हवा में ही समागम करते हैं। संगम के बाद ही नर मर जाता है और मादा अंडे देने के लिए पानी खोजती है। पानी में अंडे जमा करके वह भी मर जाती है।

व्याध-पतंगों के जलीय लार्वे भयंकर परभक्षी होते हैं। इनका अधरहनु यानी निचला जबड़ा बहुत शक्तिशाली और वितान्य[5] होता है। जो काम में न लाए जाने के समय कोहनी के जोड़ की तरह दोहरा मुड़ा रहता है। इसकी नोक दांतेदार और तीखे हुक वाली होती है। यह रूपांतरित अधोहनु 'विषदंत आवरण'[6] कहलाता है और शिकार पकड़ने के लिए शिकंजे का काम करता है। लार्वा प्रायः तली में चतुराई से छद्मावरण में गतिहीन पड़ा रहता है और किसी बेखबर शिकार का अपनी मारक दूरी में आ जाने की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करता रहता है। उसके बाद विषदंत आवरण बिजली जैसी तेजी से आगे की ओर फेंका जाता है और शिकार दांतों और हुकों के बीच फंस जाता है। हुकों में फंसे हुए शिकार सहित आवरण वापस ले जाया जाता है और लार्वा अपना भोजन आराम से करता है। लार्वा क्लोमों द्वारा सांस लेता है जो इसके गमन में पुच्छ और अरित्र (पतवार) का काम

---

1. जलनाविक मत्कुण : Water boatman bug
2. वृश्चिकाय शलभ : Water scorpion
3.. वातक-क्लोम : Tracheal gill
4. उत्प्लावकता : Buoyancy
5. वितान्य : Extensible
6. विषदंत आवरण : Fang mask

करते हैं। लार्वा झटके से आगे की ओर तैरता है। ऐसा करते समय वह जेट-नोदन क्रियाविधि काम में लाते हुए गुदा से जोर से पानी की धार निकालता है। *ऑर्थेट्रम, गॉम्फस, लिबेल्युला* और *एग्रिऑन* भारत के सामान्य व्याध-पतंगे हैं।

जलीय मत्कुण

जलीय मत्कुण लार्वे और प्रौढ़ दोनों ही रूप में पानी में रहते हैं। प्रौढ़ मत्कुण के पंख सुपरिवर्धित होते हैं और वर्षा ऋतु में ये रात में प्रायः प्रकाश की ओर उड़ते हैं। ये जबरदस्त परभक्षी हैं और अनेक कीटों के शरीर का तरल पदार्थ चूसते हैं या मछली, बेंगचियों और मेंढकों का खून चूसते हैं। लगभग सभी में अग्रपाद शक्तिशाली आलिंगी अंगों[1] में रूपांतरित होते हैं जो रक्त चूषण के दौरान शिकार को पकड़े रहने के काम आते हैं। उनके पश्चपाद तैरने के लिए पैडल के रूप में अनुकूलित होते हैं। गोता लगाने के बाद ये नियमित अंतराल पर ऊपर पानी की सतह तक आते हैं ताकि सांस लेने के लिए हवा की आपूर्ति कर सकें।

हमारे देश के सबसे सामान्य जल मत्कुण, जलवृश्चिकाय, कॉरिक्सिड, पश्च-तैराक और भीमकाय जल-नाविक हैं।

रैनाट्रा और *लैकाट्रेफीज* जैसे जलवृश्चिकायों की अगली टांगें बिच्छू के शक्तिशाली प्रसह नखरों[2] के समान होती हैं। इनमें एक 'पूंछ' होती है जो वास्तव में एक साइफन है जिसकी नोंक पर बारीक बालों की एक झल्लरी होती है जो मत्कुण को पानी की सतह के एकदम नीचे आराम से तैरने में सहायता करती है और साथ ही सांस लेने के लिए वायुमंडलीय हवा को काम में लाती है। ये सामान्यतया चपटे और मलिन रंग के मत्कुण होते हैं जिनकी अगली टांगें मजबूत और हुकवाली होती हैं। *लैकोट्रेफीज* की तुलना में *रैनाट्रा* थोड़ा ज्यादा पतला होता है। कॉरिक्सिड छोटे मत्कुण होते हैं जिनकी अगली टांगें छोटी होती हैं। मानसून के बाद ये प्रकाश से बहुत आकर्षित होकर झुंड के झुंड उस ओर उड़ते हैं। बिजली की रोशनी के नीचे एक घंटे बाद टोकरी भर कॉरिक्सिड एकत्रित किए जा सकते हैं। नोटोनेक्टिड भी छोटे मत्कुण हैं। यह बहुत ही आश्चर्य है कि ये उलटे होकर पीठ के बल तैरते हैं। *बेलोस्टोमा* एक भीमकाय जल-नाविक है जिसे प्रायः पादांगुलि-दंशक[3] भी कहते हैं। यह बहुत बड़ा होता है। यह चपटा, गहरे हरे रंग का होता है और प्रायः पानी में खड़े मानव के पांव की अंगुली काट लेता है। वैसे आमतौर पर यह मछली, बेंगची या मेंढक का खून चूसता है। तालाबों का एक आम मत्कुण है *स्फेरोडीमा* जिसकी विशेष बात यह है कि नर अपनी पीठ पर अंडों को तब तक लादे रहता है जब तक कि उनसे

1. आलिंगी अंग : Clasping organs
2. प्रसह नखरे : Raptorial claws
3. पादांगुलि दंशक : Toe-biter

लार्वे न निकल आएं।

जलीय भृंग

डाइटिस्किड और *हाइड्रोफिलिड* हमारे महत्वपूर्ण जलीय भृंग हैं। अधिकांश डाइटिस्किड अंडाकार भृंग हैं जिनके अग्रपंख और धड़ के बीच में हवा होती है। ये सभी मांसाहारी हैं और प्रायः रात में उड़ते हैं। *सिबिस्टर कन्फ्यूसस* एक बड़ा काला भृंग है जिसकी बगलों में भूरी धारी होती है। ये सामान्यतया पूरे भारत में अलवणीय जल में और विशेषतया धान के खेतों में पाया जाता है। *इरेटस स्टिक्टिकस* एक छोटी और बहुत आम जाति है जिसके लार्वे मच्छर के लार्वो का भोजन करते हैं। हाइड्रोफिलिड भृंग प्रायः डाइटिस्किडों से मिलती जुलते हैं लेकिन शाकाहारी हैं। *हाइड्रोफिलस, हाइड्रस, बेरोसस* ऐसी सामान्य जातियां हैं जो बरसात के दिनों में हमारे आप्लावित धान के खेतों, तालाबों और जलाशयों में पाई जाती हैं।

चेललार्वे

चेलमक्खी के लार्वे ही चेललार्वे कहलाते हैं। चेलमक्खी ऐसा कीट है जिसके पंख रोमयुक्त होते हैं। जहां तक स्वभाव, सहजवृत्ति, अनुकूलन और प्राणी वितरण तथा प्राणी मनोविज्ञान का प्रश्न है चेललार्वा बहुत ही जिज्ञासापूर्ण समस्याएं उत्पन्न करता है। यह सींकों, पत्तियों के छोटे छोटे टुकड़ों, चबाए गए पादप रेशों, रेत कणों, चुने हुए आकार की छोटी छोटी गुटिकाओं और रंगों के मोजेक, यहां तक कि छोटे मृदुकवची (मोलस्क) प्राणियों के कवचों आदि का रेशमी धागों की सहायता से आस्तरित नीड़ बनाने के लिए प्रसिद्ध है। यह इस नीड़ के भीतर रहता है और इससे भी ज्यादा दिलचस्प बात तो यह है कि यह जहां कहीं भी जाता है अपने नीड़ को साथ ले जाता है।

चेललार्वा एक कोमल इल्ली-जैसा लार्वा है जिसके वक्ष में तीन जोड़ी टांगें और सांस लेने के लिए कुछ तंतुमय[1] तथा कोमल क्लोम होते हैं। इसकी पूंछ के सिरे पर एक शक्तिशाली हुक होता है जिसके द्वारा लार्वा अपने नीड़ के भीतर चिपका रहता है। मामूली-सी छेड़छाड़ से भी चेललार्वा पूरी तरह से अपने खोल में घुस जाता है और द्वार को भीतर से मजबूती से बंद कर लेता है। ऐसा वह रेशमी जाल को खींचकर करता है। इस प्रकार यह सभी खतरों से पूरी तरह सुरक्षित हो जाता है। जैसे जैसे इसका आकार बढ़ता है यह अपने खोल को बढ़ा लेता है। इसका आकार, भार और खोल के निर्माण में काम में लाई जाने वाली सामग्री भिन्न भिन्न होती है, जो न केवल इसकी अपनी आयु और आकार के उपयुक्त होती है बल्कि जिस प्रकार के जल में यह रहता है उसके लिए भी अनुकूल होती है। यह

---

1. तंतुमय : Filamentous

पानी बंधा हुआ, धीरे धीरे बहने वाला या प्रचंड वेग से बहने वाला हो सकता है। जलाशयों, तालाबों और झीलों या धीमे बहते नालों में यह अपना खोल अपेक्षाकृत हल्के पदार्थों से बनाता है जैसे कि पौधों के रेशे और छोटी छोटी पतली लकड़ियां। ये सब पदार्थ बड़ी निपुणता से एकसमान आकार में काटे जाते हैं और फिर बड़ी कुशलता से व्यवस्थित कर रेशमी धागों से आपस में बांधे जाते हैं ताकि खोल बिखर न जाए या कुचल न दिया जाए। बहते पानी में या ऐसे तालाबों में जहां पानी को प्रचंड रूप से हिलाए जाने की संभावना हो वहां यह अपना खोल छोटी छोटी गुटिकाओं जैसे भारी पदार्थ से बनाता है। इसके लाभ यह हैं कि खोल पानी की धारा के साथ बहाकर नहीं ले जाया जा सकता और तरंगों के थपेड़ों से खोल को कम से कम क्षति पहुंचती है। खोल अधिकतर बेलनाकार होता है लेकिन पिछले भाग की अपेक्षा अगला भाग चौड़ा होता है ताकि जरूरत पड़ने पर सुदृढ़ अगले भाग और सिर को बाहर निकाला जा सके। कुछ खोल अनुप्रस्थ काट[1] में वर्गाकार होते हैं। सारे खोल आगे से खुले हुए और पीछे से बंद होते हैं। चेललार्वों की अनेक जातियां झुंडों में रहती हैं और अपने नीड़ तंबुओं में बनाती हैं जिससे प्रायः सिंचाई की नालियां बंद हो जाती हैं। ये तंबू शिकार फांसने के जाल का भी काम करते हैं। चेललार्वे शैवालों और अन्य जल-पादपों का आहार करते हैं या मांसाहारी भी होते हैं और दूसरे कीटों के लार्वे खाते हैं।

मच्छर

जाने पहचाने मच्छर अपने शैशव काल में जल-कीट ही होते हैं। जहां एक ओर प्रौढ़ मच्छर हवा में रहने वाले कीट हैं जो दिन में अंधेरे कोनों में छिपे रहते हैं और रात में खून चूसने के लिए झुंडों में उड़ते हैं वहां दूसरी ओर लार्वे और प्यूपे पूरी तरह से पानी में ही रहते हैं।

मच्छरों के लार्वे और प्यूपे किसी भी तरह से जमा हो गए पानी में पाए जाते हैं भले ही वह कितनी ही छोटी जगह में और अस्थायी रूप से एकत्रित हुआ हो। ये पेड़ों के उन छिद्रों में जहां बरसात का पानी जमा हो गया हो और कुओं, तालाबों, पोखरों, नालियों, नहरों, नदियों आदि में रहते और मुक्त रूप से परिवर्धित होते हैं। हालांकि लार्वे हर तरह से जलीय होते हैं फिर भी यह देखने की बात है कि वे सीधे वायुमंडलीय हवा में सांस लेते हैं। ताजा हवा लेने के लिए लार्वे और प्यूपे पानी की सतह पर आते हैं और पृष्ठीय फिल्म[2] से निलंबित रहते हैं। शरीर के अंतिम सिरे पर एक छोटी नलिका या साइफन होती है जो श्वसन अंग का काम करती है। इसमें सूक्ष्म जल-सह रोमों की एक झल्लरी होती है जो पानी की सतह पर फैल जाती है और साइफन के मुंह को खुला रखती है जिससे

1. अनुप्रस्थ काट : Cross section 2. पृष्ठीय फिल्म : Surface film

साइफन गुहिका का हवा से सपंर्क बन जाता है। लार्वा उदर की कशाघाती गति[1] से तैरता है। इसके मुंह के पास एक ब्रुश जैसी संरचना होती है जिसकी सहायता से यह जल की धारा उत्पन्न करता है और खाद्य कण इसके मुंह में चले आते हैं। यह मृत जैविक पदार्थ शैवालों, सूक्ष्मजीवों और दूसरे छोटे छोटे ठोस कणों का भोजन करता है। कुछ लार्वे स्वजातिभक्षी[2] होते हैं और छोटे छोटे लार्वों पर हमला करते हैं। लार्वों का वर्धन तेजी से होता है और छोटे, मजबूत, कूबड़ वाले प्यूपा बनने से पूर्व उनका तीन बार निर्मोचन होता है। वायुमंडल से हवा लेने के लिए प्यूपा के पृष्ठ (पीठ) पर शृंग होते हैं। प्यूपा भी पुच्छ-पंखों[3] की कशाघाती क्रिया से तैरता है।

क्यूलेक्स, एडीज़ और *एनोफिलीज़* आदि भारत के आम मच्छर हैं। हमारे जलागारों में मच्छर लार्वों के दो वर्ग पाए जाते हैं—क्यूलसिन और ऐनाफिलीन। ऐनाफिलीन मच्छर मलेरिया ज्वर और क्यूलसिन मच्छर फाइलेरियता[4] का संचरण करते हैं।

सरिताओं/नालों में कीट जीवन

सरिताओं या नालों में कीट समुदाय और उनके जीवन की परिस्थितियां तालाबों और अन्य बंधे जलाशयों के कीट समुदायों और उनकी जीवन परिस्थितियों से मूलरूप से भिन्न हैं। सरिता सभी प्रकार के रुद्ध या बंधे हुए जलाशयों से इस मायने में भिन्न है कि सरिता में पानी सदा बहता रहता है। प्राणी की गति और गमन पर इस प्रवाह की प्रतिकूल क्रिया होती है। लगातार बहते पानी से व्यर्थ पदार्थ दूर होते रहते हैं, ताजा ऑक्सीजन मिलती रहती है, खाद्य कणों की ताजा पूर्ति होती रहती है इसलिए लार्वा के श्वसन अंग कम परिवर्धित होते हैं। इनका शरीर संहत[5], धारा-रेखित[6] होता है जिसमें कोई भी उपांग[7] बाहर की ओर निकला हुआ नहीं होता ताकि अनावश्यक प्रतिरोध कम हो सकें। बहते पानी में गमन में कठिनाई होती है और गमन करने में अत्यधिक प्रयास करने पड़ते हैं। अधिकांश लार्वे किसी निमज्जित पत्थर[8] से चिपके रहते हैं या विशेष हुकों, चूषण बिंब[9] आदि की सहायता से केवल रेंग भर सकते हैं। डिम्डैम मक्खियां, ब्लेफैरोसेरिड, पहाड़ी मशकाम[10], अश्म मक्खियां आदि सामान्य सरिता कीट हैं।

---

1. कशाघाती गति : Lashing movement
2. स्वजातिभक्षी : Cannibalistic
3. पुच्छ-पंख : Tail-fins
4. फाइलेरियता : Filariasis
5. संहत : Compact
6. धारा-रेखित : Stream-lined
7. उपांग : Appendage
8. निमज्जित पत्थर : Submerged stone
9. चूषण बिंब : Suctorial disc
10. मशकाम : Midges
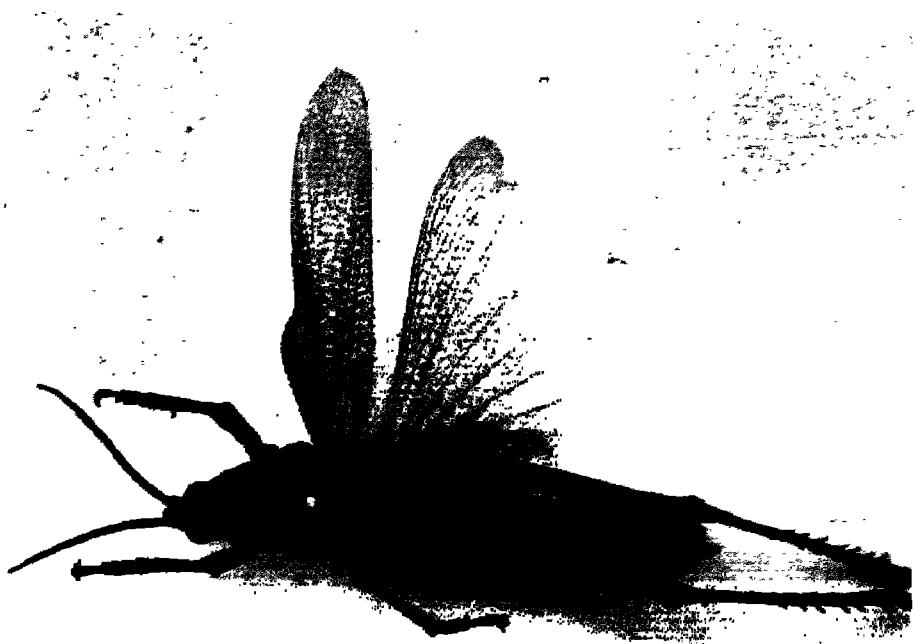
मिल्कवीड का सामान्य चित्रित टिड्डा *पीसिलोसेरस पिक्टस*

ऊपर : सामान्य लाल कपास-मत्कुण (बग) *डिस्डकस सिंगुलेटस*
नीचे : हिबिस्कस की पत्ती पर लाल कपास मत्कुण (बग) का एक जोड़ा संगम करते हुए

ऊपर : *कोरीडिया पेटीवैरियाना* सात सफेद चित्तियों वाला सुंदर तिलचट्टा (कॉकरोच) जो जंगल की जमीन पर नीचे गिरी हुई पत्तियों के बीच रहता है।

नीचे : *ऐन्थिया सेक्सगटेटा* एक सामान्य छह सफेद चित्तियों वाला व्याघ्र-भृंग
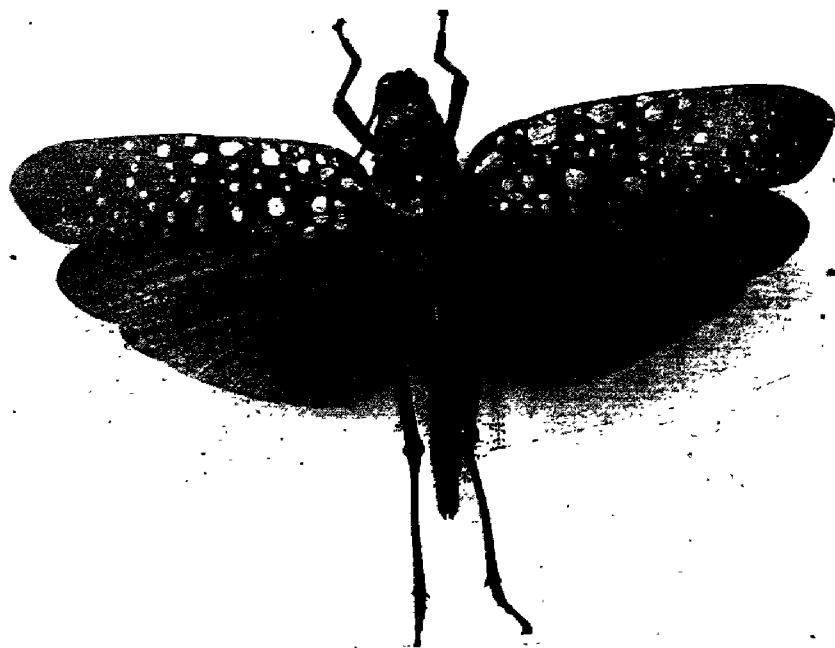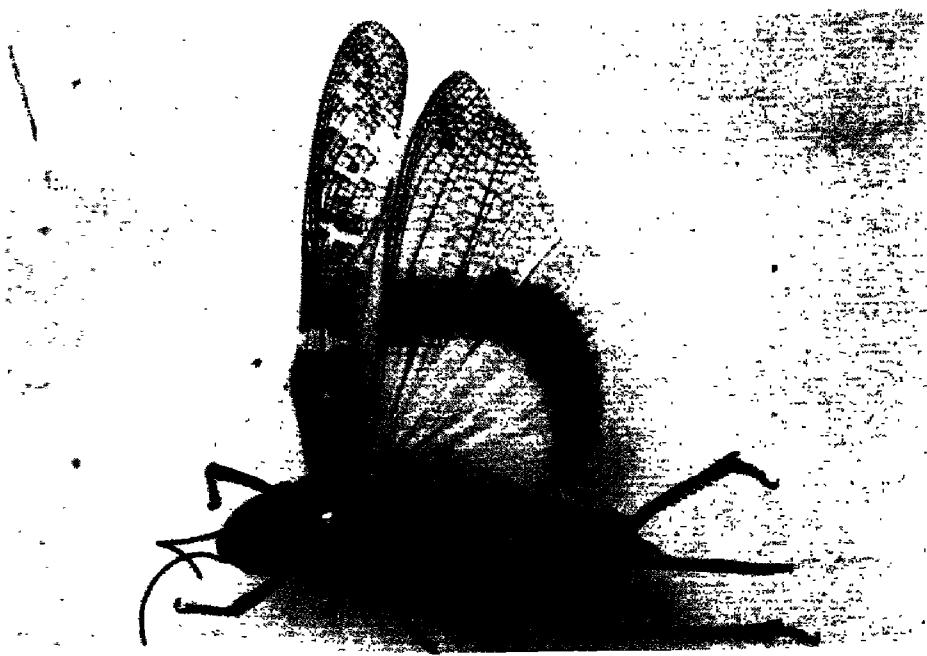
ऊपर : पीले पंखवाला टिड्डा *ग्रेस्ट्रिमार्गस मार्मोरेटस*
नीचे : चमकीली नारंगी चित्तियों वाला काला पहाड़ी टिड्डा *औलार्कस मिलिएरिस* जो प्रायः कॉफी बागानों में पाया जाता है।

ऊपर : धातु जैसे हरे रंग का चित्तीदार स्कूटेलारीड मत्कुण (बग) *क्राइसोकॉरिस*
नीचे : प्रौढ़ साइकैडा
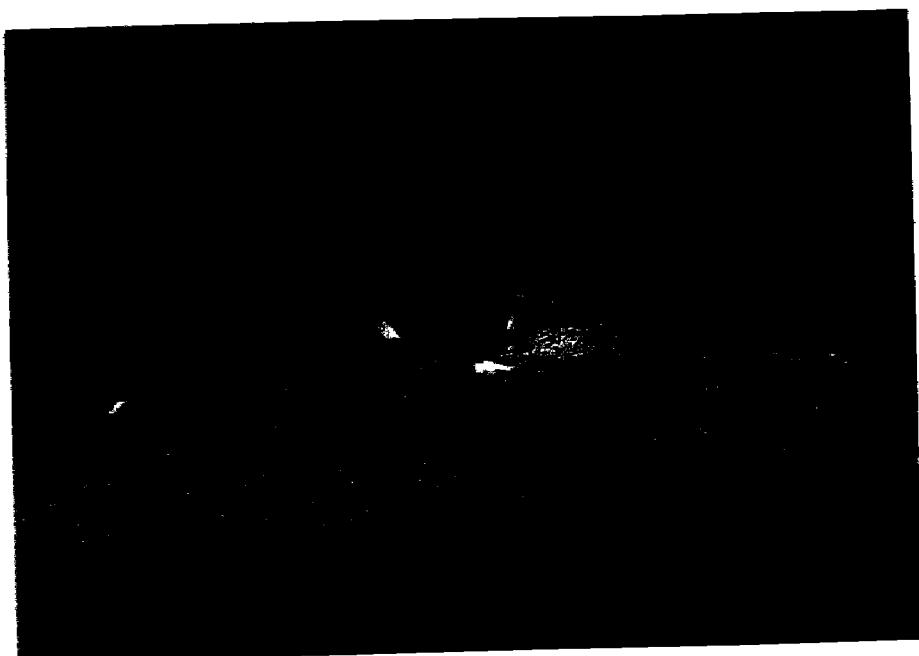
ऊपर : एकाशिया के कोमल प्रोह पर तेलंगाना-गाय मत्कुण *मर्न्ब्रेसिड*
नीचे : धातु जैसे नीले-हरे रंगवाला रत्न-भृंग *स्टेर्नोसिए*
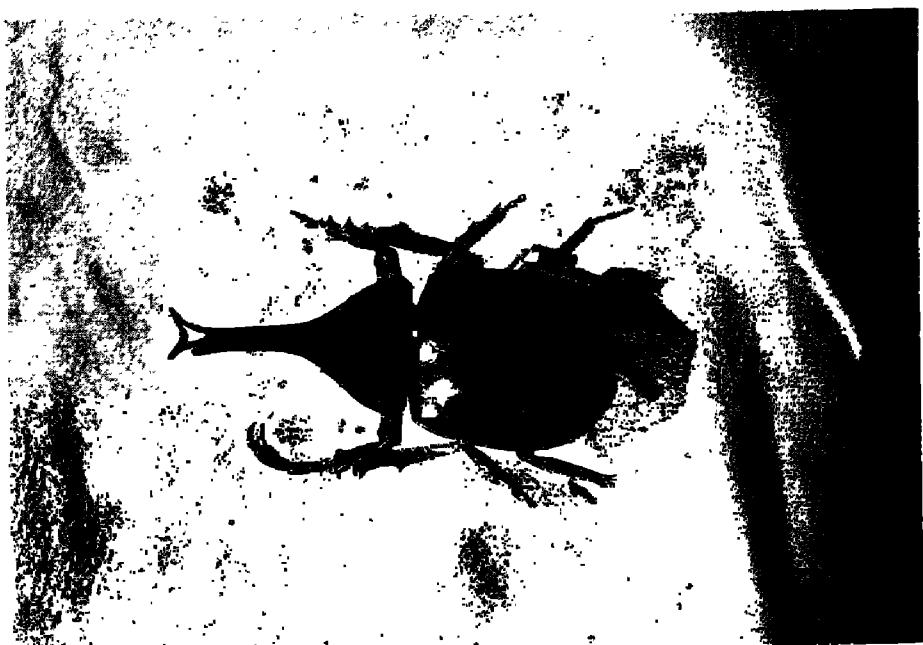
ऊपर : पूर्वी हिमालय का विचित्र शृंग वाला भृंग—*जाइलोट्रूपीज-गिडयन*
नीचे : जमीन पर चारा तलाशते सामान्य *कॉकफेर* भृंग
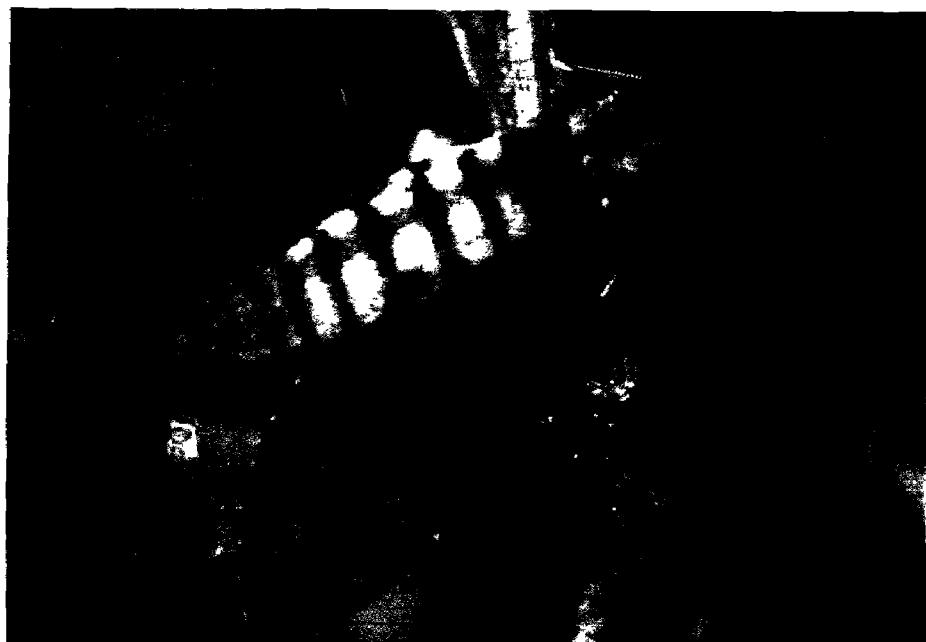
ऊपर : फल-चूषक सामान्य शलभ *ओफिडेरीस*
प्रौढ़ कीट (शलभ) फलों को भेदकर उनका मीठा रसपान करते हैं।
नीचे : सामान्य मृत्यु-शीर्ष शलभ *एकेरॉन्टिया स्टाइक्स*

सामान्य तितलिया

ऊपर : *पैपिलियो पॉलीटीज रोमुलस* (नर)

नीचे : लैन्टाना के फूल से मकरंद पीती हुई *पैपिलियो डिमोलियस*

ऊपर : *ग्रेफियम एन्टीफाटीज*
नीचे : *ग्रेफियम एगामेम्नॉन*

सामान्य तितलियां

ऊपर : *बिब्लिया लिथाइया*

नीचे : *पैपिलियो हेलेनस हेलेनस*
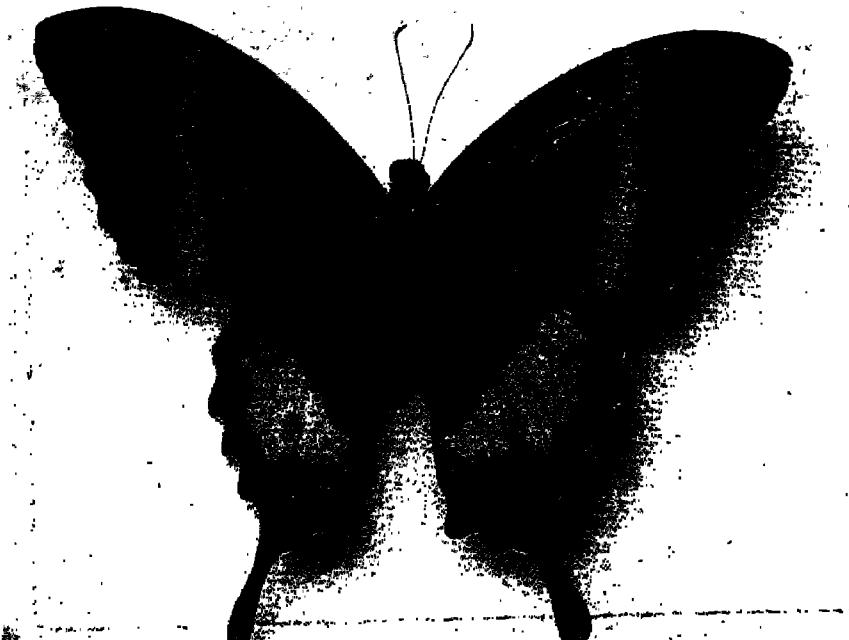
2. **ऊपर** : *पैपिलियो पॉलीमेन्स्टॉर पॉलीमेन्स्टॉर*

नीचे : *पैपिलियो क्राइनो*
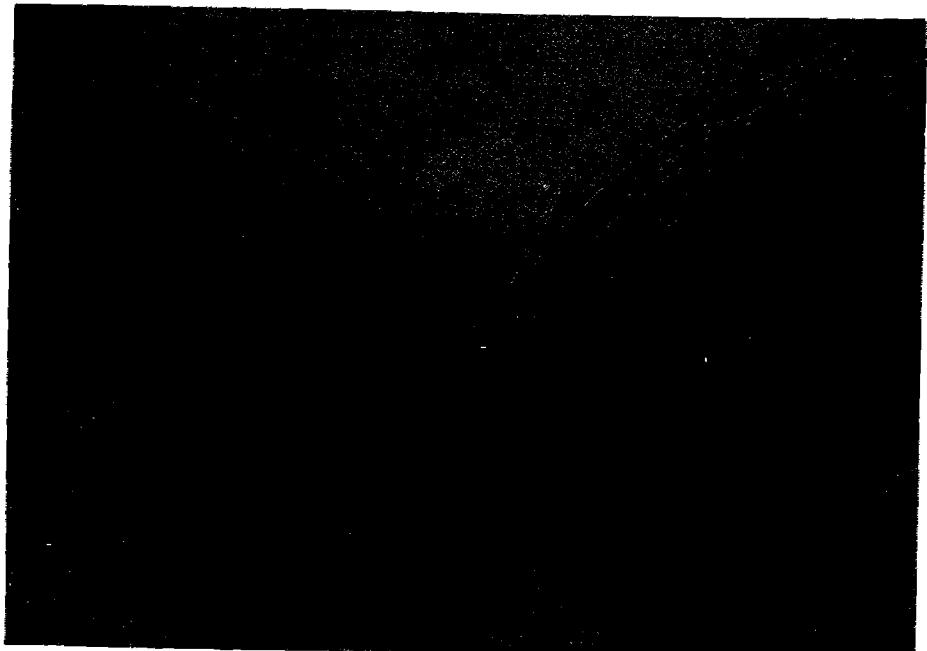
कुछ सामान्य तितलियां
ऊपर : नीलगिरी से *ईडिया लिन्सियस*
नीचे : मैदानी व्याघ्र *डेनौस क्राइसिपस*
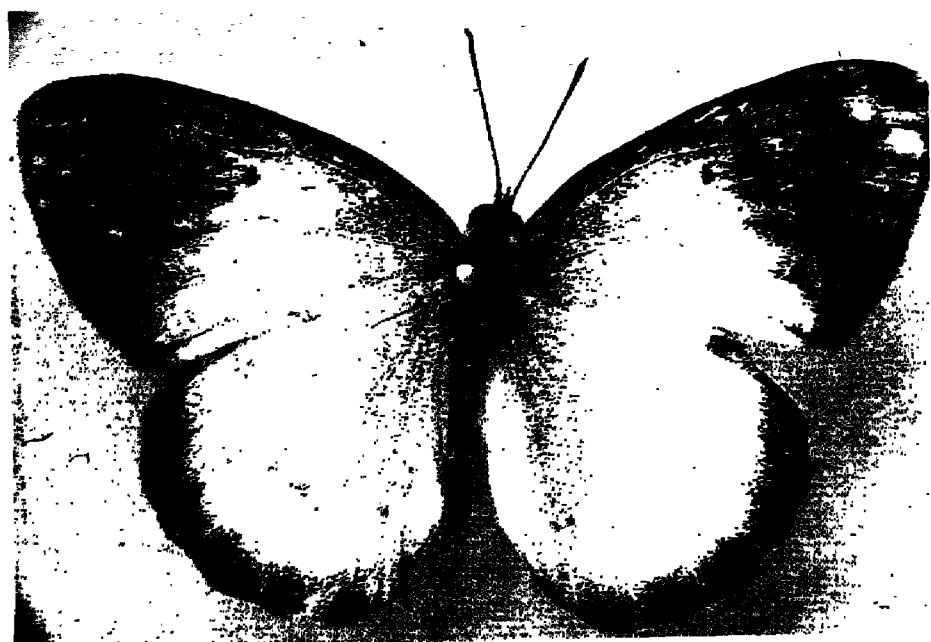
ऊपर : *मिल्कवीड तितली डेनौस जेन्युटिया*

नीचे : *कोलोटिस डैनी*

कुछ सामान्य तितलियां
ऊपर : *हेबोमोइया लौसिपे ऑस्ट्रेलिस*
नीचे : *प्रेसिस एलमाना*

ऊपर : कॉस्मॉस फूल पर अशन करती *प्रेसिस*
नीचे : सामान्य नाविक तितली *नेप्टिस हार्डोनिया हार्डोनिया*

8

हमारे मरुस्थलों में कीट जीवन

मरुस्थल वह प्रदेश है जहां वर्षा अपर्याप्त होती है या होती ही नहीं। ऐसा भी होता है कि जो थोड़ी-सी वर्षा होती है वह कई सालों तक न हो। यह ऐसा प्रदेश है जहां वायुमंडलीय शुष्कता होती है और वनस्पति विरल तथा कांटे वाली होती है। मरुस्थल दो प्रकार के होते हैं—ठंडे मरुस्थल और उष्ण मरुस्थल। उष्ण मरुस्थलों में छाया के नीचे वायुमंडलीय तापमान 50^0 से. से ऊपर हो जाता है। निम्न वायुमंडलीय नमी के कारण जितनी देर धूप रहती है उतनी देर सूर्यातप[1] इतना प्रचंड हो जाता है कि जमीन तेजी से गर्म हो जाती है और तापमान प्रायः 70^0 से. तक पहुंच जाता है। रात्रिकालीन विकिरण[2] भी उसी तरह तेजी से होता है जिसकी वजह से रात को ठिठुरन हो जाती है या पाला तक पड़ जाता है तथा तापमान शून्य से नीचे चला जाता है। इस प्रकार दैनिक तापक्रम की घट-बढ़ बहुत ज्यादा होती है। खुली हुई सतहों से वाष्पन[3] बहुत तेजी से होता है और पौधों तथा प्राणियों के शरीर सूखने लगते हैं। इसलिए जीवों को अपने शरीर के तरल पदार्थों का संरक्षण करना पड़ता है।

हालांकि भारत के बड़े भूभाग पर मानसून की वर्षा होती है लेकिन राजस्थान के बड़े क्षेत्र में वर्षा बहुत ही कम होती है और बीकानेर के कुछ भाग ऐसे हैं जहां लगातार कई सालों तक एक बूंद भी नहीं गिरती। यह भूभाग एक प्ररूपी[5] अर्ध मरुस्थल है और अप्रत्यक्ष रूप से पश्चिम में सिंध, अरब और सहारा के वास्तविक मरुस्थल तक चला जाता है।

एक बहुत प्रचलित गलत धारणा यह है कि मरुस्थल में जीवन को सहारा नहीं मिलता। लेकिन मरुस्थल अनेक जटिल और विशिष्टीकृत प्राणियों और पादपों का घर है। जैसा कि सभी जगह कीटों का प्रभुत्व है उसी तरह मरुस्थल में भी वे प्रभावशाली हैं।

मरुस्थल में सूर्य की गर्मी से बचने के लिए कीट दिन में भूमि के नीचे गहरे छिपे रहते

---

1. सूर्यातप : Insolation
2. विकिरण : Radiation
3. वाष्पन : Evaporation
4. संरक्षण : Conservation
5. प्ररूपी : Typical

हैं या अपने आपको ऐसे पौधों में छिपाए रहते हैं जिनकी वृद्धि रुक गई है। वे केवल रात के समय ही बाहर आते हैं। अधिकांश मरुस्थली कीट कुशल खुदाई करने वाले या बिल बनाने वाले होते हैं। वे ढीली और जगह बदलती रहने वाली बालू पर लड़खड़ाकर गिरे बिना बहुत तेज दौड़ सकते हैं। अनेक कीटों ने गर्मी की समस्या और सूख जाने के जोखिम से निपटने के लिए मरु-बबूलों के खोखले तनों और कांटों के भीतर अपने घर बना लिए हैं।

अगर आप किसी मरुस्थल में रात के समय टार्च लेकर घूमें तो बालू पर इधर-उधर दौड़ते बेशुमार और अनेक किस्म के झींगुरों, भृंगों और अन्य कीटों को देखकर सचमुच चकित हो जायेंगे। रात को मरुस्थल जीवंत हो उठता है और दिन के समय सोया रहता है।

वर्ष के सबसे गर्म समय में कुछ मरुस्थली कीट अपने भूमिगत आश्रय में प्रसुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं जिसे ग्रीष्म निष्क्रियता कहते हैं। इस प्रसुप्ति से वे जाड़े के दिनों में उबरते हैं। जो उच्च वायुमंडलीय और भू-तापमान वन और बाग के कीटों के लिए प्रायः घातक होता है, मरु-कीट उसे सह सकने में समर्थ होते हैं। वस्तुतया कुछ मरु-कीट 60^0 से. ताप पर जलती रेत पर प्रसन्नतापूर्वक जीवित रहते हैं जबकि यह ताप उन अधिकांश कीटों को कुछ ही मिनट में मौत की नींद सुला देगा जिनसे हम परिचित हैं।

जल के अभाव की समस्या को मरु-कीटों ने अनेक ढंग से सुलझा लिया है। अनेक कीट स्वभाववश नखलिस्तान[1] के किनारे रहते हैं और पानी से दूर नहीं जाते। लेकिन दूसरे कीट मामूली नमी या बिना नमी के भी जीवित बने रह सकते हैं और शुष्क भोजन के रूप में जो मिलता है उसी से आराम से गुजारा कर लेते हैं। उनका भोजन कितना ही शुष्क क्यों न लगे इसमें पानी मुक्त अवस्था में और खाद्य के रचकों[2] में रासायनिक रूप से संयुक्त जल की पर्याप्त मात्रा होती है। कीटों में थोड़े से मुक्त जल और रासायनिकतः संयुक्त जल को अपने काम में लाने की शरीरक्रियात्मक क्षमता[3] होती है।

इन कीटों में एक कठोर, अप्रवेश्य अध्यावरण[4] होता है जो उनके शरीर के तरल पदार्थों को शुष्कन से भलीभांति बचाता है। यह अध्यावरण शरीर के भीतर से नमी के वाष्पन को मंद करता या रोकता है और साथ ही हवा में जो कुछ भी नमी होती है उसे अवशोषित[5] करता है। जिन वातक नलिकाओं[6] के द्वारा कीट सांस लेते हैं उनके बाहरी रंध्र तक कठोर अध्यावरण के नीचे गहरे स्थित होते हैं और रोमों के निस्यंदकों[7] द्वारा और भी रक्षित

---

1. नखलिस्तान : Oasis
2. रचक : Constituent
3. शरीरक्रियात्मक क्षमता : Physiological capacity
4. अप्रवेश्य अध्यावरण : Impervious integument
5. अवशोषित : Absorb
6. वातक नलिकाएं : Tracheal tubes
7. निस्यंदक : Filter

रहते है। ये रंध्र शरीर के भीतर से जल वाष्प के बाहर निकलने को प्रभावशाली ढंग से कम करते हैं। आपातकाल में नमी को निकलने से रोकने के लिए ये मजबूती से बंद भी हो सकते हैं।

प्ररूपी मरु-कीट पूरी तरह से राजस्थान, सिंध और बलूचिस्तान के भागों के अर्ध-शुष्क या शुष्क क्षेत्रों तक सीमित हैं। उनके निकटतम संबंधी ज्यादातर अरब देश और अफ्रीका के भागों में, विशेषतया सूडान में पाए जाते हैं। हालांकि भारत के मरु क्षेत्र में हजारों लाखों असली शुष्कक्षेत्री कीट पाए जाते हैं लेकिन हम यहां केवल मरु-टिड्डी[1] के बारे में बातें करेंगे जो सर्वोत्कृष्ट मरु-कीट है। टिड्डी भी टिड्डा है जिसकी अनेक जातियां हम बागों, घासस्थलों, वनों और खेतों में देखते हैं लेकिन इसका व्यवहार साधारण टिड्डे से भिन्न होता है।

सामान्य टिड्डे एकल कीट होते हैं और उनमें आमतौर पर यूथीरूप में प्रजनन करने या समय समय पर बड़े बड़े झुंडों में प्रवास करने की प्रवृत्ति नहीं होती। टिड्डों की कुछ मरु जातियां जो प्रायः पृथक व्यष्टियों के रूप में एकल प्रजनन करती, अशन करती और घूमती फिरती हैं उनकी संख्या आवर्ती अंतरालों पर यूथी बन जाती हैं और अनुकूल ऋतु आते ही उनकी आबादी बहुत बढ़ जाती है और तब वे बड़े बड़े झुंडों में प्रवास करती हैं। प्रवास के दौरान जिन जगहों पर वे अस्थायी रूप से डेरा डालती हैं वहां के हरे पौधों को नष्ट कर देती हैं। हालांकि दोनों एक ही जाति की हैं लेकिन एकल और यूथी समष्टियों के व्यष्टि अपने आकार, रंग, शरीर के विभिन्न भागों के अनुपात और अन्य लक्षणों में इतनी ज्यादा भिन्न होती हैं कि उन्हें गलती से एकदम ही भिन्न जाति और भिन्न वंश तक मान लिया जाता है।

टिड्डी वस्तुतया एक टिड्डा ही है जो नियमित एकांतर चक्रों[2] में यूथी और प्रवासी बन सकती है। टिड्डियां बहुरूपी टिड्डे होते हैं जो तीन अस्थायी प्रावस्थाओं में पाई जाती हैं—एकल प्रावस्था, यूथी प्रावस्था और क्षणिक प्रावस्था[3]। इन तीनों प्रावस्थाओं में उसकी संरचना और स्वभाव भिन्न भिन्न होते हैं। क्षणिक प्रावस्था ऐसे व्यष्टियों का समूह है जो एकल और यूथी प्रावस्था के बीच के होते हैं। यूथी प्रावस्था में टिड्डियों के झुंड के झुंड बन जाते हैं। यूथी प्रावस्था के अंडों का परिवर्धन धीमा होता है। यह शरीरक्रियात्मक मंदर उपरति[4] कहलाता है। लैंगिक परिपक्वता आने से पूर्व प्रवास होता है। एकल प्रावस्था के व्यष्टियों में प्रवास की रत्ती भर प्रवृत्ति नहीं होती। और उनके अंडों का परिवर्धन बिना उपरति के होता है। लैंगिक रूप से परिपक्व होने पर टिड्डे के रंग में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

---

1. मरु-टिड्डी : Desert-locust
2. एकांतर चक्र : Alternating cycle
3. क्षणिक प्रावस्था : Transient phase
4. मंदर उपरति : Diapause

विश्व में टिड्डियों की अनेक जातियां हैं। भारत में टिड्डियों की दो जातियां विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। *शिस्टोसेर्का ग्रिगेरिया* सुप्रसिद्ध मरु-टिड्डी है जो उष्णकटिबंधीय अफ्रीका, उत्तर अफ्रीका के बहुत बड़े हिस्से में और अरब, ईराक, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, सिंध, पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम, फ्रंटियर राज्य और उत्तर-पश्चिम भारत में पाई जाती है। इसके झुंड पश्चिम में इरिटेरिया, स्पेन और पुर्तगाल तक और पूर्व में प्रायः कलकत्ता तक चले जाते हैं।

मरु-टिड्डी की यूथी प्रावस्था में अधिकतर तरुण गुलाबी रंग के होते हैं जो लैंगिकतः परिपक्व हो जाने पर फीके रंग के हो जाते हैं। सामान्यतया एक वर्ष में टिड्डी की दो पीढ़ियां होती हैं। अंडों के उष्मायन[1] में लगभग 15-40 दिन लगते हैं और लगभग 40-60 दिन तक फुदके अपरिपक्व रहते हैं। इस टिड्डी के परिवर्धन में सुस्पष्ट अवर्तिता[2] होती है। स्थायी प्रजनन स्थलों में प्राकृतिक शत्रुओं के कारण प्रजनन सीमित होता है। लेकिन यह मौसम की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यह अत्यल्प वनस्पति वाली रेतीली पहाड़ियों में प्रजनन करती है और काफी दूर तक उड़ जाती है। कुछ टिड्डियां निकटतम जमीन से समुद्र में 1,920 कि.मी. की दूरी पर पकड़ी गई हैं। टिड्डी के झुंड मोटे तौर पर ग्यारह वर्ष के चक्रों में प्रकट होते हैं जो ऊपरी तौर से सूर्य कलंक के आवर्तकाल[3] से मेल खाता है। लेकिन बीच बीच में कभी कभी कम अवधि के छोटे झुंड भी मिलते हैं। ग्यारह वर्षीय चक्र में झुंडों के प्रकट होने से जो परिस्थितियां निर्णायक होती हैं वे अधिकतर मौसमी होती हैं लेकिन अभी तक उन्हें पूरी तरह से समझा नहीं जा सका है।

मुंबई टिड्डी एक और महत्वपूर्ण टिड्डी है जिसका जाति नाम *सिर्टेकैन्थैक्रिस सक्सिंक्टा* है। यह भारत में ही पाई जाती है। यह जून में अंडे देती है और जुलाई में तरुण फुदके बाहर निकल आते हैं। सितंबर में इनका परिवर्धन पूरा हो जाता है और कभी कभी ये दक्षिण भागों के कुछ हिस्सों में भी पाई जाती हैं। बाहरी आकृति में यह मरु-टिड्डी की तरह ही होती है लेकिन लालपन कुछ ज्यादा होता है।

---

1. उष्मायन : Incubation
2. अवर्तिता : Periodicity
3. आवर्तकाल : Sunspot cycle

9

हिमालय पर कीट जीवन

हिमालय पर कीट जीवन अत्यधिक रंगीला और बहुत ही विविधतापूर्ण है। उच्च पर्वतमालाओं के गिरिपाद और पेड़ों से भरे ढलानों में सब तरह के कीटों की भरमार है जैसे कि मई मक्खी (मे फ्लाई), अश्म मक्खी, टिड्डे, झींगुर, व्याध मक्खी, चेन मक्खी, मत्कुण, साइकैडा, भृंग, चींटियां, बर्र, तितलियां, शलभ, मशकाभ, डांस, मच्छर आदि। इनमें से कुछ कीट तो वस्तुतया ऐसे जीवट वाले हैं कि उत्तर भारत के गरम धूलभरे और नम मैदानी भाग से लेकर पर्वतीय वनों के ठंडे भाग तक में पाए जाते हैं। हमें ऐसे कीट भी देखने को मिलते हैं जो मैदानों में नहीं पाए जाते बल्कि पर्वतों तक ही सीमित रहते हैं। ये पर्वत के स्थानिक कीट हैं और जिनका विकास पर्वतों पर ही हुआ है। संवृत वन[1] की ऊपरी सीमाओं से भी ऊपर अधिक ऊंचाइयों पर बंजर चट्टानों, हिम, बर्फ और हिमनदों [2] वाले क्षेत्र में भी पर्वतीय स्थानिक कीट पाए जाते हैं। हालांकि ये वन के अंदर की तुलना में कम विविधतापूर्ण और संख्यात्मक रूप से कम होते हैं। ये जातियां वास्तविक उच्च-तुंगता[3] वाले कीटों को निरुपित[4] करती हैं जो स्थायी हिम-रेखा से ऊपर 6,000 मी. से भी ज्यादा ऊंचाई पर हिमालय पर फलती-फूलती हैं। विश्व में किसी भी दूसरी जगह इतनी ऊंचाई पर कीट नहीं पाए जाते। क्योंकि दूसरे पर्वतों की ऊंचाई इससे बहुत ही कम है। पृथ्वी पर सबसे ऊंची मानव बस्तियां बोलीविया में हैं जो 5,000 मी. की ऊंचाई पर स्थित हैं लेकिन उच्च-तुंगता-कीट हिमालय पर इससे कहीं अधिक ऊंचाई पर पाए जाते हैं।

हिमालय के वनों में कीट जीवन

कीट पूर्वी हिमालय, असम और उत्तरी बर्मा के पर्वतों पर भी पाए जाते हैं। जैसे जैसे दक्षिण चीनी, हिंद चीनी[5] और मलाया वन में रहने वाले कीट धीरे धीरे हिमालय के वनों में पश्चिम

---

1. संवृत वन : Closed forest
2. हिमनद : Glacier
3. उच्च-तुंगता : High-attitude
4. निरुपित : Represent
5. हिंद चीनी : Indo-Chinese

की ओर बढ़ते गए वैसे वैसे वे भी पश्चिम से पूर्व की ओर मूल रूप से बदलते गए और उन्होंने स्थानिक रूपों और जातियों तथा उपजातियों को जन्म दिया। हिमालय की अधिकांश तितलियों का उद्भव उस प्राचीन प्रभव[1] से हुआ जो पहले हिंद-चीन, दक्षिण चीन, थाईलैंड और बर्मा में रहता था। उदाहरण के लिए हिंद-चीनी तितली *चिलासा* पूर्वी हिमालय में तो भारी संख्या में पाई जाती हैं लेकिन कश्मीर तक इक्का दुक्का ही मिलती हैं। *चिलासा ऐजेस्टर* टॉन्किन से सिक्किम तक, *चिलासा ऐजेस्टर गोविन्द्रा* कुमायूं से कश्मीर तक, *चिलासा एजेस्टर चिरागशाही* पश्चिम में पाई जाती है। *पैपिलियो बूटीज* पश्चिम चीन से असम तक और पूर्वी हिमालय[सि.गढ़वाल हिमालय तक चीन और हैनान से आई *पैपिलियो रीटेनर* उत्तरी बर्मा और हिमालय]और कुमायूं तक पाई जाती है। *पैपिलियो प्रोटेनर* फॉर्मोसा, हैनान, चीन, टॉन्किन और बर्मा से लेकर पूर्वी हिमालय पर पश्चिम में कश्मीर तक फैली हुई है।

हिमालय पर्वत की श्रेणियों के वन से ढकी ढलानों को असंख्य साइकैडाओं ने अपना घर बना लिया है। बुरुंश[2] और बांज[3] के वनों में आपको चारों ओर इनकी आवाज सुनाई देती है। पेड़ों की छाल पर, हरे पर्णसमूह में और जमीन पर गिरी हुई पत्तियों पर ढेर सारे दीर्घ-शृंगी टिड्डे, प्रार्थी मेन्टिड, यष्टि-कीट, पर्ण-कीट और मत्कुण पाए जाते हैं। विभिन्न प्रकार के हजारों हजार भृंग इन वनों में रहते हैं। *लैम्प्रोफोरस नेपालेन्सिस* जुगनू नेपाल में सामान्यतया पाया जाता है और मजबूत जबड़ों वाला *ॲटोक्रेटीज एवियस* क्रॉक-भृंग तथा महामृग-भृंग पूर्वी हिमालय के वनों में ही डेरा डाले रहते हैं। राजा महामृग-भृंग *ल्यूकेनस ल्यूनिफर*, चमकीला स्वर्ण-पीत महामृग-भृंग *ओडनोटोलेबिस क्यूवेरा* तथा *डोर्कस एंटियस* तथा *हेमीसोडोर्कस नेपालेन्सि* हिमालय के आम भृंग हैं। गुबरैला और चेफर भृंगों की अनेक जातियां भी यहां रहती हैं।

वनरेखा से ऊपर कीट जीवन

वनों की ऊपरी सीमाओं से परे हिमालय के ऊंचाई वाले प्रदेश हिम, बर्फ और चट्टानों का एक अद्भुत संसार हैं जिनकी विशेषता है निम्न वायुमंडलीय दाब, तापमान और नमी, ऑक्सीजन की कमी, जीवाणु-रहित और धूलि-हीन वायु (हालांकि इसमें कवक बीजाणुओं की भरमार होती है), अत्यधिक वायुमंडलीय शुष्कता, एक सौ किलोमीटर प्रति घंटे से भी ज्यादा की रफ्तार से लगातार चलने वाली हवाएं, तेज चौंध और प्रचंड पराबैंगनी विकिरण[4]। धूप के दौरान सूर्यातप इतना तीव्र होता है कि धूप में रहने पर शरीर बहुत जल्दी गरम हो जाता है और उसका तापमान लगभग 50^0-60^0 से. तक पहुंच जाता है जबकि छाया

1. प्रभव : Stock
2. बुरुंश : Rhododendron
3. बांज : Oak
4. पराबैंगनी विकिरण : Ultraviolet radiation

में वायु का तापमान मुश्किल से 7° से. या उससे भी अधिक होता है। विकिरण भी उतनी ही जल्दी होता है जिससे चलता-फिरता बादल भी शरीर को इतना ठंडा कर देता है कि उसका तापमान प्रायः आसपास की हवा से भी कम हो जाता है। निम्न या कहिए कम वायुमंडलीय आर्द्रता और लगातार सांय सांय बहती हवा के कारण शुष्कन[1] बहुत तेजी से होता है और खुली हवा में रहने वाला शरीर बहुत जल्दी सूख जाता है। ये चरम अवस्थाएं विरल वायुमंडल के कारण होती हैं। इस वायुमंडल की सघनता समुद्रतल के वायुमंडल से आधी होती है। ये परिस्थितियां हैं जो साधारण कीट के जीवन को दूभर बना देती हैं जिन्हें हम वनों, मैदानों, बागों और खेतों में देखते हैं। ये ही वे परिस्थितियां हैं, जो हमें किसी ऐसे ग्रह पर मिल सकती हैं जिसका वायुमंडल पृथ्वी के वायुमंडल से आधा सघन हो। उदाहरण के लिए मंगल ऐसा ही ग्रह है। इस अर्थ में संवृत वनों की ऊपरी सीमा से ऊपर हिमालय का कीट जीवन भौमेतर यानी पृथ्वीबाह्य[2] है, यह जीवन जानी पहचानी दुनिया से एकदम भिन्न है। ये कीट भारत में पैदा भी नहीं हुए थे हालांकि वे भी उतने ही भारतीय हैं जितने कि हममें से कोई।

हिमालय पर वनरेखा से ऊपर रहते हुए ये अत्यधिक विशिष्टीकृत प्रारूप हैं। ये कीट उन सभी भारतीय कीटों से एकदम भिन्न हैं जिनका हमने अब तक वर्णन किया है। मैदानी इलाकों के जिन कीटों से हम परिचित हैं उन्हें गरमाई, धूप और वनस्पति भाती है जबकि हिमालय पर रहने वाले कीटों को सर्दी सुहाती है, वे तेज रोशनी से बचते हैं और पत्थरों तथा हिम-आवरण के नीचे या मृदा में या प्रकाशविहीन वनस्पति के आश्रय में रहना पसंद करते हैं। उनका जीवित बचे रहना चरम वायुमंडलीय ठंड, हिम और बर्फ पर निर्भर है। हिम और बर्फ ही वहां के कीटों की नमी की जरूरत को पूरा करते हैं। उच्च-तुंगता वाले कीट हिम कोर या हिमनद सीमांत पर ही या उसके बहुत निकट पाए जाते हैं और जो क्षेत्र हिम से विहीन हैं वहां कीट या तो होते नहीं और होते भी हैं तो थोड़े-से। लंबी और कड़कड़ाती शीत ऋतु के दौरान जब वायुमंडलीय तापमान–45° से. नीचे चला जाता है तो कीट हिम आवरण के नीचे दबे हुए सुरक्षित रहते हैं। यह आवरण प्रायः 10-15 मी. मोटा होता है और अवशून्य[3] तापमानों से कीटों की रक्षा करने में एक प्रभावशाली कंबल का काम करता है। कीट मरते नहीं बल्कि शीतनिष्क्रिय हो जाते हैं और आगामी वर्ष की बसंत ऋतु में सारे के सारे सक्रिय हो उठते हैं। वे सभी लगभग आठ से दस सप्ताह तक रहने वाली ग्रीष्म ऋतु में ही पुनरुज्जीवित हो जाते हैं।

उच्च-तुंगता वाले कीट शून्य के आसपास के तापमान में तो मजे से रह सकते हैं लेकिन तापमान तनिक-सा भी बढ़ जाए तो वे कुछ मिनट के लिए भी जीवित नहीं बचे रह सकते।

---

1. शुष्कन : Desiccation
2. पृथ्वीबाह्य : Extraterrestrial
3. अवशून्य : Subzero

उनमें से कुछ कीट तो मानव के हाथ की गरमाई भी सहन नहीं कर सकते और मर जाते हैं।

हिमालय के वनों या भारत के मैदानों में रहने वाली जातियों की तुलना में उनके शरीर बहुत ज्यादा वर्णकित होते हैं और उनके रंग आमतौर पर अधिक गहरे तथा अधिक गहराई तक होते हैं। गहरी वर्णकता उन्हें अत्यधिक प्रकाश, विशेष रूप से पराबैंगनी प्रकाश के क्षतिकारक प्रभाव से बचाती है और साथ साथ जब वे हिम के ऊपर बैठकर आराम करते हैं तब सूर्य की गरमाहट को अवशोषित करने में उनकी सहायता करती है।

हालांकि बहुत से उच्च-तुंगता वाले कीट वहां पर उगने वाले लाइकेन, मॉस और अन्य पौधों का आहार करते हैं लेकिन बहुसंख्यक कीट अपने पोषण के लिए गरम मौसम में ऊपर की ओर प्रवाहित वायु-धारा द्वारा उत्तर भारत के दूर दराज और धूलभरे मैदानी क्षेत्रों से उठाकर लाए गए परागकणों, बीजाणुओं, बीजों, मृत मकड़ियों ओर कीटों पर निर्भर करते हैं। वायु द्वारा उठाए गए पदार्थ उच्चतर वायु स्तरों पर पहुंचकर द्रुतशीतित[1] हो जाते हैं और उसके बाद उपरी वायु धाराओं द्वारा हिमालय की हिम सतह पर ले जाए जाते हैं। इस प्रकार उच्च-तुंगता वाले कीटों का आहार वस्तुतया वायु द्वारा मैदानों से लाया हुआ होता है। हिम के मैदान और हिमनद इन कीटों के नियमित अशन-स्थल हैं। ये वे स्थान हैं जहां के कीट वायु-वाहित आहार को खाने के लिए आए अन्य कीटों और मकड़ियों को खाते हैं। जैसे जैसे हम हिमालय पर और ऊपर जाते हैं वैसे वैसे हमें अधिक से अधिक मांसाहारी तथा परभक्षी कीट मिलते हैं। उच्चतम-तुंगताओं पर मांसाहारी और शिकारी कीटों का ही साम्राज्य है।

उच्च-तुंगता पर कीट जीवन इस मायने में भी अद्भुत है कि वहां बिना पंख के और न उड़ने वाले कीटों की प्रमुखता है। उनमें से बहुत के पंख या तो होते ही नहीं या लघुकृत और बेकार होते हैं। थोड़े-से कीट जो उड़ते भी हैं वे विरले ही उड़ते हैं और विरल पवनहीन कालावधियों में उड़ते हैं। निरंतर बहने वाली पवन के ठंडे प्रदेशों में उड़ान न केवल कठिन होती है बल्कि उसकी जरूरत भी नहीं होती।

हिमालय के उच्च-तुंगता वाले कीट यद्यपि हिम और बर्फ पर रहते हैं लेकिन वे उत्तरध्रुवीय और दक्षिणध्रुवीय प्रदेशों में पाए जाने वाले कीटों से मूलरूप से भिन्न होते हैं। हम यहां केवल कुछ ही रोचक बातों का उल्लेख करेंगे। हिमालय के कीट हमेशा ही बहुत ज्यादा वर्णकित होते हैं जबकि उत्तरध्रुवीय और दक्षिणध्रुवीय प्रदेश के कीट फीके रंग के होते हैं। उत्तर और दक्षिणध्रुवीय क्षेत्रों के कीट 'ठंड और हिम के बिना भी' जीवित रहते हैं लेकिन हिमालय पर रहने वाले कीट ठंड और हिम के कारण ही जीवित बने रहते हैं। उत्तरध्रुवीय और दक्षिणध्रुवीय कीट दरअसल मैदानी इलाकों के वासी हैं लेकिन हिमालय के कीट ऐसी दुनिया के वासी हैं जहां वायुमंडल मैदानों की तुलना में विरल होता है।

---

1. द्रुतशीतित : Chilled

अधिकांश वास्तविक उच्च-तुंगता वाले कीट गिरिपिंडों[1] पर पृथकित होते हैं जिसका परिणाम यह हुआ कि हिमालय के लगभग प्रत्येक शिखर का अपना अनोखा जीव संकुल[2] है जिसका जन्म और विकास उसी चोटी पर हुआ है। हिमालय के उच्च-तुंगता वाले कीटों का विवरण उत्तरोत्तर उच्च-तुंगताओं पर विभिन्न जातियों के अनोखे स्तरण[3] को दर्शाता है। 3,000-3,600 मी. की ऊंचाई पर पाई जाने वाली जातियां 4,000 मी. की ऊंचाई पर गायब हो जाती हैं और उसकी जगह दूसरी जातियां पाई जाती हैं। 4,000 मी. पर मिलने वाली जातियों का 4,500 मी. पर नामोनिशान भी नहीं मिलता और उसकी जगह दूसरी जातियां मिलती हैं। 5,800-6,300 मी. की ऊंचाई पर मिलने वाली जातियां निम्न स्तरों पर बिल्कुल ही नहीं पाई जातीं। जैसे जैसे हम वनरेखा से अधिकाधिक ऊपर चढ़ते जाते हैं वैसे वैसे जातियों की संख्या कम होती जाती है और अंत में 6,000 मी. की चरम ऊंचाई और उससे ऊपर हमें स्थायी रूप से रहने वाली केवल एक दर्जन के लगभग जातियां मिलती हैं। वनरेखा पर मिलने वाली जातियों की संख्या उस रेखा से नीचे वन में पाई जाने वाली जातियों की तुलना में आधी बैठती है। स्थायी हिमरेखा पर अचानक ही जातियों की संख्या में और भी कमी आ जाती है। यहां हमें वनरेखा की अपेक्षा कीट जीवन का दसवां भाग ही देखने को मिलता है। इसलिए हिमालय पर वनरेखा एक नई दुनिया की देहरी[4] है जो लौकिक होने के साथ साथ अलौकिक भी है।

अधिकांश हिमालयी कीट हिंद-चीन, दक्षिण चीन और मलय प्रभव के वंशज हैं। इससे भिन्न वनरेखा से ऊपर हिमालयी कीट स्वस्थानिक (उसी स्थल पर पैदा) होते हैं और उनका बंधुत्व पामीर, तिएन शान और मध्यएशिया में उत्तर में तुर्कीस्तान के दूसरे पहाड़ों के कीटों से होता है। उनकी पूर्वजता[5] किसी भी सूरत से भारतीय नहीं है। वे वास्तव में मूल निम्नभूमि स्टेप[6] कीटों के विशष्टीकृत वंशज हैं जो उस जमीन के ऊपर उठने के साथ साथ, जिस पर वे रहते थे,ऐसे उच्च-तुंगता रूपों में रूपांतरित हो गए जिन्हें ठंड प्यारी लगती है। यह जमीन हिमालय पर्वत की श्रेणियों के उत्थान[7] के दौरान उच्चतर-तुंगताओं में बदल गई। जिस भूमि पर वे रहते थे वह हिमालय पर्वतमाला के उत्थान से उच्च-तुंगताओं के रूप में उठ गई इसलिए उन कीटों का विकास हिमालय के जीवन-वृत्त का अभिन्न अंग है।

कुछ प्ररूपी[8] उच्च-तुंगता वाले कीट

हिमालय पर्वत के मुख्य उच्च-तुंगता वाले कीट—मई मक्खियां, अश्म मक्खियां, भृंग,

---

1. गिरिपिंड : Massif
2. संकुल : Complex
3. स्तरण : Stratification
4. देहरी : Threshold
5. पूर्वजता : Ancestry
6. निम्नभूमि स्टेप : Lowland steppes
7. उत्थान : Uplift
8. प्ररूपी : Typical

चेल मक्खियां, तितलियां, मक्षिकाएं, कुंडलपुच्छ और कुछ अत्यधिक विशिष्टीकृत टिड्डे (जो अधिकतर पंखहीन) हैं। कुछ चींटियां और गुंज मक्खियां[1] (लेकिन मधुमक्खियां नहीं) भी स्वभाव से उच्च-तुंगताओं पर ही रहती हैं।

मई मक्खियों, अश्म मक्खियों, चेल मक्खियों और द्विपंखी मक्खियों के लार्वे पिघलती हिम और बर्फ से निकलने वाले नालों में रहते हैं। हिमालय पर सामान्यतया पाई जाने वाली मई मक्खियां हैं *बेटिस* और अश्म मक्खियां हैं *नेम्यूरा, कैम्पिया* आदि। डांस और मशकाभ अपना आरंभिक जीवन इन नालों में ही बिताते हैं। बहते हुए पानी में चलते फिरते समय मजबूत पकड़ के लिए इनके लार्वो और प्यूपों में असाधारण और शक्तिशाली अंग होते हैं। पानी का तामान 0.5 से 3^0 से. के आसपास रहता है और धारा का वेग आमतौर पर ज्यादा होता है।

हिमालय की भीतरी घाटियों में लगभग 4,000 मी. और उससे ज्यादा की उच्च-तुंगताओं पर हिमानी वेग धाराओं[2] में पर्वत-मशकाभ *ड्यूटेरोफ्लेबिया* के अत्यंत विशिष्ट लार्वे पाए जाते हैं। वे सोपानी ठंडे पानी के नीचे निमज्जित पत्थरों पर रहते हैं। वे चट्टान की सतह से चिपके रहते हैं और अपने कूट पादों[3] की सहायता से चट्टान के ऊपर जानबूझकर धीरे धीरे रेंगते हैं। इन टांगों के सिरे पर पैने हुकों का वृत्तक[4] यानी छोटा-सा घेरा होता है। पर्वत-मशकाभ उत्तर पश्चिम हिमालय, तिएन शान, अलताई, कोरिया, कामचटका, कैनाडी रॉकीस और संयुक्त राज्य अमेरिका के रॉकीस पर पाए जाते हैं। प्रौढ़ मक्खियां बहुत कोमल मशकाभ होते हैं जिनकी शृंगिकाएं लंबी और पतली होती हैं और वे मई मक्खियों से बहुत ज्यादा मिलती जुलती हैं।

पानी, पिघलते हिम और हिमनद के किनारे पर हमें अनेक प्रकार के कैराबिड भृंग जैसे कि *नेब्रिया, बेम्बिडियॉन,* अटन भृंग[5] *एलिओकैरा* और *एथिटा* और कुछ टेनीब्रियोनिड भृंग मिलते हैं। हिम की सतह गहरे रंग के लाखों हिमपिस्सुओं (*कुंडलपुच्छों*) से आमतौर पर काली हो जाती है। ये हिमपिस्सू, *प्रोइसोटोमा,* वातोढ यानी हवा के साथ उड़कर आए कवक बीजाणुओं और परागकणों या अन्य मृत जैव पदार्थों को खाने के लिए छटपटाते और रेंगते रहते हैं। *एथिटा* अटन भृंग 5,600 मी. की ऊंचाई पर पाया जाता है जो भृंगों के लिए ऊंचाई का विश्व-रिकार्ड है। 5,000 मी. की ऊंचाई पर *कोनोफाइमा* और *गॉम्फोमैस्टक्स* जैसे पंखहीन टिड्डे पाए जाते हैं। हिम कोर[6] के पास पत्थरों के नीचे मिट्टी में विचित्र दिखने वाले और काले रंग के *एनीक्यूरा* कर्णकीट रहते है। वहां रोमिल

---

1. गुंजमक्षिकाएं : Bumble bees
2. हिमानी वेग धाराएं : Glacial torrents
3. कूट पाद : False legs
4. वृत्तक : Circlet
5. अटन भृंग : Rove beetles
6. हिम कोर : Snow edge

एन्थोमिआइड और मंडराती मक्खियों[1] की भरमार हैं। हिमालय की उच्च-तुंगताओं पर जिन जातियों की तितलियां विशेषतया मिलती हैं वे हैं–*पैपिलियो, आर्गाइनिस, पाईरिस, कोलियास* और *पारनैसियस*। *पारनैसियस* तितलियां वस्तुतया 3,000 मी. से नीचे नहीं होतीं बल्कि 6,300 मी. की ऊंचाई तक पाई जाती हैं।

1. मंडराती मक्खियां : Hoverflies

10

भारत में कीट और मनुष्य

हमारी तरह भारतीय कीट भी हमारी मातृभूमि के वासी हैं और वे उसी तरह की जलवायु, भोजन और अन्य अनिवार्य परिस्थितियों के भागीदार हैं जो भारत की विशेषता है। मनुष्य की दृष्टि से भारतीय कीटों को मोटे तौर पर चार समूहों में रखा गया है– (1) उदासीन[1] कीट (2) हानिकारक कीट (3) उपयोगी कीट और (4) हितकारी कीट। यह समूहन हालांकि सुविधा के लिए आवश्यक है लेकिन है कृत्रिम और पूरी तरह से अवैज्ञानिक। हमारे लिए हमेशा किसी भी कीट को पूर्णतया हानिकर या पूर्णतया उपयोगी कहना संभव नहीं है। उदाहरण के लिए मधुमक्खी शहद और मधुमोम[2] देने के नाते उपयोगी है, फसलों और फलवृक्षों का पर-परागण करने के कारण हितकर है और कभी कभी हमें डंक मारती है, इसलिए हानिकर है। जो कीट वर्तमान समय में हानिकर है या देश के किसी भाग में हानिकर है वह कुछ काल बाद या देश के दूसरे भागों में पूरी तरह से अहानिकर हो सकता है या मनुष्य के लिए महत्वहीन हो सकता है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि यह समूहन भारत के कीट-जीवन के अत्यंत सूक्ष्मतया छोटे अंश को लेकर किया गया है। फिर भी अगर हम यह न भूलें कि समूह बनाने की यह विधि नितांत काल्पनिक है तो यहां इसे परखने में कोई गंभीर हानि नहीं है।

उदासीन कीट

भारत में कीटों की बहुत बड़ी आबादी के शायद 99% से भी अधिक के प्रति आम आदमी में लेशमात्र भी रुचि नहीं है। आम आदमी का जीवन और भारत में व्याप्त इस झुंड के जीवन का कभी मिलाप नहीं होता। दोनों के उद्देश्यों और प्रयोजनों का एक-दूसरे पर रत्ती भर प्रभाव भी नहीं पड़ता। ये कीट मरें या जिएं आम आदमी को इस बात से कोई सरोकार नहीं है। जिन्हें हम प्रकृति प्रेमी कहते हैं उन थोड़े से व्यक्तियों के लिए कीट जीवन केवल

---

1. उदासीन : Neutral or indifferent 2. मधुमोम : Bees' wax

शैक्षिक रुचि का विषय है। यहां तक कि कृषि, वन और पशुचिकित्सा विज्ञान के विभागों में कार्यरत विशेषज्ञों ने न तो उन्हें देखा है और न उनके बारे में अधिक जानकारी है। ये कीट एकाकी जीवन बिताते हुए प्रकृति में सामान्य संतुलन बनाए रखने में चुपचाप अपना योगदान देते हुए मर जाते हैं और कोई उनका गुणगान नहीं करता। कीट कहां मिलेंगे? सब जगह—मिट्टी में, घास में, वन में, पानी में और हिम तथा बर्फ पर। जैसा कि इस पुस्तक के प्रारंभ में ही बताया जा चुका है अगर ये कीट न होते तो न तो हमारी वनस्पति होती और न हमें भूदृश्य देखने को मिलते।

हानिकर कीट

हानिकर कीट मनुष्य के किसी वांछित उद्देश्य की पूर्ति में बाधा डालते हैं और इसे प्राप्त करने से रोकते हैं या जो कुछ मनुष्य ने पा लिया है उसका आनंद उठाने से उसे वंचित रखते हैं। ये कीट मनुष्य की खड़ी फसलों, सब्जियों और फलों को नष्ट कर देते हैं, अनाज के गोदामों, कच्चे उत्पादों और तैयार माल के भंडारों को खराब करके उन्हें काम में लाने लायक नहीं छोड़ते तथा खीझ, पीड़ा और शारीरिक क्षति पहुंचाते हैं या रोगों के रोगाणुओं का संचार करते हैं। कीट मनुष्यों के पालतू पशुओं को काटते हैं अथवा उनमें घातक रोगों का संचार करते हैं। कुछ कीट प्रायः अन्य कीटों के शत्रु होते हैं, जो आदमी के लिए हितकर या अनुकूली होते हैं।

कीटों से कृषि, उद्योग, पशुपालन और जन स्वास्थ्य को होने वाली क्षति सदैव भारी हो ऐसी बात नहीं है। जब क्षति की मात्रा या उसकी प्रकृति ऐसी हो कि उससे समुदाय को पर्याप्त आर्थिक हानि हो तो कीट को "पीड़क"[1] कहते हैं। दुर्भाग्यवश हमारे देश में हर उस कीट को जो किसी पत्ती को कुतर कर खा जाए या अन्न-भंडारों में घुस आए फौरन ही पीड़क ठहरा दिया जाता है। वास्तव में भारत में कोई कीट बिरले ही पीड़क होता है जिसका मुख्य कारण यह है कि कीट के क्रियाकलापों से होने वाली आर्थिक हानि नाममात्र की होती है। विशेषकर परंपरागत कृषि की परिस्थितियों में तो यह हानि कहने भर की ही होती है। सौभाग्यवश हमारे कीटों की बहुत कम जातियां ही सही मायने में पीड़क हैं। भारतीय कीटों की यह अति अल्प संख्या हमारे कृषि-कीट वैज्ञानिकों के लिए चिंता का विषय बनी हुई है जबकि दूसरे कुछ देश ऐसी आबादी से चिंतित नहीं होते। रूढ़िवादी भारतीय कृषक अपनी परंपरागत समझदारी से शांत बना रहकर इन कीटों की तरफ से बस बेपरवाह रहता है।

हानिकर कीटों की सूची में स्वाभाविक रूप से सबसे ऊपर टिड्डियों का नाम आता है। इसके बाद दीमकों की बारी आती है जो मनुष्य के लिए अत्यधिक विनाशक कीट हैं।

1. पीड़क : Pest

वे चाय, गन्ना और दूसरी खड़ी फसलों, फलों, प्रकाष्ठ[1] और काष्ठ, लकड़ी के फर्नीचर और घरेलू सामान को नष्ट कर देती हैं, इसके बाद *हायरोग्लाइफस बनिआन* और *ऑक्सीआ वेलोक्स* जैसे धान के टिड्डे, *लेप्टोकॉरिजा वेरीकॉर्निस* धान का मत्कुण, चावल का *हिस्पा आर्मीजेरा,* गन्ने के तने में छेद करने वाले विभिन्न शलभों के लार्वे हैं। कपास की खेती को *इयरियस* और *प्लेटीएड्रा* शलभ के गोलकशलभ[2] लार्वे व्यापक रूप से क्षति पहुंचाते हैं। आलू-शलभ के लार्वे खेतों और गोदामों में आलू को खराब कर देते हैं। डे*कस* फलमक्खी कुकरबिटों, संतरा, आम आदि में प्रजनन करती है। कॉडलिंग शलभ के लार्वे सेब को क्षतिग्रस्त करते हैं। चावल का घुन, *कैलेन्ड्रा ओराइजी* और धान्यागार घुन, *कैलेन्ड्रा ग्रेनेरिया* भंडारित चावल और गेहूं को खराब कर देते हैं। *टेनेब्रियो, सिल्वेनस, कोर्साइरा, सिटोट्रोगा* आदि और अन्य कीट-लार्वे भंडार में आटे और अनाज के दूसरे उत्पादों में प्रजनन करके उसे ऐसा बना देते हैं कि मनुष्य उसका किसी भी तरह से उपयोग न कर सके। लेकिन यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि जो कीट देश के एक भाग में हानिकर है और कुछ क्षति पहुंचाता है वह किसी दूसरी जगह पूर्णतया अहानिकर हो। उसी इलाके में संभव है कि कीट जातियां साल दर साल हानिकर न हों बल्कि किसी वन्य पौधे पर चली जाएं और अनेक वर्षों के अंतराल के बाद किसी विशेष फसल पर फिर से प्रकट हों। इस प्रकार हमारे देश में हानिकर कीटों द्वारा फसल की क्षति एक जटिल समस्या है। ·

फसलों, फलों, सब्जियों और भंडारित उत्पादों पर आक्रमण करनेवाले अनेक कीटों के अतिरिक्त वे कीट भी हैं जो मनुष्य में विभिन्न रोग फैलाते हैं। कीटों द्वारा फैलाए जाने वाले रोगों में मलेरिया, पीत ज्वर, निद्रा रोग[3], फाइलेरियता गिल्टी प्लेग[4], टाइफस, टायफॉइड, हैजा, पेचिश, प्रवाहिका (दस्त), मक्षिकता[5], प्राच्य व्रण[6], सिकता मक्षी ज्वर[7] तथा अन्य उष्णकटिबंधीय रोग महत्वपूर्ण हैं। मानव रोगों के महत्वपूर्ण संचारियों[8] में मच्छर, सिकता मक्खियां (*फ्लेबोटोमस*), घरेलू मक्खियां, मांस मक्खी, नेत्र मक्खी, सिर और शरीर की जूंएं, पिस्सू आदि शमिल हैं। अनेक कीट ढोरों, घोड़ों, कुत्तों, मुर्गियों और अन्य घरेलू पशुओं पर आक्रमण करके उनमें घातक रोग पैदा करते हैं और कभी कभी मनुष्य के लिए भी हानिकर होते हैं। एफिड श्वेत मक्खियां, जैसिड आदि सब्जियों, फसलों, फलों आदि में रोगों का संचार करते हैं इसलिए इन्हें भी हानिकर कीट मानना चाहिए।

1. प्रकाष्ठ : Timber
2. गोलकशलभ : Bollworm
3. निद्रा रोग : Sleeping sickness
4. गिल्टी प्लेग : Bubonic plague
5. मक्षिकता : Myasis
6. प्राच्य व्रण : Oriental sore
7. सिकता मक्षी ज्वर : Sandfly fever
8. संचारी : Transmitters

उपयोगी कीट

उपयोगी कीटों के कारण मनुष्य को भोजन, वस्त्र, औषधियां, मोम, लाख, रंजक[1] और अनेक दूसरे मूल्यवान उत्पाद मिलते हैं। भारत और विश्व के अनेक भागों में अनेक कीट और उनके लार्वे बड़े स्वाद से खाए जाते हैं। अफ्रीका, मिस्र, सूडान, अरब और संयुक्त राज्य अमेरिका के कई भागों में टिड्डियां, टिड्डे, भृंगक और दूसरे कीट वसा में तले जाते हैं, स्वादिष्ट बनाए जाते हैं और खाए जाते हैं। संयुक्त राज्य में अनेक लोकप्रिय रेस्तरांओं में पकाए गए टिड्डे चाकलेट में डुबाकर परोसे जाते हैं। हमारे अपने देश की अनेक वन जनजातियों में दीमक और भृंगक घी में तले जाते हैं, विभिन्न मसालों से स्वादिष्ट बनाए जाते हैं और चावल के साथ उबालकर मनपसंद दावत की तैयारी की जाती है।

शहद अनादि काल से मनुष्य के लिए एक संपूर्ण आहार रहा है। यह मधुमक्खियों द्वारा बनाया जाता है और उद्योग तथा औषधि में इसका व्यापक उपयोग किया जाता है। *बॉन्बिक्स, अटैकस* शलभ और अन्य रेशम कीटों की इल्लियों द्वारा बनाए जाने वाला रेशम भारत में बहुत मूल्यवान है। उदाहरण के लिए वेदों में उपमा दी गई है कि ईश्वर ने ब्रह्मांड का अपने से ही सृजन किया है जैसे कि रेशमकीट की इल्ली अपने भीतर से ही रेशम उत्पन्न करती है। रामायण में रेशम के उपयोग का वर्णन है। विष्णु भगवान के परिधान का वर्णन करते हुए उन्हें पीले रेशम से सज्जित और सरस्वती देवी को श्वेत रेशम से सुशोभित बताया गया है। लाख-कीट, *टैकार्डिया* द्वारा लाख पैदा की जाती है जो एक राल (रेजिन) है। भारत में लाख का उपयोग बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है और आधुनिक संश्लेपित प्लास्टिक भी भारत के सुरक्षित लाख एकाधिकार से छूटी नहीं है। जिसने भी महाभारत पढ़ा होगा उसे यह पढ़कर आश्चर्य हुआ होगा कि शत्रु के विनाश के लिए लाख का महल बनवाने का विचार उसमें आया है ताकि उसे सुविधापूर्वक जलाया जा सके। अभी हाल तक हमारे देश में कपड़ों की रंगाई के लिए लाख-रंजक काम में लाया जाता था। मिठाइयों को रंग देने में और प्रसाधन सामग्री में कार्मीन रंजक का व्यापक उपयोग होता है। यह कैक्टस पौधे पर रहने वाले कॉक्सिड बग (कौक्नियल कीट) से निकाला जाता है। बाइबल में जिन मन्ना का उल्लेख आया है वह झाऊ[2] के वृक्ष पर रहने वाले *ट्रैब्युटिना* बग द्वारा स्रावित मधुबिंदु है जिसे सुखाकर ठोस बनाया गया है। बांज के पेड़ों पर सिनिपिड बर्र द्वारा अर्बुद[3] के रूप में बनाई गयी पिटिकाओं[4] का उपयोग लंबे समय से स्याही, रंजकों के निर्माण में और चमड़ा कमाने में होता रहा है। औषधि के लिए और केश तेल के निर्माण के लिए प्रयोग की जाने वाली *कैन्थेरिडीन लिटा, मिलो, माइलेब्रिस* जैसे फफोला भृंगों से प्राप्त की

1. रंजक : Dyes
2. झाऊ : Tamarisk
3. अर्बुद : Tumour
4. पिटिकाएं : Galls

जाती है। सुंदर धात्विक और रंगदीप्त[1] रत्न-भृंगों[2] के पक्षवर्म[3] और दक्षिण अमरीका की मॉर्फो-तितली के पंख रत्न निर्माताओं द्वारा जड़त और रत्न-कार्य के लिए उपयोग में लाए जाते हैं। कुछ मांस मक्खियों के अपादक (मैगट) एक प्रतिरोधी और जीवाणुनाशी पदार्थ पैदा करते हैं जो ऐलेन्टॉइन[4] कहलाता है। यह मनुष्य में खुले हुए घावों और व्रणों को सड़ने से बचाता है और उन्हें जल्दी भरने में सहायता देता है। मई मक्खियों और मच्छरों के जलीय लार्वे अनेक मूल्यवान और खाई जाने वाली मछलियों के लिए भोजन के रूप में उपयोगी हैं। विभिन्न प्रकार की मक्खियां मछली पकड़ने में अति उत्तम चारे के रूप में काम आती हैं। केलामक्खी, *ड्रोसोफिला*, जिसकी कुछ ही दिनों में एक पीढ़ी पूरी हो जाती है, का संयुक्त राज्यों और दूसरी जगहों पर आनुवांशिक अनुसंधान में व्यापक रूप से उपयोग किया जा रहा है। इसके उपयोग ने संकर लक्षणों[5] की वंशागति की अनेक दुरुह समस्याओं के स्पष्टीकरण को सुगम बना दिया है।

हितकर कीट

हितकर कीट मनुष्य की उसके उद्देश्यों की प्राप्ति में किसी न किसी रूप में सहायता करते हैं। हालांकि मनुष्य भोजन या वस्त्र और औषधि के रूप में उनका उपयोग नहीं करता लेकिन उनके क्रियाकलाप कई तरह से मनुष्य को लाभ पहुंचाते हैं।

अनेक कीट उन दूसरे कीटों के शत्रु हैं जो कृषि, उद्योग और जनस्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। इस प्रकार वे हमारे शत्रुओं के शत्रु होने के नाते हमारे मित्र हैं। ये कीट प्रायः बाग, खेत और फलोद्यान के हानिकारक खरपतवारों (जो आसानी से नष्ट नहीं होतीं) को नष्ट करके फूलों, फसलों, फलों और सब्जियों का उत्पादन अधिक बढ़ाने में सहायता देते हैं। वस्तुतया हितकर कीट हमारे सहयोगी और साथी हैं।

हितकर कीटों का अत्यंत महत्वपूर्ण, यद्यपि आमतौर पर पूरी तरह से उपेक्षित वर्ग, पुष्पों में पर-परागण संपन्न कर फसलों, बीजों, सब्जियों, दृढ़फलों[6] और फलों का उत्पादन बढ़ाने में मनुष्य की सहायता करता है। वायु-परागित पुष्पों को छोड़कर अधिकांश पौधे अपने फूलों के पर-परागण के लिए विभिन्न कीटों पर निर्भर रहते हैं। वास्तविकता यह है कि पादपों ने अपने फूलों का विकास केवल विशिष्ट कीटों को आकर्षित करने के लिए ही किया है। वे उन्हें मीठे मीठे खाने की रिश्वत देते हैं जिससे कि वे परागकणों को एक फूल से दूसरे पर ले जाकर उसका कुछ अंश ग्राही वर्तिकाग्र[7] पर जमा करें। यह प्रक्रम

---

1. रंगदीप्त : Iridescent
2. रत्न-भृंग : Jewel beetle
3. पक्षवर्म : Elytra
4. ऐलेन्टाइन : Allantoin
5. संकर लक्षण : Hybrid character
6. दृढ़फल : Nuts
7. ग्राही वर्तिकाग्र : Receptive Stigma

पुष्प दर पुष्प चलता है। ये पौधे कीटपरागी[1] कहलाते हैं। उनके फूलों की रचना ऐसी होती है कि विशिष्ट कीट के अतिरिक्त कोई अन्य उनमें नहीं घुस सकता और न मकरंद या पराग निकाल सकता है। चुनी हुई कीट जाति चटख रंगों, चिह्नों, बालों और अन्य प्रयुक्तियों[2] द्वारा मकरंद कोष[3] और पुंकेसर[4] या स्त्रीकेसर[5] की ओर निर्देशित होती है ताकि इन्हें मकरंद कोष खोजने के लिए समय और ऊर्जा जाया न करनी पड़े। ये प्रयुक्तियां वास्तव में उन अवांछित कीटों को दूर रखती हैं या उन्हें रोकती हैं जो पौधे के पराग या मकरंद को केवल लूटते हैं और जिनका परागण से कोई संबंध नहीं होता। फूलों पर आने वाले कीट स्वयं भी शारीरिक रूप से और स्वभाव से इतने अधिक विशिष्टीकृत होते हैं कि वे हर फूल पर न जाकर केवल विशिष्ट फूल पर ही जा सकते हैं और उसका मकरंद पीते हैं। वस्तुतया फूल और फूल पर आने वाले कीट एक-दूसरे के लिए बने होते हैं। कीट में मकरंद कोष को बेधने और मीठे मकरंद को पीने के लिए विशेष अंग होते हैं। ये अंग परागकणों को भोजन के रूप में एकत्रित करने और नीड़ में वापस लौटते हुए उन्हें साथ ले जाने के काम भी आते हैं। फूलों को पर-परागण कर्ता कीटों के आधार पर समूहों में रखा जा सकता है। इस प्रकार हायमेनोप्टेरा फूल होते हैं जिनके मकरंद कोष छिपे हुए होते हैं और प्रायः जिनकी पुष्पी क्रियाविधि भी बहुत जटिल होती है। केवल मधुमक्खियां, गुंज मक्खियां, तक्ष मक्खियां[6] आदि ही इन फूलों से मकरंद और पराग ले सकती हैं। उदाहरण के लिए इस श्रेणी के फूलों में *स्क्रोफुलेरिया, आइरिस, प्रिमुला, एकोनाइटम, लेबिएटी,* अनेक आर्किड, *पैपिलियोनेसी* आदि आते हैं। लेपिडोप्टेरा फूलों के दलपुंज[7] विशेष रूप से लंबे और नलिकाकार होते हैं जिसकी तली में मकरंद कोष चतुराई से छिपे और सुरक्षित रहते हैं लेकिन पराग-धारण करने वाले पुंकेसर स्पष्ट रूप से खुले रहते हैं। तितलियों तथा शलभों को मकरंद पीते हुए उतरने के लिए जगह होती है या नहीं भी होती। छोटी जीभ वाली मधुमक्खियां लंबे दलपुंज के पेंदे में स्थित मकरंद कोषों तक नहीं पहुंच पातीं और इस प्रकार एकदम हतोत्साहित हो जाती हैं। *लिलि, फ्लोक्स, डायेन्थस* आदि कुछ सामान्य तितली-फूल हैं और *लॉनीसेरा, सैपोनेरिया* आदि सामान्य शलभ-फूल हैं। अधिकांश कम्पोज़िटी तितली द्वारा परागित होते हैं। डिप्टेरा फूल आमतौर पर सफेद या नीले होते हैं और इनके मकरंद कोष अनावृत तथा प्रायः दुर्गंधयुक्त होते हैं।

अधिकतर फलोद्यान के वृक्षों, लगभग सभी सब्जियों, सभी फलीदार फसलों, अनेक चारा फसलों, तिलहनों, कपास, तंबाकू, कॉफी और औषध तथा अन्य उत्पाद देने वाले

1. कीटपरागी : Entomogamous
2. प्रयुक्तियां : Contrivances
3. मकरंद कोष : Nectary
4. पुंकेसर : Stamen
5. स्त्रीकेसर : Pistil
6. तक्ष मक्खी : Carpenter bee
7. दलपुंज : Corolla

दर्जनों मूल्यवान पौधों का पूरी तरह से विभिन्न कीटों के माध्यम से पर-परागण होता है। फसलों की भरी पूरी फसल लेने के लिए फलोद्यानों में मधुमक्खियों का छत्ता रखना लाभदायक होता है। हमारे 'जन सेवकों' की तरह अगर कीट भी 'नियम से काम' की घोषणा कर दें और फूलों को परागित करने से मना कर दें तो मनुष्य कभी भी दालें, तिलहन, कपास, आम, संतरे, सेब, नाशपाती और अंजीर नहीं उगा सकेगा। ये तो कुछ ही चीजों के नाम दिए गए हैं अन्यथा बहुत लंबी सूची हो जाएगी। यह सब न होने पर तीव्र कुपोषण के कारण आधी से ज्यादा जनसंख्या लुप्त हो जाएगी।

हितकर कीटों के दूसरे वर्ग में वे जातियां शामिल हैं जो विभिन्न खरपतवारों को खाती हैं और उन्हें नियंत्रित रखने में सहायता देती हैं। हमारे खेत या फलोद्यान की हर खरपतवार पर एक या अनेक कीट हमला बोलते हैं जिसकी वजह से जमीन पर खरपतवारों की संख्या अधिक नहीं बढ़ती। भारत में खरपतवार नाशी कीट का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण नागफनी का चूर्णी मत्कुण, *डेक्टिलोपियस टोमेन्टोसस* है। लगभग साठ साल पहले नागफनी के पौधे *ओपन्शिया* ने खेतों पर ऐसा कब्जा जमा लिया था कि उसके द्वारा बने अवरोधों को भेदना असंभव हो गया और दक्षिण भारत के अनेक भागों में तो खेती नहीं हो पाती थी। तब विदेश से चूर्णी मत्कुण आई जिसने नागफनी पर इतनी भारी संख्या में प्रजनन किया कि इस खरपतवार का लगभग पूरी तरह से सफाया हो गया और अब यह पहले जैसा संकट नहीं रही।

हितकर जातियों का तीसरा वर्ग उन जातियों का है जो मनुष्य के लिए हानिकर कीटों का भक्षण करती हैं और उनके परजीवी हैं। हमारे शत्रुओं के शत्रु होने के नाते ऐसे कीट हमारे मित्र हैं। फसलों के कीट पीड़कों के विरुद्ध मनुष्य ने जो युद्ध छेड़ा हुआ है उसमें ये कीट हमारे मित्र, साथी और पंचमांग-छापामार-योद्धा[1] की भूमिका निभाते हैं। यह कीटों का महा दुर्भाग्य है और मनुष्यों के लिए परम सौभाग्य है कि स्वयं कीट ही कीटों के सबसे कठोर शत्रु हैं। हितकर कीट सभी जगह मनुष्यों की जो भलाई कर रहे हैं उसे कूतना कठिन है और इस नाते उनके भारी ऋण को हम चुका भी पायेंगे इसकी आशा करना ही व्यर्थ है। सामान्य परभक्षी जैसे प्रार्थी मेन्टिड, व्याध मक्खी, सिसिन्डेलिड, कैरेबिड, सोनपंखी भृंग, बरटें, बर्र, चींटियां, दस्यु मक्खियां[2] आदि प्रतिदिन हर घंटे असंख्य टिड्डों, झींगुरों, मक्खियों, मच्छरों, इल्लियों, एफिडों और अनेकानेक दूसरे क्षतिकारक कीटों की क्रमबद्ध रूप से खोज करते हैं और उन्हें नष्ट कर देते हैं। इन न थकने वाले परभक्षियों को "कृषि पीड़कों" को कहां तलाशा जाए और उन्हें कैसे पराजित करके मारा जाए का ज्ञान है जबकि मनुष्य को अभी भी इस बात का पूरा पूरा ज्ञान नहीं है। अगर आदमी को किसी हानिकर कीट को

---

1. पंचमांग-छापामार-योद्धा : Fifth-column-guerilla-fighters
2. दस्यु मक्खियां : Robber flies

नियंत्रित करने में सफलता पानी है तो उसे अपने कीट मित्रों के श्रेष्ठ ज्ञान और उत्तर शक्ति पर निर्भर होते हुए उन्हें आजादी देनी होगी ताकि वे आदमी के लिए काम कर सकें।

न केवल परभक्षी कीट बल्कि कीटाहारी परजीवी कीट भी हानिकर कीटों की नब्बे प्रतिशत आबादी को नष्ट कर देते हैं। वे हानिकर कीटों के अंडों, लार्वों, प्यूपों आदि पर आक्रमण करके अप्रत्यक्ष रूप से और न्यूनतम लागत तथा अधिकतम दक्षता से यह कार्य करते हैं। वे जिस बढ़िया तरीके से हानिकर कीटों की अत्यंत असुरक्षित अवस्थाओं को ढूंढ़ निकालते हैं वैसा कर सकने की किसान आशा भी नहीं कर सकता। अधिकांश परजीवी कीट हाइमनोप्टेरा (कलापंखी) और डिप्टेरा (द्विपंखी) गणों में आते हैं। मुख्य कलापंखी परजीवी—इकन्यूमोनिड, ब्रेकोनिड, इवानिआइड, चेल्सिडॉइड, प्रोक्टोट्रिपोइड आदि हैं। द्विपंखी गण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कीटाहारी परजीवी टैकिनिड हैं।

भारत में अभी तक लगभग पांच हजार कीटाहारी परजीवियों का पता लगाया जा चुका है लेकिन अभी बहुतों की खोज की जानी है। उनमें से प्रायः हर कीट मनुष्य के लिए हितकर है। उनके स्वभाव का ऊपरी वर्णन भी हम यहां नहीं दे पाएंगे। उदाहरण के तौर पर हम कुछेक के बारे में बताएंगे। प्रोक्टोट्रिफिड, *सीलियो,* टिड्डों के अंडों के परजीवी हैं और टैकिनिड प्रौढ़ टिड्डों के परजीवी हैं। बहुधा किसी क्षेत्र में टिड्डों के 70% अंडे परजीवीकृत हो सकते हैं। फसलों की पत्तियां खाने वाली इल्लियां *एपैन्टेलीज* जैसे ब्रेकोनिडों और *ब्रैकीमीरिया* जैसे चेल्सिडॉइडों द्वारा बहुत ज्यादा परजीवीकृत होती हैं। चेल्सिडॉइड, *ट्राइकोग्रामा* लगभग एक से दो मिलिमीटर लंबा छोटा कीट होता है लेकिन हाइमनोप्टेरा परजीवियों में सबसे हितकर माना जाता है। यह लेपिडॉप्टेरा (शल्कपंखी) गण की बहुत सी जातियों के अंडों को परजीवीकृत करता है जिनमें से लगभग सभी जातियां कृषि, सब्जियों और वनों के वृक्षों के लिए हानिकर हैं।

मनुष्य के वेतन में कीट

क्षतिकारक कीटों द्वारा किए जाने वाले विनाश को रोकने में परजीवियों और परभक्षियों द्वारा जो अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जाती है उसे समझने में मनुष्य को देर नहीं लगी। दो प्रतिभाशाली अमरीकी कीटविज्ञानियों एल.ओ. हॉवर्ड और वी. रिले के मस्तिष्कों में परभक्षियों और परजीवियों का कृत्रिम रूप से प्रयोगशाला में पर्याप्त संख्या में पालन-पोषण करके और उन्हें कीट पीड़कों पर आक्रमण करने के लिए खेत में छोड़ने का विचार कौंधा। कीट पीड़कों से निपटने की यह विधि जैव-नियंत्रण[1] कहलाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका और कुछ सीमा तक हमारे अपने देश में भी परभक्षियों और परजीवियों की सहायता से अनेक कीट पीड़कों को नियंत्रित करने में आश्चर्यजनक सफलता मिली है। मनुष्य ने

1. जैव-नियंत्रण : Biological control

अपने कीट शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध छेड़ने में अपनी सवेतन सेवाओं में हितकर कीटों को लगा दिया है।

भारत में कीट पीड़क के नियंत्रण में परभक्षी का पहला और शायद सबसे सफल उपयोग दक्षिण भारत में किया गया जहां खातिलित शल्क कीट[1] *पेरीसेरिया पर्चेसी*, के नियंत्रण के लिए सोनपंखी भृंग, *रोडोलिया कर्डिनेलिस* को लाया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका में सोनपंखी भृंग के सफल उपयोग के बाद ही इसे सं.रा.अ. से दक्षिण भारत में लाया गया तथा इसका बड़े पैमाने पर संवर्धन करके खेत में छोड़ा गया। शल्क कीट का भक्षण करने वाले सोनपंखी भृंगों के कारण इस कीट की संख्या कम होकर अहानिकर स्तर तक आ गई। दक्षिण भारत में नागफनी कैक्टस के उन्मूलन में चूर्णी मत्कुण, *डैक्टिलोपियस टोमेन्टोसस* का उपयोग जैव नियंत्रण का दूसरा उदाहरण है। इसके बारे में हम पहले ही बता चुके हैं। गन्ने के तनों पर आक्रमण करने वाली और सागवान वृक्ष को निष्पत्रित करने वाली शलभ बेधक इल्लियों को नियंत्रित करने के लिए *ट्राइकोग्रामा* का उपयोग बहुत सफल सिद्ध हुआ है। अंडपरजीवी *ट्राइकोग्रामा* को उपयोग में लाने के लिए पहले *कोर्साइरा सिफैलोनिका* नामक कीट के अंडों पर प्रयोगशाला में बड़ी भारी संख्या में उत्पन्न किया जाता है। *कोर्साइरा सिफैलोनिका* के लार्वे ज्वार के कुचले हुए दानों में प्रजनन करते हैं। शलभ के अंडे सुविधाजनक आकार के कार्डबोर्ड के टुकड़े पर चिपका दिए जाते हैं और अंडे देने के लिए मादा *ट्राइकोग्रामा* के लिए उपलब्ध करा दिए जाते हैं। परजीवीकृत अंडे बाद में बाहर निकाल खेत में आवश्यकतानुसार गन्ने या अन्य पौधों से संलग्न कर दिए जाते हैं। इन अंडों से निकलने वाले प्रौढ़ कीट गन्ने के बेधक शलभों के अंडों को तलाश लेते हैं, जो कि गन्ने की पत्तियों पर दिए जाते हैं। इन अंडों के भीतर वे अपने अंडे देते हैं इस प्रकार फसल पर हमला कर सकने से पूर्व ही शलभ को मार दिया जाता है। खेत में परजीवियों को छोड़ने का प्रभाव कुछ काल तक रहता है उसके बाद परजीवियों को दोबारा छोड़ा जाना आवश्यक हो जाता है। प्रयोगशाला में *ट्राइकोग्रामा* का बड़े पैमाने पर पालन पोषण, आवश्यकता पड़ने तक उनको शीत-संग्रहागार[2] में रखना, जहां उनकी जरूरत हो वहां उन्हें डाक द्वारा भेजना, खेत में छोड़ना और जैव-नियंत्रण में शामिल अन्य कार्यों की तकनीक में हाल के वर्षों में बहुत ज्यादा सुधार हुआ है। इस प्रकार के सारे कार्यों में मूलभूत आवश्यकता इस तथ्य को जानने की है कि कीटों के परभक्षी और परजीवी कुल मिलाकर मनुष्य के लिए हितकर हैं। उनको काम में लाने का विशेष लाभ यह है कि ये कीटनाशक फुहारों और बुकनियों[3] या चूर्णों की तरह अंधाधुंध नहीं मारते बल्कि मारने में अत्यधिक चयनात्मक हैं।

---

1. खातिलित शल्क कीट : Fluted scale insect
2. शीत-संग्रहागार : Cold-storage
3. बुकनी : Dust

हमारे देश में जैव नियंत्रण की भूमिका को बेकार में ही बहुत बढ़ा चढ़ा कर कहने की प्रवृत्ति है। जैव नियंत्रण के अंतर्गत पारितंत्र पहले से ही उपस्थित परभक्षी-परजीवी का संरक्षण किया जाता है अथवा किसी परभक्षी या परजीवी को बाहर से प्रवेश कराया जाता है जो पहले समुदाय का कभी भी अभिन्न अंग नहीं था। संरक्षण और प्रवेश की मूल प्रकृति पारितंत्र के स्थायित्व में हस्तक्षेप और बाधा पहुंचाने की है। किसी विशेष परभक्षी या परजीवी जाति को मनुष्य ने जो अनुकूल स्थिति दी है वह स्वतः ही निष्प्रभावित हो जाती है और शीघ्र ही '*यथापूर्व स्थिति*' लौट आती है। किसी भी हितकर परभक्षी या परजीवी के संरक्षण या प्रवेश और उसके सफलतापूर्वक जम जाने की क्रियाओं को किसी भी तरह ऐसा नहीं मानना चाहिए कि वे 'एक ही बार संपन्न' हो जाती हैं। ये मनुष्य के लिए स्थायी भले ही न हों पर इनसे दीर्घकालिक वांछित परिणाम मिलता है। यही वह सही और मूलभूत तथ्य है जिसे लगातार नजरअंदाज किया जाता रहा है और ऐसा लगता है कि कृषि, बागवानी और वानिकी में परभक्षियों और परजीवियों की भूमिका को अत्यंत महत्वपूर्ण बताना भारत में चालू फैशन है। प्रत्येक नए परभक्षी या परजीवी की खोज के साथ ही उसे पीड़क के जैव नियंत्रण के लिए काम में लाने की अपरिहार्य दलील जोर शोर से दी जाने लगती है। लेकिन ऐसा करना संभव नहीं है, कम से कम भारत में तो एकदम नहीं। इस बात की बहुत संभावना है कि कोई 'पीड़क' किसी परभक्षी या परजीवी द्वारा कभी किसी एक स्थान पर नियंत्रित हो जाए लेकिन वह दूसरे स्थान पर या किसी दूसरे काल में उसी स्थान पर उसी परभक्षी या परजीवी द्वारा नियंत्रित हो जाएगा ऐसी आशा करना पूरी तरह से अनुचित है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अमरीका में कुछ मामलों में जैव नियंत्रण को चमत्कारिक सफलता मिली है। लेकिन यह आशा करना कि हमारे देश में भी वैसे परिणाम निकलेंगे एक स्वप्न मात्र है। हम इस तथ्य को भूल जाते हैं कि भारत में प्राचीन काल से खेती-बाड़ी होती रही है जबकि अमरीका में ऐसा नहीं है। हमारे यहां पौधों, पादप-भोजी कीटों और उनके परभक्षियों तथा परजीवियों ने अपने आपको बहुत पहले से ही प्राकृतिक संतुलन और सुव्यवस्थित साम्यावस्था में स्थायी बना लिया है। वस्तुतया ऐसा होना कालांतर में मनुष्य के लिए सर्वाधिक वांछनीय और हितकर है। अगर मनुष्य इस प्राकृतिक संतुलन से छेड़छाड़ करता है तो अंत में उसे ही हानि उठानी पड़ेगी।

भारत में कीट और मनुष्य की साझेदारी का तुलन-पत्र

भारत में कीटों का मनुष्य के साथ सहवास या ज्यादा सही यह कहना होगा कि मनुष्य का कीटों के संग सहवास बहुत प्राचीन है। जब मनुष्य का आगमन हुआ तो कीटों ने उसे स्वीकार किया और उसे तत्परता से अपनाया। भारतीय किसान और भारतीय कीटों ने अपने आपको एक-दूसरे के अनुकूल बनाया और प्रकृति में लगभग स्थायी और गतिशील

साम्य बनाया। इस साम्यावस्था में सारे प्राणियों ने अपने आपको उपयुक्त बना लिया। कीट और मनुष्य शांति से रहने लगे और एक-दूसरे की आवश्यकताओं तथा अच्छाई और बुराई की शक्ति का आदर करने लगे। उनके बीच अंतरंग साझेदारी के नियम बनाए गए और उनका पालन किया गया। इस साझेदारी के फलस्वरूप फसलों को कीटों से व्यापक क्षति पहुंची और मानव स्वास्थ्य के मामलों में कीटों का हस्तक्षेप साल दर साल और शताब्दी दर शताब्दी कभी भी निम्न वार्षिक औसत से बहुत ज्यादा नहीं हुआ। किसान ने परंपरागत रूप से परीक्षित फसलों और पद्धतियों को दृढ़ता से अपनाया और कीटों ने भी इस बात का हमेशा ध्यान रखा कि किसान को उसकी भरपूर फसल मिले। भारतीय मानसून की अनियमितताओं, बाढ़ों और सूखों के कारण आने वाली आपदाओं को छोड़कर भारत में कीटों द्वारा फसलों को पहुंचाई जाने वाली क्षति कभी भी अकाल का कारण नहीं बनी। भारत में अगर मनुष्य को यदा कदा भुखमरी का शिकार होना पड़ा है तो इसमें कीटों का कोई दोष नहीं रहा। किसान को केवल अस्पष्ट रूप से इस बात का एहसास तो था कि उसके खेत में कीट हैं लेकिन जैसे हम जब तक मूर्खतावश पेट-दर्द से पीड़ित न हों तब तक हम यह अनुभव ही नहीं करते कि हमारे पेट है उसी तरह किसान ने कीटों को कभी महसूस ही नहीं किया। भारत में कीटों की जैसी भरमार आज है पहले भी वैसी ही थी लेकिन 'पीड़कों' का अस्तित्व नहीं था यदि वे थे भी तो विरले ही थे और किसान को इस बात का पक्का भरोसा था कि ये पीड़क प्राकृतिक साधनों से समाप्त हो जाएंगे। उसे इन साधनों पर विश्वास था और वह प्रकृति को अपना कार्य करने देता था।

भारत में कीट और मनुष्य की साझेदारी की तस्वीर अमरीका की तस्वीर से एकदम भिन्न है। अमरीका में कृषि हमारे देश की तुलना में कहीं ज्यादा दक्ष और आधुनिकीकृत है। वास्तविकता तो यह है कि भारतीय कृषि से तुलना किए जाने पर अमरीकी खेती बीते कल की बात लगती है। भारत में खेती अगर ज्यादा नहीं तो कम से कम सात हजार सालों से होती आई है। अमरीका में जा बसने वाले अपने साथ पुरातन विश्व की फसलें अपने साथ इस नए देश में ले गए। वहां जो फसलें प्रवेशित की गईं उन्होंने फौरन स्थानीय अमरीकी कीटों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। ये कीट फैल गए और जल्दी ही 'पीड़क' बन गए। जब अधिवासी[1] पुरातन विश्व के पौधों को ले गए तो उसके साथ उन्हें खाने वाले कीट भी ले गए। पुरातन विश्व देशों में ये कीट 'पीड़क' नहीं हैं क्योंकि उनके प्राकृतिक शत्रुओं, परभक्षियों और परजीवियों के कारण उनका स्तर कम बना रहता है। जब पुरातन विश्व के पौधे और उनके कीट अमरीका गए तो परभक्षी और परजीवी पीछे रह गए तथा उन्हें अमरीका में प्रवेश नहीं मिला। इसलिए पुरातन विश्व के कीट नए देश में न केवल संख्यात्मक रूप से तेजी से बढ़ते गए बल्कि उन्हें मक्का जैसी नई फसल का स्वाद बहुत

1. अधिवासी : Settlers

पसंद आया और वे इनके पीड़क भी बन गए। किसान और कीटों के बीच जैसा साम्य भारत में रहा है अमरीका में वैसा हो सकने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिला। इससे भी बुरी बात यह हुई कि ऐसी साम्यावस्था आने से पूर्व ही अमरीकावासियों ने अपनी विशिष्ट जल्दबाजी में ज्यादा से ज्यादा भूभागों पर अधिकाधिक फसल और फल उगाने के नए से नए ढंग बड़ी तेजी से अपनाए जिसकी वजह से कीट और मनुष्य के बीच पारस्परिक लाभ की साझेदारी नहीं हो पाई।

भारत और दूसरे 'विकसित' देशों में यही वह मूलभूत अंतर है जिसकी हमारे विशेषज्ञ लगातार अनदेखी करते चले आ रहे हैं। ये विशेषज्ञ आधुनिकीकरण की शीघ्रता में परंपरागत पद्धति की निंदा करते हैं। भारत में अगर हाल में कोई कीट कृषि का 'पीड़क' बन गया है तो यह अनिश्चयी किसान को आधुनिक साधन अपनाने के लिए मजबूर करने का नतीजा है। इस प्रकार 'पीड़क' आधुनिक मनुष्य की मूर्खता की उपज है।

कृषि में जब हम शक्तिशाली आधुनिक कीटनाशकों का उपयोग करते हैं तो दुर्भाग्यवश न केवल तथाकथित 'पीड़कों' को मार डालते हैं बल्कि उन परभक्षियों, परजीवियों को भी मार डालते हैं जो हमारे मित्र हैं। ये ही हितकर कीट हैं जिन्होंने वांछित साम्यावस्था को बनाए रखने में परिश्रम किया है। अगर हितकर जातियों की मृत्यु के परिणामस्वरूप प्राकृतिक संतुलन बिगड़ गया है तो आप कीट को कैसे दोषी बता सकते हैं? समय बीतने के साथ साथ 'पीड़कों' में कीटनाशकों के प्रति प्रभावशाली प्रतिरोध[1] आ जाता है और प्राकृतिक शत्रुओं का नियंत्रण न होने के कारण वे पहले से भी ज्यादा तेजी से बढ़ते जाते हैं। जल्दबाजी में हम अपने प्रयास और तेज कर देते हैं और हमारे ही द्वारा उत्पन्न परिस्थिति का सामना करने के लिए हम अधिक शक्तिशाली और अधिक शीघ्रता से असर करने वाले कीटनाशकों का सहारा लेते हैं। इस वजह से जो थोड़ी बहुत हितकर जातियां कीटनाशकों के पहले उपचार के बाद संयोगवश जीवित बच गई थीं वे भी मर-खप जाती हैं। नए रसायनों के प्रति हानिकर कीटों में प्रतिरोध विकसित होने में समय भले ही लग जाए पर प्रतिरोध क्षमता आ जाने पर पुनः वही कहानी शुरू हो जाती है और यह दोषभरा चक्र पूरा हो जाता है। हमारा दोहरा अपराध यह है कि हम इकतरफा कार्रवाई करते हुए कीटों से किए गए करार को रद्द कर देते हैं और अपने मित्र कीटों को आधुनिक वैज्ञानिक कृषि विधियों का सामना करने के लिए विवश कर देते हैं।

भारत में एक और व्यापक तथा लोकप्रिय गलत धारणा फैली हुई है। हम शायद यह सोचते हैं कि अगर कीट नहीं होते तो हम अनाजों की जितनी पैदावार अब लेते हैं उससे कहीं ज्यादा लेते। यह सच नहीं है। सच यह है कि भारत में कीटों द्वारा मनुष्य को पहुंचाई जाने वाली कुल क्षति अमरीका की तुलना में बहुत कम है। भारत और अमरीका दोनों

1. प्रतिरोध : Resistance

में कीट मनुष्य को जितना लाभ पहुंचाते हैं वह सारे हानिकर कीटों द्वारा किए जाने वाले कुल नुकसान से कहीं ज्यादा है। कीट और मनुष्य की साझेदारी के तुलन-पत्र में जहां तक जमा का प्रश्न है वहां कीट का पलड़ा कहीं ज्यादा भारी है। यह सब कुछ बताने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य कीटों का ऋणी है। कीट परागणकारियों द्वारा मनुष्य के उपयोग के लिए जितना अनाज, फल, सब्जियां और चारा उत्पन्न किया जाता है उसकी तुलना में उनके द्वारा फसलों, फलों, पशुधन, कच्चे माल, निर्मित माल, मानव स्वास्थ्य आदि को पहुंचाई जाने वाली क्षति के कारण होने वाली अनुमानित आर्थिक हानि केवल एक थोड़ा-सा अंश है। अगर इसमें कीटों द्वारा हटाई जाने वाली गंदगी, सड़े गले मांस और उनके द्वारा किया गया खरपतवारों का विनाश और उनके द्वारा किए जाने वाले मृदा-सुधार की लागत को जोड़ा जाए तो आदमी पर ऋण की मात्रा अविश्वसनीय हो जाती है।

भारत में कीटों को मित्र बनाना अत्यंत उत्तेजना भरा और फलदायी अनुभव है। यह एक सस्ता शौक और स्थायी वैज्ञानिक उपलब्धि है तथा जो कोई भी इन साथी नागरिकों को जानना समझना चाहता है उसकी ये पहुंच के भीतर हैं। हम सबसे सामान्य कीटों के स्वभाव, जीवनवृत्त, आवश्यकताओं, अंतःप्रेरणा और उनके कार्यों के बारे में व्यावहारिक रूप से कुछ नहीं जानते। अगर हम मेल-मिलाप की भावना से कीटों का अध्ययन करें तो हम पाएंगे कि जीवन की जैसी समस्याओं का हमें सामना करना पड़ता है वैसी ही समस्याओं को उन्होंने अपने ढंग से सुलझा लिया है। कभी हमारे तौर-तरीके उनसे श्रेष्ठ लगते हैं तो कभी उनके। सच्चाई यह है कि दोनों ही बराबर सफल हैं और उनका परिणाम एक ही होता है। अगर हम कीटों को पूरी तरह से समझ जाएं तो हमें यह तथ्य आश्चर्यचकित कर देगा कि कीट और मनुष्य जीवनरूपी गाड़ी के पहिए में अलग न किए जा सकने वाले, अभिन्न और परस्पर निर्भर दांतों के समान हैं। प्राण भले ही कीट में हों या मनुष्य में, हैं तो एक ही। संस्कृत में इस आशय का एक श्लोक भी है—**एको वासि सर्वभूतान्तरात्मा**—अर्थात वह एक ही है जो समस्त जीवों में व्याप्त है।

शब्दावली

अकुल	Sub-family
अग्रकर्ष	Forward push
अग्रक्षेप	Forward thrust
अधः स्तर	Sub-stratum
अतिव्याप्त	Over lapping
अधिकुल	Super family
अधिवासी	Settlers
अनिषेकजनन	Parthenogenesis
अनुदैर्घ्य	Longitudinal
अनुदैर्घ्य पेशियां	Longitudinal muscles
अनुनादी स्तंभ	Resonating column
अनुरंजन	Courtship
अनुप्रस्थ काट	Cross-section
अनुक्रमिक	Successive
अनुनादी वायु कोष्ठिका	Resonating air chamber
अटन भृंग	Rove beetles
अपघटित	Decomposing
अपमार्जक	Scavengers
अप्रवेश्य अध्यावरण	Impervious integument
अपहासन	Denerate
अवंध्य	Fertile
अर्बुद	Tumour
अवर्तिता	Periodicity
अवनमित	Depressed
अवशून्य	Sub-zero
अवशोषित	Absorb
अश्ममक्षी	Stone fly

अशन	Feeding
असममितीय	Asymmetrical
अलवण-जल	Fresh water
अंड-कक्ष	Egg chamber
अंड-प्लव	Egg-float
अंड-चाटी	Egg-raft
अंड-कवच	Ootheca
अंड-कोये	Egg-cocoons
अंड निक्षेपक	Ovipositor
अंडदकर्मी	Gynaecod
अंडाशय	Ovary
अंत:भूमिक	Subterranean
अंशजलीय	Semi aquatic
अंशपूर्णकीट	Subimago
अंश-यूथी	Semi-gregarious
आधा नर और आधी नारी	Gynandromorph
आलम्बक	Fulorum
आलिंगी अंग	Clasping organs
आवर्धक लैंस	Magnifying lens
आवर्तकाल	Sunspot cycle
आवृत्ति	Frequency
आवर्ती प्रवास	Periodic migration
इल्लियां	Caterpillars
उच्च-तुंगता	High-altitude
उड़न उपकरण	Flight apparatus
उत्थान	Uplift
उत्थान-बल	Lifting-force
उत्प्लावकता	Buoyancy
उत्प्रस्थान	Take-off
उत्थित	Elevated
उदर	Abdomen

उदर खंड	Abdominal segment
उदग्रत	Vertically
उदासीन	Neutral or indifferent
उपगण	Sub-order
उपांत	Margin
उपांग	Appendage
उपोत्पाद	By-product
उभयलिंगी	Hermaphrodites
उभयजीवीय	Amphibiotic
उष्मा-रोधी	Thermo-insulator
उष्मायन	Incubation
उष्मायन अवधि	Incubation period
ऊष्मावित्र	Incubator
ऊर्ध्ववात	Upstroke
ऊतक	Tissue
एकल	Solitary
एकांतर चक्र	Alternating cycle
एकांतर पीढ़ियां	Alternating generations
ऐलेन्टाइन	Allantoin
क्लोम	Gills
कर्ण कीट	Earwigs
कर्षण	Drag
कर्णपटह	Tympanal
कर्णपटह झिल्ली	Tympanal membrane
कवक	Fungus
कवच	Shells
कवच पट्टियां	Armour plates
कशाघाती गति	Lashing movements
कामद उड़ान	Nuptial flight
कायांतरण	Metamorphosis

किण्वित	Fermenting
किरमिजी रंजक	Cochineal dye
कीट सर्वहारा-वर्ग	Insect proletariat
कीटपरागी	Entomogamous
कुल	Family
कुंडलित शुंड	Proboscis
कुंडल पुच्छ	Spring tail
कूट पाद	False legs
कृंतक	Rodents
कृमि	Worm
कोया	Cocoon
कोषधारी साइकिड	Case-bearing Psychid
कोशिका	Cell
कोष्ठ	Chamber
कोष्ठिका द्वार	Cell opening
कंकाल पट्टिकाएं	Skeletal plates
कंपन	Vibration
खनक-बर्र	Digger wasp
खातिलित शल्क कीट	Fluted-scale Insect
गण	Order
गज	Bow
ग्रह-पारिस्थितिकी	Planetary ecology
ग्राही वर्तिकाग्र	Receptive stigma
गिल्टी प्लेग	Bubonic plague
गिरीपिंड	Massif
गुंजमक्षिकाएं	Bumble bees
गुल्फ खंड	Tarsal segment
गुटिकाएं	Pellets
गैम्बिआई	Gambian
गोलकशलभ	Ball worm

घातक मत्कुण	Assasin bug
चकई भृंग	Whirigig
चर्मपत्र	Parchment
चापीय	Arching
चूर्णई मत्कुण	Mealy bug
चिमटियां	Forceps
चिंचड़ी	Mite
चिबुक	Mandibles
चूषक-तुंड	Sucking rostrum
चूषक बिंब	Suctorial disc
चेल मक्खियां	Caddis flies
छाल जूं	Bark lice
ज्यामिति	Geometry
जड़त	Inlays
जनन	Reproduce
जनन-तंत्र	Reproductive system
जनन जातियां	Reproductive caste
जल-सह	Water proof
जल नाविक मत्कुण	Water boatman bug
जरायुज	Viviparous
जरायुजतः	Viviparously
जातिप्रधान समाजवादी स्वचालन	Cast dominated Socialist Automations
जालपंख कीट	Lacewing insects
जीवाणु	Bacteria
जीवाश्म	Fossil
जीवाश्म व्याध पतंग	Fossil dragon fly
जीवनक्षम	Viable
जैतूनहरित	Dive green
जेट-नोदन गमन	Jet Propulsian movement
जैव-नियंत्रण	Biological control

झाऊ	Tamarisk
झींगुर	Crickets
टकटक भृंग	Click beetle
टिड्डा	Grasshopper
टिड्डियां	Locusts
डांस	Gnat
डैमजेल मक्खी	Damsel fly
तरुणशाव	Brood
तक्षमक्खी	Carpenter bee
तंतुमय	Filamentous
तुंदमक्खी	Boot fly
तंत्रिका गैस	Nerve gas
तारकृमि	Wire worm
तिलचट्टा	Cockroach
थूथन भृंग	Smout beetles
दलपुंज	Corolla
दस्यु मक्खियां	Robber flies
दिक्नियंत्रक	Rudder
द्विपद-नाम-पद्धति	Binomial system of classification
द्विलिंगी	Bisexual
दीप्त अंग	Luminous organ
दीप्त कीट	Glow worm
दीमकगृह	Termitarium
दीमकरागीव	Termitphilous
दीर्वित	Elongated
द्रुतशीतित	Chilled

देह अध्यावरण	Integument
दृक्-बिंदु	Eye-spot
दृढ़फल	Nuts
द्रोणी	Trough
ध्वनि प्राचीर	Sound barrier
ध्वनि प्रवर्धन	Amplifier
धारा-रेखित	Stream-lined
नखलिस्तान	Oasis
नरकुल गुहिका	Reed cavity
निर्जम-परिरक्षक	Antiseptic preservative
निद्रा रोग	Sleeping sickness
निम्नभूमि स्टेप	Low land steppes
निमज्जित पत्थर	Submerged stone
निर्मोकन	Moulting
निवात	Down stroke
नियततापी प्राणी	Warm blooded animals
निर्वातन पाइप	Exhaust pipe
निस्यंदक	Filter
निषेचित	Fertilized
निःस्रवण	Exudation
नीड़ गुहिका	Nest cavity
नोदक	Propeller
पर-परागण	Cross-pollination
परपोषी	Host
परभक्षी	Predators
परावर्तन	Reflection
परासरण	Osmosis
परात्परजीवी	Hyperparasite
पराबैंगनी विकिरण	Ultra violet radiation
परा-श्रव्य	Ultra-sonic

परिवर्ती	Variable
परिवर्धन	Development
पर्ण फलक	Leaf blade
पक्षवर्म	Elytra
पर्णाभ कीट	Leaf insect
प्रकाष्ठ	Timber
प्रजनन	Reproduction
प्रतिरोध	Resistance
प्रति-संतुलित	Counter balancing
प्रढाल	Scutellum
प्रघात सह	Shock proof
प्रभव	Stock
प्रभेद	Caste
प्रलंबी	Overhanging
प्रलेखन	Documentation
प्रपर्ण	Frond
प्रयुक्तियां	Contrivances
प्रवर्ध	Processes
प्ररूपी	Typical
प्ररोह	Shoot
प्रशांत	Quiescence
प्रसह नखरे	Raptorial claws
प्रक्षेप	Projection
पालियां	Lobes
पाश	Loop
पार्श्व पालियां	Side lobes
पादप ऊतक	Plant tissues
पादप विषाणु	Plant virus
पादांगुलि दंशक	Toe-biter
प्राकृतिक पारितंत्र	Ecosystem
प्राच्य व्रण	Oriental sore
प्रार्थी मेन्टिड	Praying mentid
पिच्छ	Feather

पिच्छकी	Plumose
पिटिका बर्र	Gall Wasp
पिटिकाएं	Galls
पिपीलिका सिंह	Antlion
पीड़क	Pests
पुच्छ-पंख	Tail-fins
पुच्छ-पंख तितलियां	Swallow-tail butterflies
पुमक्खियां	Drone
पुनर्बलित	Reinforced
पूर्वजता	Ancespy
पुंकेसर	Stamen
प्रेरक बल	Driving force
पृष्ठ तनाव	Surface tension
पृष्ठीय फिल्म	Surface film
पृथ्वीवाह्य	Extra terrestrial
पंख वात	Alytra
पंचमांग-छापामार-योद्धा	Fifth-column-gorilla fighters
फल-काय	Fruit bodies
फसल पीड़क	Pests of Crops
फफोला भृंग	Blester beetle
फाइलेरियता	Filariasis
बहु-परावर्तन	Multiple reflections
बहुरूपी	Polymorphic
बरट	Hornet
बंध्य	Sterile
बांज वृक्ष	Oak tree
वाह्य त्वचा	Epidermis
बाह्यपरजीवी	Ectoparasite
बाघ भृंग	Tiger-beetle
बीट	Droppings
बीम	Beam
बीजाणु	Spores

बुकनी	Dust
बुरुंखा	Rhododendron
बेंगची	Tadpol
भेक	Toad
भूवैज्ञानिक काल	Geological ages
भ्रूणीय परिवर्धन	Embryonic development
भृंग	Beetle
भृंगक	Grub
मई मक्खी	May fly
मक्खी	Bee
मकरंद कोष	Nectaries
मधुमोम	Bee's wax
मधुमक्खीशाला	Alpiaries
मखमल पिपीलिका	Velvet ant
मधुपात्र	Honey pot
मधु बिंदु	Honey dew
मल-गुटिकाएं	Fecal pellets
मलाशय	Anus
मशकाभ	Midges
मरु-टिड्डी	Desert locust
महा-भूवैज्ञानिक	Great-geological
मक्षिकता	Myasis
मंदर उपरति	Diapause
मंदाकिनी	Galaxy
मंडराती मक्खियां	Hover flies
मातृ-वृत्ति	Maternal instinct
मानवसंगी	Synanthropous
मुक्तजीवी	Free living
मुखांग	Mouth parts
मुद्गराकार	Clavate
मृत्युशीर्षी	Death's head

मोचित	Realsing
मोम ग्रंथियां	Wax glands
यष्टि कीट	Stick insect
यूथी	Gregarious
रचक	Constituent
रजत मीनाभ	Silver fish
रत्न भृंग	Jewel beetle
रंजक	Dyes
रंग-दीप्ति	Iridescence
राजपद	Royalty
राजमिस्त्री मक्खी	Mason bee
रूपांतरण	Modification
रेशम ग्रंथियां	Silk glands
रोगाणु	Pathogens
लिंग द्विरूपता	Sex dimorphism
लैंगिकता	Sexualty
लोलक	Pendulam
व्याध पतंग	Dragon fly
वम्रारागी	Myrmecophilous
वर्ग	Class
वर्गीकरण	Classification
वर्णकित	Pigmented
वरणात्मक अवशोषण	Selective absorption
वर्धी स्थल	Crowing point
वर्षण ध्वनि उत्पन्न करना	Stridulation
वंश	Genera
वक्ष	Thorax
वातक क्लोम	Tracheal gill
वातक नलिकाएं	Tracheal tubes
वातित	Aerated

वाष्पन	Evaporation
वाष्पशील तैलीय स्राव	Volatile oily erection
वायु-प्रक्षोभ	Air-turbulence
वायुपत्रक	Air foil
वायु अवकाश	Air Space
वायुगतिक सिद्धांत	Aerodynamic principles
विकसित विक्षेपण	Evolved
विकिरण	Radiation
वितान्य	Extensible
वृश्चिकाय शलभ	Water scorpion Moth
विशिष्टीकरण	Specialisation
वृतक	Circlet
विषदंत आवरण	Fang Mask
विस्पंद	Beats
विसर्पी	Sprawling
विसंक्रमित	Disinfect
वृंद	Swarm
श्येन शलभ	Hawk moth
श्वसन-वर्णक	Respiratory pigment
शलभ	Moth
शमल	Dung
शरीरक्रियात्मक क्षमता	Physiological capacity
शल्क	Scales
शाखायुक्त नलिका	Trachea
शाव-नीड़	Brood nest
शावकीजनन	Paedogenesis
शृंगिकाएं	Antenna
शिशुपालन कक्ष	Nursery Chamber
शीत-संग्रहागार	Cold Storage
शीतोष्ण	Temperate
शुंड	Proboscis
शुष्कन	Desiccation

शूकिकाएं	Stylets
शैशव	Infancy
स्वर	Pitch
स्वजातिभक्षी	Cannibalistic
स्वचालन	Automation
स्वर्णिम पिकवर्र	Golden Cuckoo wasp
स्पर्शक	Feelers
स्त्रीकेसर	Pistil
स्टेगहार्न भृंग	Staghorn beetle
स्तरण	Stratification
स्थिरण	Anchorage
सच्चे मत्कुण	True bugs
सममिति	Symmetry
समूह	Complex
सहजीवी	Symbiotic
समागम	Mating
संकर लक्षण	Hybrid Character
संकुल	Complex
संक्रिया	Operation
संकुचन	Contraction
संकेतक मक्खी	Ensign fly
संचारी	Transmitters
संदूषित	Contaminate
संवृत वन	Closed forest
संतोलक	Halteres
संयुक्त नेत्र	Compound eyes
संतति	Progeny
संरक्षण	Conservation
संरचनात्मकता विभेदन	Structurally differentiation
संरागी	Symphiles
संरोपण	Inoculate
संवर्ग	Tribes

संवहनी ऊतक	Vascular elements
संवातक नलिका	Ventilator tube
संवेगात्मक	Emotional
संवर्धन संस्तर	Culture bed
संहत	Compact
संक्षारक	Corrosive
साधारण-व्याघ्र	Plain-tiger
सांद्रित	Concentrate
सिकता मक्षी ज्वर	Sandfly fever
सूर्यातप	Insolation
सूत्रकृमि	Nematode
सोनपंखी भृंग	Ladybird beetle
शृंखलाबद्ध अभिक्रिया	Chain reaction
हिम कोर	Snow edge
हिम पिस्सू	Snow flea
हिमनद	Glacier
हिमानी वेग धाराएं	Glacial torents
क्षणिक प्रावस्था	Transient phase
त्रिनख	Triungulin
ज्ञानेन्द्रियां	Sense organs

अनुक्रमणिका